श्री महादेवी जी को
षष्टि-प्रवेश के शुभ अवसर पर
सविनय समर्पित

विज्ञप्ति

श्रीमती महादेवी वर्मा २६ मार्च '६७ को साठवें वर्ष मे प्रवेश कर रही हैं। इस उपलक्ष मे, साहित्यिक परिवार की अनत मगल-कामनाओ का प्रतीक, यह सस्मरण-ग्रथ उन्हे समर्पित है। मैं उन साहित्यिक बधुओ एव लेखको-लेखिकाओ का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने अपने स्नेह और सद्भाव द्वारा इस ग्रथ की श्रीवृद्धि की है।

१८/बी–७ कस्तूरबा गाधी मार्ग
इलाहाबाद–२

—सुमित्रानदन पत

इस ग्रंथ के पारिश्रमिक की राशि
प्रयाग विश्वविद्यालय के निर्धन छात्रों के कोष के लिये
निर्धारित कर दी गई है। —सं०

अनुक्रम

प्रथम भाग : जीवनी

बचपन के दिन : श्रीमती श्यामा देवी सक्सेना : ३
जीवन-झांकी : श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय : १०

द्वितीय भाग : स्मृति-चित्र

हँसी, किरण और ओस : डॉ० रामकुमार वर्मा : ३३
श्रीमती महादेवी वर्मा—एक संस्मरण : श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त : ३८
पहला गीत—पहली भेंट : श्री उपेन्द्रनाथ अश्क : ४२
श्रीमती महादेवी वर्मा—स्मृति-चित्र : डॉ० नगेन्द्र : ५३
महादेवी से मिले हो ? : श्री अमृतलाल नागर : ६२
श्रीमती महादेवी वर्मा—कुछ संस्मरण : श्री नरेन्द्र शर्मा : ६७

तृतीय भाग : व्यक्तित्व

दो क्षेत्रों में सरस्वती की आराधिका : श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी : ७५
स्वाभिमानिनी; स्वतन्त्र बुद्धि; करुणामयी : डॉ० कामिल बुल्के : ७७
जीवन का एक पक्ष : डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' : ८०
महादेवी जी : प्रो० एहतेशाम हुसैन : ८६
एक सबल व्यक्तित्व : श्री भगवतीचरण वर्मा : ८८
महादेवी वर्मा—निकट से : श्री इलाचन्द्र जोशी : ९२
पर्यवेक्षण और निमन्त्रण : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी : १००
यह सशक्त प्रतिभा : श्री ओंकार शरद : १०६
तुम्हारी 'जिज्जी' बड़ी हठी हैं : श्री गोपीकृष्ण गोपेश : ११०
योगी महादेवी : सुश्री प्रीति अदावल : ११८
महादेवी जी—एक व्यक्तित्व : सुश्री शांति जोशी : १२४

चतुर्थ भाग : काव्य

'दीपशिखा' महादेवी : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : १२९

महादेवी वर्मा : प्रो० चन्द्रहासन : १३४
महादेवी का छायावाद : श्री यशपाल : १३७
महादेवी जी की रहस्य-दृष्टि : डॉ० भगीरथ मिश्र : १४१
महादेवी का काव्य : डॉ० इन्द्रनाथ मदान : १५३
महादेवी जी और मेरी आलोचना : डॉ० रामविलास शर्मा : १५६
महादेवी की कला-चेतना : डॉ० कुमार विमल : १५९
महादेवी जी—नवमूल्यांकन : डॉ० रामरतन भटनागर : १७३

पंचम भाग : चित्रकला

यह जंगम त्रिवेणी है : श्री राय कृष्णदास : १९९
महादेवी जी की चित्रकला : श्री शम्भुनाथ मिश्र २०१

●

सम्पादकीय : सुमित्रानन्दन पंत २१७
जीवन-क्रमणिका की महत्वपूर्ण तिथियाँ २२१
कृतियाँ तथा विशेष भाषणों का कालक्रम २२४

चित्र-क्रम

महादेवी जी की हस्तलिपि : विज्ञप्ति के सम्मुख
महादेवी जी का चित्र : प्रथम भाग के सम्मुख
दीपक (महादेवी जी की एक चित्र-रचना) : द्वितीय भाग के सम्मुख
साहित्यकार संसद भवन, प्रयाग तथा प्रयाग महिला विद्यापीठ महाविद्यालय : तृतीय भाग के सम्मुख
रामगढ़ में अपने लाडले कुत्ते के साथ १९३६;
अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करते हुए पंत जी,
आचार्य क्षितिमोहन सेन और निराला जी के साथ,
१९४५ साहित्यकार संसद भवन के उद्घाटन समारोह में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी के साथ,
साहित्य अकादमी की बैठक में, साहित्यकार संसद भवन में माखनलाल जी के साथ, १९५२,
सुभद्रा जी के साथ, पिता जी, छोटी बहन और भाई के साथ : चतुर्थ भाग के सम्मुख
अरुणा (महादेवी जी की एक चित्र रचना) : पंचम भाग के सम्मुख

प्रथम भाग : जीवनी

बचपन के दिन

श्रीमती श्यामा देवी सक्सेना

परिवार मे सात पीढियो से केवल एक-एक ही लडका जन्म ले रहा था। जब जिज्जी (महादेवी) हुईं तो दादी ने दादा से कहा लडकी—भवानी हुई है। दादा सुनकर प्रसन्न हो गए कि उनके एकमात्र पुत्र के प्रथम सतान लडकी हुई है। दादी से कहने लगे—मेरे बडे भाग हैं। यह देवी है, मेरे घर की महादेवी! दादा की आतरिक प्रसन्नता अनत थी—कन्यादान की मन मे कितनी आकाक्षा थी—कन्यादान, महादान! इस पुण्य से वचित उनके मन का कोना उदास था।

बाबूजी बहुत सुदर, सौम्य, विद्वान और हँसमुख थे। जीवन उन्होने रियासतो मे ही बिताया, इन्दौर और नरसिंहगढ की रियासतो मे। पहले वे डेली कॉलेज, इन्दौर मे अध्यापन-कार्य करते थे। तब वहाँ केवल राजकुमार पढते थे। नरसिंहगढ के राजकुमार बाबूजी के शिष्य थे। बाबूजी का वे बहुत आदर करते थे। जब वे नरसिंहगढ की राजगद्दी पर बैठे तो उन्होने बाबूजी से नरसिंहगढ आने का आग्रह किया। बाबूजी ने इन्दौर-कॉलेज की सरकारी नौकरी छोड दी, यद्यपि यह नौकरी अच्छी थी, पेन्शन वाली थी।

नरसिंहगढ और इन्दौर, इन दोनो ही जगहो मे गोश्त नही खाया जाता था। किंतु बाबूजी गोश्त के प्रेमी थे। वे गोश्त खाते तो थे ही, राजा साहब के साथ शिकार के लिए भी जाते थे। माँ गोश्त नहीं खाती थीं, उन्हे परहेज भी था। अत. गोश्त, बाबूजी के ही आदेश से, घर के बाहर, अहाते की एक कोठरी मे, पकता था। गोश्त पकाने और खाने के बर्तन अलग थे—थाली, कटोरा, पतीली। बाहर के ही कमरे मे बाबूजी खाना खाते थे। माँ अपनी रसोई से खाना भिजवा देती थी। वे बहुत बढिया खाना बनाती थी—बाबूजी को उनके बनाए खाने मे रस मिलता था। वे कढी-बेसन के भी बडे प्रेमी थे। अक्सर चौके मे आकर खाना खा जाते। घर के अदर फूल की थालियो का ही प्रयोग होता था। बाहर की रसोई एव बाहर के कमरे मे प्याला-प्लेट, छुरी-कांटे का प्रयोग वर्जित नही था। माँ को गोश्त से परहेज अवश्य था, किंतु पिताजी अथवा भाइयो के खाने मे उन्हे कभी कोई आपत्ति नही हुई। एक बार किसी ने मछली या गोश्त भेजा। नौकर ने उसे घर के अदर ही रख दिया। जिज्जी ने देखा तो उन्हे घिन आ गई। माँ ने डाँटते हुए समझाया—जिस चीज को बाप-भाई खाते हैं उससे तुम घिन करोगी तो उन्हें हज़म कैसे होगा?

माँ-बाबूजी दोनो का ही स्वभाव सलिला के दो कगारो-सा था, किसी भी बात मे एक-

दूसरे से साम्य नहीं, किंतु फिर भी एक-दूसरे की भावनाओं का इतना अधिक ध्यान रखते थे कि गार्हस्थ्य जीवन सुखी और सफल था। बाबूजी सुन्दर, खूब गोरे, माँ दीखने में साँवली, मामूली। माँ आस्थावान्, पिता, नास्तिक। माँ का सपूर्ण समय पूजा-पाठ, व्रत-नियम आदि में बीतता था, वे धर्मपरायण थीं, कर्मठ जीवन में विश्वास था। बाबूजी पढ़ने, शिकार खेलने, घूमने के शौकीन थे, अच्छा भोजन और आराम से रहने में उनका विश्वास था। बाबूजी भाषण बहुत अच्छा देते थे। नरसिंहगढ में जब कभी सास्कृतिक या धार्मिक आयोजन होते तो सयोजक उनसे भाषण देने की प्रार्थना अवश्य करते। ईसाई, आर्यसमाजी या सनातन-धर्मी किसी भी प्रकार का आयोजन हो, उन्हे बोलने के लिए आमन्त्रित किया जाता और वे आमत्रण को स्वीकार करते। बाबूजी पूजा-पाठ में विश्वास नहीं करते थे, किन्तु उनका सिद्धात था कि दूसरे के विश्वास को चोट नही पहुँचानी चाहिए। माँ की आस्था तथा इच्छा का आदर करते हुए उन्होने घर मे मदिर बनवाया और मथुरा से रामचद्रजी, सीताजी तथा लक्ष्मणजी की सगमरमर की मूर्तियाँ मँगाकर स्थापित की। माँ तीन घण्टे नियमित रूप से भगवान की पूजा करती थीं। सस्ता समय था। नौकर-चाकर रियासत से मिलते थे। माँ को पूजा करने के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता था। किंतु कई पूजाएँ ऐसी भी होती जिनमे पति एव गृहस्वामी की स्थिति अनिवार्य मानी जाती है। माँ बाबूजी से पहले दिन ही कह देती कि कल आपको पूजा करनी है तथा विशिष्ट विधियो का पालन करना है। बाबूजी उनकी बात मानते हुए कहते—अच्छा सवेरे पानी गरम करवा देना। बाबूजी को गठिया का रोग था अत नित्य या सवेरे नहाना वे पसद नहीं करते थे। प्रति मास सत्यनारायण की कथा तथा उन पूजाओं मे जिनके लिए माँ कहती वे विधिवत् बैठते, जो कुछ भी कहती वह करते और फिर हँसते हुए हम लोगों के पास आ जाते। उस समय वे ईसाई मिशनरियो के हिन्दू धर्म विरोधी वाक्यों को दुहरा देते-—

माला लक्कड, देवा पत्थर, गगा-जमुना पानी।
रामा, कृष्णा मरते देखे, सारा वेद कहानी॥

एक बार बाबूजी गभीर रूप से बीमार पडे। उनकी मरणासन्न स्थिति देख डाक्टरो ने उनसे कहा—राम-राम कहिए। पर वे कहने लगे—मैं भगवान् का नाम नही लूँगा, यह घूस देना है। एक-दो-तीन कहूँगा।

माँ की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। रामायण, महाभारत, गीता आदि के कई अश उन्हे याद थे। विनयपत्रिका तो कठस्थ थी। तुलसीदास जी की वे भक्त थीं। रामचद्रजी उनके इष्टदेव थे। चैत्र मे रामजन्म के अवसर पर नौ दिनो तक रामायण का पाठ इस भाँति करती कि रामनवमी के दिन पाठ पूर्ण हो जाता—फिर धूमधाम के साथ रामायण और रामचन्द्रजी की आरती होती और प्रसाद बँटता। जब हम दोनो (जिज्जी और मैं) इस योग्य हो गए कि रामायण ठीक से पढ लें तो रामायण का पाठ करना हम दोनों का

काम हो गया। हम दोनो क्रम से पढते—एक उठता तो दूसरा बैठता। माँ अन्य देवी-देवताओं, कृष्ण आदि से सबधित धार्मिक ग्रथ भी श्रद्धा से पढती। बाबूजी धार्मिक पुस्तकें इधर-उधर से मंगा कर उन्हे देते और छोटा भाई उनके लिए रेकोर्ड ला देता।

माँ सवेरे चार बजे उठ जाती। स्नान आदि से निवृत्त हो पूजागृह मे चली जाती और पूजा पूरी होने पर घर का काम देखती। लोहे का एक बडा-सा स्प्रिंगदार पलँग था। बाबूजी उस पलँग पर हम बच्चो के साथ सोते थे—माँ केवल सबसे छोटे बच्चे को ही अपने साथ सुलाती थी। वैसे बूढी नौकरानी लछिया की माँ हम बच्चो की देखभाल करती थी। सवेरे रामा नौकर स्टोव जलाकर चाय बनाता। सब बच्चो को पिताजी चाय और दो-दो हन्टले पामर बिस्कुट देते। चाय पीने के बाद हमलोग बिस्तर छोडते। माँ को यह पसद नही था कि बच्चो को सवेरे उठते ही चाय दे दी जाए। वे बाबूजी से कहती कि जब बच्चे कुल्ला-दातुन कर ले तब उन्हे कुछ खाने को दीजिए। बाबूजी हँस देते—शेर कुल्ला-दातुन करता है ? मेरे बच्चे शेर है।

हम दो बहनें बडी थी, उसके बाद दो भाई। बहनो में लडाई कभी नही हुई। होती भी कैसे ! जिज्जी का शात, गभीर स्वभाव। बडे भाई का भी वैसा ही स्वभाव। लडाई मुझमे और छोटे भाई मे होती थी। दोनो ही चचल शरारती। छोटा हठी और अपने मन का है। एक बार पिताजी ने हम चारो के लिए चार आसन बनवाए। जब जेल से आसन बन कर आए तो पिताजी ने कहा कि पहले महादेवी को अपनी रुचि का आसन चुनने दो। जिज्जी ने एक आसन—सबसे अधिक कलात्मक आसन—चुन लिया। मुझे और बडे भाई को इसमे कोई आपत्ति नही हुई। पर छोटा भाई बिगड गया—नहीं मैं तो जिज्जी वाला आसन ही लूँगा। किंतु बाबूजी ने उसे वह आसन देना अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि यह विशेष आसन मैंने महादेवी की रुचि को ध्यान मे रख कर बनवाया है। छोटा भाई उस समय तो लड-झगडकर चुप हो गया पर उसने मन-ही-मन उस आसन को प्राप्त कर लेने का निश्चय कर लिया। जिज्जी को चीनी और नमक से घिन थी। बिना चम्मच के वे इन्हे छूती नहीं थी। छोटे भाई ने आसन पर एक मुट्ठी चीनी रगड दी और उसे प्राप्त कर लिया।

हम चारो भाई-बहन रामा नौकर के साथ अक्सर पहाड पर घूमने जाते। रामा हम लोगो का बहुत ख्याल रखता, किंतु साथ ही डाँटता, चिढाता और बेहद तग करता। बरसात के दिन थे। हम लोग पहाड पर चढ रहे थे। दो चट्टानो के बीच एक सफेद फल दीखा। रामा बोला—यह कद-मूल फल है। इसे ही ऋषि-मुनि खाते थे। हम लोगो ने जब उसकी बडी चिरौरी की तब वह उस फल को तोडने के लिए तैयार हुआ। वह फल तोडना साहस और चतुराई का काम था। दो चट्टानो के बीच खाई, जरा पैर फिसले तो पता भी न चले। किसी तरह पेट के बल घिसटते हुए रामा ने वह फल तोडा, झरने के पानी से धोया और सबको बाँटा। खाने मे वह फल मीठा था। किंतु थोडी ही देर

में जीभ में चिकोटी काटने की अनुभूति और लार का टपकना! किसी तरह हम लोग घर पहुँचे। सबका मुँह इतना अधिक सूज गया था कि बोलना असंभव हो गया। पिताजी ने देखा। तत्काल सिविल सर्जन को बुलाया, इलाज हुआ। चार दिन तक कोई बिस्तर नहीं छोड पाया। पिताजी ने जब सब किस्सा सुना तो रामा को बहुत डाँटा। पर वे उसे प्यार भी बेहद करते थे। उसकी ईमानदारी के प्रशंसक थे।

माँ और पिताजी दोनों को ही गाने का बड़ा शौक था। उस समय परदा बहुत था। पिताजी मास्टर रख कर माँ को गाना नहीं सिखा सकते थे। अतः उन्होंने अपने लिए मास्टर रखा और हारमोनियम पर गाना सीखने लगे। माँ परदे के अंदर से गाना सुनती एवं सीखती। मास्टर साहब के चले जाने पर वे हारमोनियम पर उनका सिखाया हुआ भजन सुना देतीं। साल भर के अंदर ही वे सब स्वर निकालने लगीं, सभी राग-रागिनियाँ हारमोनियम पर उतारने लगीं। वे ढेरों गाने सीख गईं। सबेरे चार बजे माँ प्रभाती अवश्य गातीं। 'तू दयाल दीन हूँ ..' और 'नमामी शमी शाम...' उनके प्रिय भजन थे। माँ इतनी सुन्दर लय में गातीं कि पिताजी भाव-विभोर हो जाते। जिज्जी के कुछ गीतों में संस्कार एवं वातावरणवश माँ के गीतों की लय मिलती है। उनके 'हुए फूल चदन...' गीत म 'नमामी शमी शाम .' का ही छंद है। एक बार माँ होली में गा रही थीं—'लाल भयो नंदलाल, श्यामता रंग गयो है '। आगे की पंक्तियाँ वे भूल गईं। अपनी बड़ी बेटी से उन्होंने कहा तो बेटी ने पंक्तियाँ बनाकर जोड दीं—

लाल मुकुट सिर लाल पीताम्बर, लाल गले बनमाल।
राधे लाल, भयी सब लाली सुन्दर नैन विशाल।

जिज्जी ने ऐसे ही चार अंतरे बनाए। फिर माँ जब कभी बारहमासी, होली, लोकगीत आदि जिसकी भी पंक्तियाँ भूल जातीं—जिज्जी से कहतीं और वे बना देतीं। जिज्जी का कविता लिखना इसी भाँति प्रारंभ हुआ।

बाबूजी का परिवार-केन्द्रित स्वभाव! बाहर जाना वे परिवार के साथ ही अच्छा मानते थे। राजा साहब के यहाँ या काम से कहीं जाना हुआ तो बात दूसरी है अन्यथा वे माँ या हम लोगों के साथ ही बाहर निकलते थे। वे अपना अधिकांश समय घर में ही बिताते थे। हम लोगों के साथ बैठ कर हँसी मजाक करना उन्हें प्रिय था। दावतों में भी, यदि उन्हें ही आमन्त्रित किया जाता तो वे नहीं जाते। नरसिंहगढ की औरतें परदा करती थीं, माँ स्वयं भी परदा करती थीं, अतः बाबूजी हम बच्चों को ही घुमाने ले जाते। हम लोग देहातों में जाते, कभी बग्घी में, कभी हाथी पर और कभी पैदल ही। बाबूजी को थिएटर देखने का बड़ा शौक था। इन्दौर, नरसिंहगढ दोनों ही जगह थिएटर कम्पनियाँ आती थीं। बाबूजी हम बच्चों के साथ थिएटर देखने जाते—लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद, खूने-हक। एक बार माँ को भी आग्रहपूर्वक ले गए। थिएटर देखने के बाद वे बड़ी दुःखी हुईं—भक्ति और

प्रेम के थिएटर देखने चाहिए और तुम दुश्मनी के देखते हो, बच्चों को भी दिखाते हो। दूसरी बार पिताजी उन्हें सूरदास दिखाने ले गए। वे बडी प्रसन्न हुई—भक्ति-भाव मे डूब गई। फिर पिताजी धार्मिक थिएटरो को देखने ही जाने लगे। शनिश्चर की शाम हम सब लोग मीरा, सत्य हरिश्चन्द्र, भक्त प्रह्लाद आदि थिएटर देखने जाते।

बाबूजी लडकियो की शिक्षा को आवश्यक मानते थे। जब हम लोग बडे हए तो उन्होने कहा कि मेरे बच्चे मध्य-प्रदेश के जगली इलाके मे बिगड जाएँगे। उस समय स्त्री-शिक्षा के दो ही स्थल थे—इलाहाबाद मे क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलिज, और जालन्धर मे कन्या महाविद्यालय। पिताजी इनमें से किसी एक विद्यालय मे भेजना चाहते थे, किंतु माँ ने तीव्र विरोध किया—देखो, पढाना-बढाना पीछे, पहले मैं लडकियो को घर का काम सिखा लूँ। बी० ए० करके गृहस्थी चलाना उन्हें नही आ सकता। बाबूजी को माँ के दृढ स्वर के आगे हार माननी पडी। फिर भी उन्होने पूछा—प्रशिक्षण मे कितना समय लगेगा ? माँ ने उसी स्वर मे कहा—जब सिखा लूँगी, बता दूँगी। और लडकियो की शिक्षा प्रारभ हुई, आँगन की पुताई से। दो चमारिनें शिक्षक बन कर आई। गोबर-मिट्टी आँगन मे डाली गई। जिज्जी ने सुदर आँगन लीप कर दिखा दिया। फिर एक बोरा गेहूँ आया। माँ का आदेश था—फटकना सीखो, यदि सास ने कहा तो क्या करोगी। खैर गेहूँ फटकना भी सीख लिया। फिर खाना बनाने की शिक्षा माँ ने स्वय दी। वे चिमटा लेकर पास ही बैठ जाती। जरा-सी भूल हो जाने पर चिमटा दिखाकर डाँटती। डाँट जिज्जी को ही सहनी पडती, बडी होने के कारण। कुशाग्र बुद्धि के कारण वे बहुत जल्दी सब काम सीख गई। मैं तो कुछ भी ठीक से नही सीख पाई, किसी काम मे गभीरतापूर्वक मन लगता तब न! जिज्जी ने छोटी-सी आयु मे बडे, पकौडी, कढी, पराठा, रोटी, तरकारी, सब कुछ बनाना सीख लिया। उनकी-सी रोटी बिरले ही बना पाते होगे। उनकी नौ साल की आयु होगी जब छोटे भाई की छुट्टी मे सपूर्ण खाना उन्होने बनाया। माँ प्रसन्न और सतुष्ट हो गई। दोनो लडकियो को खेल-कूद और पढने की स्वतत्रता मिल गई। मैं तो किसी काम को कुशलतापूर्वक सीख नही पाई—माँ का परीक्षक मन जिज्जी के कामो की ओर ही अधिक ध्यान देता। और वे सब काम इतनी सहजता तथा दायित्व के साथ पूरा कर देती कि हम लोगो की प्रशसा हो जाती। जिज्जी सफाई की प्रेमी हैं। उनके कामो, कपडो, कमरे एव एक-एक बात मे सफाई एव स्वच्छता ही अभिव्यक्त होती। उनका अध्ययन-प्रेमी स्वभाव अधिकतर उन्हे उनके कमरे से बाँध रखता, जहाँ के शात वातावरण मे वे पढती रहती।

हँसना हमारे परिवार का गुण है। हम सभी बहन-भाई खिलखिलाकर हँस सकते है। यह गुण, सभवत, हमें अपनी मौसी से मिला। हमारी एक ही तो मौसी हैं और उनका जीवन कष्ट का अथाह सागर रहा है। उस समय भी, जब कि असह्य दुख के भार से कोई दूसरा होता तो बोल भी न पाता, वे अपनी बातचीत के जीवत ढग से सबको प्रसन्न कर देती और हँसी का स्रोत उनकी बात-बात मे फूट पडता।

माँ की अनुमति मिलने पर बाबूजी ने संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पण्डितजी रख दिए, साथ ही अंग्रेजी पढ़ाने के लिए मास्टर साहब, गाना सिखाने के लिए संगीतज्ञ और चित्रकला के लिए एक कलाकार। हमें सारी शिक्षा घर में ही मिलती। बाबूजी स्वयं ध्यान रखते कि बच्चे ठीक से पढ़ रहे हैं, उन्नति कर रहे हैं आदि। शिक्षा के क्षेत्र में भी जिज्जी मुझसे आगे बढ़ गईं। उनकी तीव्र बुद्धि, पढ़ने में रुचि, सब कुछ जल्दी सीख लिया! रानी साहब नरसिंहगढ़, शिवकुमारी महारानी जिज्जी के ज्ञान और कविता-प्रेम से बहुत प्रभावित थीं। जिज्जी से आयु में बड़ी होने पर भी वे जिज्जी को अपनी सहेली मानती। वे स्वयं भी कविता करती थीं—कविता की प्रेमी थीं। जब-तब अपनी मोटर भेज कर वे जिज्जी को बुलवातीं। माँ हम दोनों को भेज देतीं। जिज्जी और रानी साहब महल के पुस्तकालय में बैठ कर पढ़तीं या काव्य-चर्चा करतीं और मैं महल के अंदर घूमती रहती। चाँदी के पलँग आदि बहुमूल्य वस्तुएँ देखने में आनंद लेती। कई बार रानी साहब का जिज्जी के लिए सवेरे ही फोन आ जाता—मैंने रात को कविता लिखी है। कार भेज रही हूँ। जल्दी आ जाओ। जिज्जी अपनी काव्य-सखी से मिलने के लिए उत्सुक हो जातीं और मैं महल में घूमने के लिए।

कन्यादान की दादा को आकुल प्रतीक्षा थी। नौ साल की लड़की, रोहिणी का दान! महापुण्य उपार्जन का साधन! दादा ने इस पुण्य को प्राप्त करने के लिए जिज्जी की शादी ठहरा दी। बाबूजी इतनी जल्दी लड़की का ब्याह नहीं करना चाहते थे। वे उच्च शिक्षा को आवश्यक मानते थे। किंतु दादा की आंतरिक इच्छा के प्रतिकूल जाना, उन्हें आघात पहुँचाना उन्हें उचित नहीं लगा। अतः जिज्जी को दसवाँ वर्ष लगा ही होगा कि उनका विवाह हो गया। दादा ने कन्यादान किया। ग्यारहवाँ वर्ष लगते-न-लगते माँ ने उन पर परदे का प्रतिबंध लगा दिया। वे घर में ही रहतीं। पढ़ती-लिखतीं, मंदिर धोतीं, घर का काम देखतीं। जिज्जी की सास थीं नहीं, ससुर थे। उनकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। जीजाजी स्वरूपनारायण दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। बाबूजी ने जीजाजी को अपने पास बुला लिया। इन्टर करा कर उन्हें लखनऊ के मेडिकल कॉलिज में बोर्डिंग में रख दिया, जहाँ से उन्होंने डाक्टरी में योग्यता प्राप्त की। जिज्जी की शादी करने के साथ ही बाबूजी ने अपनी बड़ी बेटी की मनोवृत्ति पर ध्यान दिया, वह बिलकुल तटस्थ थीं, अपने ही मनन-अध्ययन में लीन! बाबूजी अक्सर कहा करते थे—महादेवी नफासत पसंद, नाजुक मिजाज लड़की है। अपनी लड़की के दिन-प्रति-दिन के व्यवहार से उन्हें लगने लगा कि इस अल्प आयु में लड़की की शादी करके उन्होंने महान् भूल की और वह इस जीवन को सुखपूर्वक नहीं अपना पाएगी। बाबूजी ने अपनी भूल के प्रायश्चित्त स्वरूप, उस समय के संदर्भ में, एक महान निर्णय ले लिया। वे अपनी बेटी और दामाद को अलग-अलग रखेंगे ताकि वह पृथकता की खाई एक दूसरे को मनोनुकूल जीवन जीने दे। बाबूजी ने क्रास्थवेट बोर्डिंग हाउस में हम दोनों बहनों को भेजने का निश्चय कर लिया। परिवारवालों ने सुना तो बड़ा विरोध किया—क्या बेटी की कमाई खाएँगे?

बाबूजी स्वयं हम लोगों को इलाहाबाद छोड़ने आए। मार्ग एवं स्टेशनों पर अनेक अपगु लोग मिले । मैं सदैव कहा करती थी—बाबूजी मुझमें माँ का रंग आया, मैं काली हूँ। बाबूजी को यह सुनना बुरा लगता था। वे मेरे कहने का प्रतिवाद करते हुए कहते—नहीं, माँ काली नहीं है। देखती नहीं हो दो रंग का गेहूँ होता है, सफेद और ललछौंह। माँ का ललछौंह रंग है। स्टेशन पर जब लूले, लँगड़े, अधे, काने लोग मिले तो बाबूजी ने मुझसे कहा—तुम इन सबसे सुंदर हो। ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम्हें अच्छा बनाया है। 'सौ से बुरा तो एक से बेहतर बना दिया।' बाबूजी गम्भीर स्थिति को समझने वाले और खुले दिल के व्यक्ति थे, जिन्होंने सदैव अपने बच्चों के कल्याण को ध्यान में रखा।

हम लोगों के होस्टल में प्रवेश करने के लिए ही मानो दादा का जिज्जी को दिया हुआ नाम 'महादेवी' प्रतीक्षा कर रहा था। इसने जिज्जी के लिए स्वतत्र आत्म-निर्भर जीवन का मार्ग उन्मुक्त कर उनसे काव्य के उस शाश्वत सत्य का वरण करवा दिया जो उनके जीवन की सार्थकता है।

[एक भेंट-वार्ता के आधार पर—शांति जोशी]
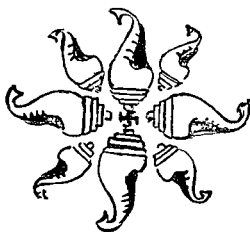
जीवन-झाँकी

गंगाप्रसाद पाण्डेय

होली भारतीय त्योहारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक पर्व है। इसे धरती का निजी उत्सव कहना चाहिए। धरती के रूप, रंग, रस, गंध होली में सजीव और सहज ही यौवनित हो उठते हैं। रसाल की मधुमाती मंजरियाँ फागुनी वातावरण में झूम-झूम कर विश्व-प्राणों में मादकता का संचार करने लगती हैं। मधूक रसभार से धरती पर चू पड़ते हैं। अन्नमयी नवीन फसल आत्म-समर्पण द्वारा मानवीय जीवन-साधना में तृप्ति का उपहार लेकर उपस्थित होती है। चतुर्दिक राग रंग और उल्लास की पिचकारियाँ छूटने लगती हैं। धरती और आकाश अबीर-गुलाल से अनुरंजित हो उठते हैं।

फाग-राग की सरस-स्निग्ध तरंगों में सारा जीवन तरंगित होने लगता है—यही तो होली है। सबसे बढ़कर यह कि इसी दिन से हमारा नया सम्वत् प्रारम्भ होता है। पौराणिक कथा के रूप में भी होली प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) की रक्षा और पूतना (जो पूत नहीं है) का अन्तक दिन है। इस प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से होली की अपनी महिमा और विशेषता है।

इसी राग रंगमय मंगल-मंडित दिन को साहित्य की देवी—महादेवी का जन्म सम्वत् १९६४ में फर्रुखाबाद, उत्तर-प्रदेश में हुआ। जन्मदिन की यह रंगमयता और सार्वजनीनता उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सन्निहित है। जीवन एवं साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगों सूतों का सम्मेलन सहज ही नहीं मिलता। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार तथा समन्वयवादी आलोचक होने के साथ-साथ वे अद्वितीय रेखा-चित्रकार, संस्मरण-लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबन्धकार, उच्चकोटि की चित्रकर्त्री और परम प्रबुद्ध समाज तथा राष्ट्र सेविका भी हैं। उनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालायें हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में उनके व्यक्तित्व की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है। इस दृष्टि से वे केवल भारत में ही नहीं, विश्व भर में इतनी विराट और व्यापक प्रतिभा की अकेली कलाकार हैं।

आकाश सभी प्रकार के आलोकों और रंगों का आधार है। यदि आपने कभी सन्ध्या का आकाश देखा है तो महादेवी जी की इन पंक्तियों का रंग परखिए—आकाश और कवयित्री का तादात्म्य देखिए—

प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन,
प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।

महादेवी जी माँ-बाप की पहली संतान है। रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज मे आज भी, पर आज के पचास वर्ष पहले तो निश्चित रूप से प्रथम कन्या-लाभ शुभ या सुखद नही माना जाता था। महादेवी जी ने स्वय इसका उल्लेख किया है—"जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी-बूढ़ियाँ सकेत से मूक गाने वालियों को जाने के लिये कह देती और बड़े-बूढ़े इशारे से नीरव बाजे वालों को विदा देते—यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उस बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।" सौभाग्य से इनका जन्म बड़ी प्रतीक्षा और मनौती के पश्चात हुआ। इनके बाबा ने इसे अपनी कुल देवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और आदर प्रदर्शित करने के लिये नाम रखा—महादेवी।

साकेतकार की यह उक्ति—'सौ सौ पुत्रों से भी अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला' वास्तव मे राजा जनक की पुत्रियो के लिये जितनी सार्थक है, उतनी ही श्री गोविन्द प्रसाद की पुत्री महादेवी के लिये भी।

महादेवी जी का काव्य करुणा-कलित-अश्रुसिक्त है। पैदा होते ही रोते तो सब बच्चे हैं, पर इनकी रोने की अद्भुद आदत! माँ—हेमरानी देवी आस्तिक स्वभाव की भारतीय नारी होने के कारण पति को खिलाने-पिलाने का कार्य नौकरो पर न छोड कर स्वय करना चाहती थीं और महादेवी जी इस बीच रो-रोकर कोलाहल मचा देती थीं। माँ ने विवशता से परम्परा-प्रचलित अफीम का सहज सम्बल ग्रहण किया। अफीम खिलायी और झूले पर पडे पलँगे पर डाल दिया। वे अपनी दैनिकी मे व्यस्त हो गईं और बालिका ने कल्पना-लोक की सैर की।

अफीम-सेवन से हानि जो भी हुई हो पर प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि अन्य शिशुओं की अपेक्षा इनका विकास शीघ्र हुआ। तीन वर्ष की अवस्था मे ही आम की पाल से सार चुन लेने में आप निपुण हो गईं। वर्णमाला-ज्ञान के साथ ही भाई-बहन को चिढाने की कला का प्रदर्शन करने लगी।

पाँच वर्ष की होते-होते आप को भोपाल तथा इन्दौर की यात्रा भी करनी पड़ी, जहाँ 'अतीत के चलचित्र' का रामा इन्हे मिला। छोटे भाई की स्पर्धा मे साम दाम-दण्ड-भेद के द्वारा रामा को आप किस तरह केवल अपने ही लिये राजा कहने को बाध्य कर देती थीं, इसकी भी एक रोचक कहानी है। अवस्था की प्रगति के साथ-साथ जीवन-विस्तार

की छाया में यह कला-कुशलता घर की सीमा से निकल कर बगीचे के फूलो और पडोसियो के घर तक पहुँच गयी। रसाल और फूलो का यह आकर्षण कलात्मक रुचि का प्रतीक माना जाय तो राजा कहलाने का हठ पुरुष के साथ समानाधिकार का बीजारोपण। इन्दौर मे पूर्णत व्यवस्थित होने पर मां (जिज्जी) ने चाहा कि बेटी को कुछ समय खिलौनो मे उलझा रखें, कुछ समय गृह-कार्य की शिक्षा दें और यदि यह सब न हो सके तो पाटी पकडा कर स्कूल ही भेज दें। महादेवी जी इन चक्करो मे नही पडना चाहती थी। उनको तो फूल, तितली, हरी दूब और फर्श या दीवाल पर कुछ उरेहने के लिये कोयला और सिन्दूर के अतिरिक्त और कुछ नही चाहिए। माँ-बाप के लिये एक परेशानी। छोटी बहन और भाई की ओर सकेत करते हुये जिज्जी ने कहा—'खेलना छोटो का काम है, बडो का पढना या घर का काम करना।' इन्होने पढना पसन्द किया तो आश्चर्य नही।

आर्य-समाजी सस्कारो के साथ आप को मिशन स्कूल मे भरती कर दिया गया। घर मे हिन्दी, उर्दू, चित्रकला और सगीत की पढाई का प्रबध हो गया। जिज्जी ने किंचित डॉटकर कहा—'अब मास्टरो से छुट्टी लिये बिना घर से बाहर मत जाना। पढोगी नही तो घर मे चुपचाप बैठी तो रहोगी।'

पढाई प्रारम्भ के प्रथम दिन ही आप थोडी देर तक अध्यापक के पास बैठी रही और फिर छुट्टी की मांग पेश की। आवश्यकता पूछने पर उत्तर दिया—'फूल तोड लाऊँ नही तो माली तोडकर बाबू (पिता जी) के गुलदस्ते मे लगा देगा, जहाँ वे सूख जाते है।' 'तो क्या तुम्हारे तोडने से नही सूखते?' 'सूखते तो हैं, पर भगवान् जी पर चढने के बाद। फिर जिज्जी उन्हे नदी भेजवा देती है। माली उनको कूडे मे फेक देता है। और बाबू बीनने भी नही देते।' प्रश्नोत्तर से पडित जी इतने प्रसन्न हुये कि उन्होने तुरत छुट्टी दे दी। धीरे-धीरे पडित जी को ज्ञात हुआ कि बालिका केवल बातचीत मे ही नही पढने मे भी प्रवीण है। लडकियाँ और हो ही क्या सकती है, लडाकू या पढाकू। महादेवी जी ने दोनो रूपो को अपनाया है। लडाकू रूप उनके विद्रोह और नारी विषयक निबन्धो मे मुखरित है और उनका पढाकू रूप तो जग जाहिर है ही! जो भी हो, शैशव मे पढाई की अपेक्षा आपको इधर-उधर ऊधम मचाना ही अधिक प्रिय था।

रामा नामक रेखाचित्र मे महादेवी जी ने अपने बचपन की अनेक मनोरजक घटनाओ का अकन किया है, जिनसे उनके स्वभाव और उनकी प्रबुद्धता का पता चलता है। दशहरे के मेले में खिलौने खरीदने के लिये रामा ने एक को कधे पर बिठाया और दूसरे को गोद मे ले लिया। महादेवी जी को उँगली पकडाते हुए बार-बार कहा—'उँगरिया जिन छोडियो राजा भइया।' सिर हिलाते हुये स्वीकृति देते-देते ही इन्होने उँगली छोडकर मेला देखने का निश्चय कर लिया। भटकते-भटकते और दबने से बचते-बचते जब इन्हे भूख लगी तब रामा का स्मरण अनिवार्य हो उठा। एक मिठाई की दूकानपर खडे होकर अपनी उद्विग्नता को छिपाते हुये इन्होने सहज भाव से प्रश्न किया—'क्या तुमने रामा को देखा है?

वह खो गया है।' हलवाई ने वात्सल्य मुग्ध होकर पूछा—'कैसा है तुम्हारा रामा ?' इन्होंने ओंठ दबा कर सतोष के साथ कहा—'बहुत अच्छा है'। हलवाई इस उत्तर से क्या समझता ? अन्तत उसने आग्रह के साथ विश्राम करने के लिये वहीं बिठा लिया। 'मैं हार तो मानना नहीं चाहती थी, परन्तु पाँव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थालों मे कुछ कम निमत्रण नही था। इसी से दूकान के एक कोने मे बिछे टाट पर सम्मान्य अतिथि की मुद्रा मे बैठकर मैं बूढे से मिठाई रूपी अर्घ्य को स्वीकार करते हुये उसे अपनी महान यात्रा की कथा सुनाने लगी।' सन्ध्या समय जब सबसे पूछते-पूछते बडी कठिनाई से रामा उस दूकान के सामने पहुँचा तब इन्होंने विजय-गर्व से फूलकर कहा—'तुम इतने बडे होकर भी खो जाते हो रामा।'

एक बार जब आप केवल सात वर्ष की थी, पडोस मे किसी आवारा कुत्ती ने बच्चे दिये। जाडे की रात का सनाका और ठन्डी हवा के सन-सन झोंको के साथ पिल्लों की कूं-कूं की ध्वनि करुणा का ऐसा सचार करने लगी, जो महादेवी जी के कोमल हृदय के लिये असह्य हो उठी। बेचैनी के साथ आपने कहा—'बडा जाडा है, पिल्ले जडा रहे हैं। मैं उनको उठा लाती हूँ, सबेरे वहीं रख दूँगी। चलो, चलो, मेरी अच्छी जिज्जी।' अस्वीकृति की सूचना पाते ही आप जोर-जोर से रोने लगी। सारा घर जग गया और अन्त मे पिल्ले घर लाये गये। उनके इस स्वभाव मे आज भी कोई परिवर्तन नही हुआ। ऐसे अतिथि जीव-जन्तुओं से उनका घर अब भी प्राय भरा रहता है।

इस करुणाजनित स्वभाव के कारण जीवन और जगत की किस करुण स्थिति मे उनके हृदय का स्पदन झकृत नहीं ? सामने आई हुई किस रुक्षता को वे अपनी सहज स्निग्धता से सरस नहीं कर देना चाहती ? ऐसी कौन सी पाषाणी कठोरता है जो उनकी मूलाधार करुणा के स्पर्श से काँप नहीं उठती ? सत्य और समूह की रक्षा के लिये विद्रोह की किस ज्वाला को उन्होंने अपनी त्यागमयी तपस्या की आँच नहीं दी, यह बता सकना कठिन है।

उसी अवस्था मे पूजा-आरती के समय माँ से सुने हुये मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के सगीत पर मुग्ध होकर इन्होंने पद-रचना प्रारम्भ कर दी थी।

काव्य की प्रथम शिशु-रचना का प्रारम्भ सात वर्ष की अवस्था में इस प्रकार हुआ था—'आओ प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन मे बिछ जाओ'। किन्तु इसके बाद की लिखी पूर्ण रचना समस्यापूर्ति ही है —

> आगम है दिन नायक को, अरुनाई भरी नभ की गलियान मे,
> सीरी सुमद बतास बही, मुस्कान नई बगरी कलियान मे,
> सख धुनी बिरुदावलियाँ अब गुजित है खग औ अलियान मे,
> वारन के हित कज-कली मुकुताहल जोरि रही अँखियान में।

प्रयाग पढने आने के पहले से ही आप 'सरस्वती' पत्रिका से परिचित हो चुकी

थी। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की कविताएँ भी देख चुकी थी। बोलने की भाषा मे कविता लिखने की सुविधा इन्हें आकर्षित करने लगी थी। वस्तुत इन्होने 'मेघ बिना जल-वृष्टि भई है' को खडी बोली मे इस प्रकार रूपान्तरित कर दिया—

हाथी न अपनी सूँड म यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना जल-वृष्टि हो सकती कहो ?

'अहो' और 'कहो' देखकर ब्रजभाषा-प्रेमी आपके अध्यापक पडित जी ने कहा—'अर ये यहाँ भी पहुँच गये' ? पर आपने इसे अनसुना कर दिया और ब्रजभाषा छोडकर खडी बोली को अपना लिया।

खडी बोली की प्रथम पूर्ण रचना जो आपके आठवें वर्ष मे लिखी गई थी और जिसका शीर्षक 'दिया' है, यह है—

धूलि के जिन लघु कणो मे है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान !
आग कर देती जिसे पल मे जलाकर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्ती नई सुकुमार।
तेल मे भी है न आभा का कही आभास,
मिल गये सब तब दिया तू ने असीम प्रकाश।
धूलि से निर्मित हुआ है यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बने नि शोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर मे आलोक !

इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने महादेवी जी को इतना प्रभावित किया कि वे उस वेदना से कभी मुक्त नही हो सकी। नौकर ने पत्नी को इतना पीटा कि वह लहू-लुहान होकर रोती हुई जिज्जी के पास दौड आई अन्यथा वह उसे मार ही डालता। गर्भिणी स्त्री के लिये काम-काज भारी बोझ और ऊपर से ऐसी मार ! जिज्जी ने सहानुभूति के साथ उसकी गाथा सुनी और नौकर को डाँटा फटकारा। सब शान्त हो जाने पर महादेवी जी ने कहा—'हाय कितना पीटा है ! यह भी क्यो नही पीटती ?' जिज्जी ने सहज भाव से कह दिया—'आदमी मारे भी तो औरत कैसे हाथ उठा सकती है?' 'और अगर तुमको बाबू इसी तरह मारें तो ?' 'ना, ना, बाबू ऐसा नही कर सकते ! आर्यसमाजी हो कर भी मेरे साथ सत्यनारायण की कथा सुनते हैं, बडे अच्छे आदमी हैं। कोई-कोई आदमी दुष्ट होते हैं।' 'तो फिर इसने दुष्ट के साथ शादी क्यो की ?' 'पगली शादी तो घर के बडे-बूढे करते हैं, यह बेचारी क्या करे ? अब कोई उपाय नही।'

इसके बाद थोडी देर तक दोनों एक-दूसरे को देखती रहीं, फिर जिज्जी ने जाने क्यो दीर्घ सांस ली और महादेवी जैसे अपने भीतर डूब गई।

वय की सामर्थ्य से कही अधिक आपने सातवे वर्ष से लेकर नवें वर्ष तक के बीच मे हिन्दी, उर्दू, सगीत तथा चित्रकला का अप्रत्याशित ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ब्रजभाषा के पद, समस्यापूर्ति के साथ खडी बोली मे भी कविताएँ लिखने लगी थीं। इसे सस्कार की प्रबलता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जिज्जी और बाबूजी ने भी बेटी की असाधारण प्रतिभा और बुद्धि की प्रखरता देखकर प्रोत्साहन देने में कभी कोई चूक नही की। आजीवन शिक्षा-सस्थाओ से सम्बद्ध रहन के कारण बाबू जी बच्चो की प्रतिभा पहचानने मे पारगत थे। पढाई लिखाई में पिता जी का प्रबुद्ध निरीक्षण-परीक्षण और उत्साह-वर्द्धन तथा गृह-कार्य मे माताजी की शिक्षा-दीक्षा ने मिलकर महादेवी जी को दोनो क्षेत्रो मे दक्ष कर दिया था। महादेवी जी ने इसका उल्लेख भी किया है—"एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्म-निष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने सस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता के कठोर धरातल पर साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, किन्तु किसी वर्ग या सम्प्रदाय मे न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।"

सम्भवत इसीलिये एक सजग यथार्थवादी की तरह सोचने समझने और आस्थावान आदर्शवादी की तरह कार्य करने की उनकी अपनी एक अलग प्रणाली है। समन्वय और सामञ्जस्य उनके जीवन के मूलाधार है। अनेक आश्चर्यजनक विलक्षणाताओ का सहज समाहार, विविध विजातीय वर्गों से समान सम्बध, विभिन्न वयस और विचार के व्यक्तिया मे एकरस सहानुभूति, परस्पर विरोधी नाना प्रकार के कार्यो को कर सकने की अद्भुत क्षमता, मोतियो की हाट और चिनगारियो का एक साथ मेला लगाते चलने की अनन्य धुन आदि उनकी समन्वयशीलता के साक्षी हैं। काव्य म गम्भीर रहस्यवादी होकर भी जीवन मे इतनी सहज सरल तथा परानुभूतिशील, स्पष्ट और शिशुवत कुतूहली होने का रहस्य भी यही है।

अभी तक छोटे से खिलौने-विशेष के लिये वे बच्चो के साथ कलह-कोलाहल तक भी उतर आती है। चुन्नी का हाथी छीन लेना चाहती है, मुन्नी की गुडिया छिपा लेने की ताक मे रहती है। सपर्कित परिवार के बच्चे खिलौनो के विषय मे इनसे सदा सतर्क रहते है। खिलौनो का इतना बडा सग्रह इनके पास है कि शायद ही किसी और के पास हो। उनकी इस पक्ति पर ध्यान दीजिए—'यह खिलौने और यह उर प्रिय नयी अस-मानता है'।

'क्षण मे आँसू क्षण मे हास' की उक्ति मे भी बच्चों के साथ आपकी बाजी रहती है। मैंने देखा है कि निराला जी की मानसिक अवस्था से करुणार्द्र होकर आँसुओ के साथ

उन्हें विदा देते समय भी वे गुप्त जी का स्वागत मुक्त हास के साथ करने में समर्थ हैं। पलकों में आँसू और ओंठों में हास साथ ही सँजो रखने में वे अद्वितीय हैं।

नवाँ वर्ष पूरा होने को हुआ कि बाबा ने गुड़िया का ब्याह रचने की ठान ली। पके आम—बूढ़े होने के कारण वे अपनी महामहिम महादेवी का विवाह अपनी आँखों की छाया में ही कर देना चाहते थे। घर में उनके विरुद्ध कुछ कहने का किसी में साहस भी नहीं था। प्राचीन परिपाटी यही थी। बाबा की हठ, उन्होंने न केवल ब्याह वरन् आगामी कई वर्षों तक साइत न बनने के कारण उसी समय एक सप्ताह के लिए बालिका की विदा भी कर दी। रोती चिल्लाती इस विदा की कातरवाणी कितनी हृदय-विदारक रही होगी, यह सहज ही अनुमेय है।

ससुराल (बरेली के पास नवाबगंज नामक कस्बा) पहुँचकर महादेवी जी ने जो उत्पात मचाया उसे ससुराल वाले ही जानते हैं। न खाना, न पीना, न बोलना, न सुनना—केवल रोना, रोना, बस रोना। आँखें सूज गईं, ज्वर आ गया और कय का ताँता बँध गया। नयी बालिका वहू के स्वागत-समारोह का उत्साह पीछे पड़ गया और घर में एक आतंक छा गया। फलतः श्वसुर महोदय दूसरे दिन ही इन्हें वापस लौटा गये। श्वसुर लड़कियों की स्कूली पढ़ाई के नितान्त विरोधी थे, इसलिये पढ़ाई का क्रम टूट गया। इसे विधि का विधान ही कहना चाहिये कि साल भर के बाद ही श्वसुर का देहान्त हो गया।

महादेवी जी के लिये अब केवल एक ही प्रशस्त पथ था—पढ़ाई का। विद्यानुरागी बाबू जी ने भी यही उचित समझा और आगे पढ़ने के लिये इन्हें क्रास्थवेट कालेज, प्रयाग में भरती कर दिया। फिर क्या था, धड़ल्ले से पढ़ाई और काव्य-रचना चल पड़ी। मिडिल की परीक्षा आपने प्रथम श्रेणी में पास की और प्रान्त भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। उसी समय सौ छन्दों का एक करुण खण्डकाव्य भी लिखा।

महादेवी जी ने उस समय की साहित्यिक मनोभूमि का उल्लेख किया है—'जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत अध्ययन के लिये बाहर आयी, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता', 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की थी वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिये लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया। उस समय की 'अबला', 'विधवा' आदि रचनायें 'आर्य महिला' एवं 'महिला जगत' पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं।

इसके बाद महादेवी जी की काव्य-प्रवृत्ति उनकी मूल भाव धारा की ओर उन्मुख हो गई, 'जिसमें व्यष्टिगत दुख समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षि-शावक को कई बार गिर-उठकर अपने पंखों के

सँभाल लेने पर मिलता होगा'। उस भाव की प्रथम रचना चाँद के प्रथम अक मे प्रकाशित हुई। तब से रचना-क्रम अबाध रूप से चलता रहा और बहुत बाद में प्रकाशित 'नीहार' का अधिकाश उनके मैट्रिक होने के पहले ही लिखा जा चुका था।

मिडिल, दसवाँ, ग्यारहवाँ दर्जा पास करते-करते कवि-सम्मेलनो, वाद-विवाद प्रतियोगिताओ मे प्राप्त तमगो और पुरस्कारो से छात्रावास का कमरा भर गया। उस समय की प्रचलित प्रसिद्ध पत्रिकाओ म कविताएँ प्रकाशित होने लगी और चारो ओर से कविताओ की माँग बढने लगी तथा काव्य-मर्मज्ञो का ध्यान इस नवीन प्राञ्जल प्रतिभा की ओर उत्सुकता से आकर्षित होने लगा। आशय यह कि मिडिल से इन्टर तक की विद्यार्थिनी के रूप मे ही आपको एक आश्चर्यजनक ख्याति मिल चुकी थी। सन् '२३, '२४ मे श्री इलाचन्द्र जोशी को अपने अल्पकालीन चाँद के सहकारी सपादक के रूप में महादेवी वर्मा के नाम से प्रकाशन के लिये आयी हुई कविता को देख कर आश्चर्य के साथ जो सदेह हुआ था उसका वर्णन उन्हाने 'सगम' के महादेवी अक मे अपने लेख 'जीवन विजयिनी महादेवी' मे रोचकता और विशदता के साथ किया है।

अपने कालेज-जीवन मे कालेज के बच्चो को नाटक खेलने के लिये आपने एक काव्य-रूपक की भी रचना की थी, जिसमें फूल, भ्रमर, तितली और वायु को पात्र बनाया गया था। न जाने क्यो आगे आपने इस विधा को प्रश्रय नही दिया? कालेज की सभी छात्राओ से आपका आत्मीय सम्बध और उनके सुख दुख से सर्वाधिक लगाव सहेलियो की चर्चा का विषय बना रहा। छात्राएँ और अध्यापिकाएँ सभी समान रूप से आपको स्नेह और सम्मान देती थी। श्री सुभद्राकुमारी चौहान से प्रगाढ मैत्री की नीव भी कालेज मे ही पडी। कविवर पत जी को हिन्दू बोर्डिग हाउस के कवि-सम्मेलन मे उसी समय इन्होने पहली बार देखा। उनके बडे बाल और वेशभूषा के कारण उन्हे लडकी समझकर पुरुषो के बीच बैठने की ढिठाई पर मन-ही-मन अप्रसन्न भी हुई।

बी० ए० पास होते ही गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस बार उन्होने साफ शब्दो मे दृढतापूर्वक, किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे विवाह को किसी भी स्थिति मे स्वीकार करने को तैयार नही और तब गौने की चर्चा ही व्यर्थ है। जिज्जी को यह निश्चय सुन कर अत्यत पीडा हुई और उन्होने बहुत तरह से समझाना भी चाहा, पर महादेवी जी अपने निश्चय पर अटल रही। बाबू जी को भी बहुत दुख हुआ और उन्होने इन्हे एक लम्बा पत्र लिखा जिसमे अबोध बालिका के प्रति विवाह रूप मे किये गये अन्याय की मुक्त कठ से क्षमा माँगते हुये यह भी लिखा कि यदि दूसरा विवाह करने की इच्छा है तो वे इनके साथ धर्म-परिवर्तन करने को भी तैयार है। इन्हाने अपने उत्तर मे स्पष्ट कर दिया कि दूसरे विवाह की बात नही, वे विवाह करना ही नही चाहती। यदि पिछले कृत्य की ग्लानि छोड कर उनके वर्तमान निश्चय को स्वीकार कर लिया जाय तो दोनो ही पक्ष पिछले पापो से मुक्त हो जायँगे। बाबू जी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसी समय से इस प्रसग का अन्त हो गया।

उन दिनों भारतीय नारी के लिये विवाह को इस प्रकार अस्वीकार कर देना कितना कठिन और विस्मयकारी था, कहने की बात नहीं। बचपन से ही महादेवी जी का यह स्वभाव रहा है कि उन्होंने जो अपने जीवन-विकास के लिये उचित समझा सो किया, हठ और विद्रोह के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उससे विमुख उन्हें नहीं कर सका।

विवाहित जीवन अस्वीकार करने की बात को लेकर कतिपय फ्रायड-भक्तों और भक्तिनियों ने, जिनका संयम और साधना पर विश्वास नहीं है, महादेवी जी के प्रति मनमाने अनुमान आरोपित करते हुये उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में इसकी प्रतिक्रिया का प्रतिफलन देखने की हास्यास्पद चेष्टा की है। वैवाहिक जीवन अस्वीकार करने के मूल में भारतीय नारी की युग-युगों से चली आती हुई वह दयनीय दशा जिसका उल्लेख अपने सामाजिक निबन्धों में महादेवी जी ने बारबार आक्रोश और क्षोभपूर्ण शब्दों में किया है तथा उनकी सहज वैराग्य भावना है। बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा से भी इसका समर्थन होता है। इसके अतिरिक्त पुरुष-निरपेक्ष नारी-व्यक्तित्व की स्थापना का उनका जीवन-व्यापी उद्देश्य भी इसमें सक्रिय रहा हो तो आश्चर्य नहीं। अनुमान से अधिक महत्त्व स्वयं उनके स्पष्ट कथन को न देकर हम अपने को ही लाछित करते हैं। उनके इस कथन पर ध्यान दीजिए —"मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था। कविता सब से बड़ा परिग्रह है, क्यों कि वह विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है।"

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके उन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर उनका जैसा विशाल परिवार पोषण सब के वश की बात नहीं। गाय, हिरण, कुत्ते, बिल्लियाँ, गिल्हरी, खरगोश, मोर, कबूतर तो उनके चिर संगी हैं ही, लता-पादप-पुष्प आदि तक उनकी पारिवारिक ममता के समान अधिकारी है। आगतुक और यदि वह अतिथि हो तो उसके स्वागत की उनकी तन्मयता देखने लायक होती है। विशाल साहित्यिक परिवार में से प्रयाग आने वाले साहित्यिकों के लिये तो उनका निवास घर ही सा है, पर असाहित्यिकों के लिये भी उनका द्वार मुक्त रहता है। गुप्त जी ने ठीक ही कहा था—— 'मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम-स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिये मुझे सरस्वती (महादेवी) के दर्शनों के लिये प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल-अक्षत भी चढ़ाना पड़ता है, पर सरस्वती के मंदिर में कुछ प्रसाद मिलता है। संसद हिन्दी के लिये उन्हीं का प्रसाद है।"

प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० करने के पश्चात् उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल कार्य समझ कर प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का भार ग्रहण किया और चाँद का निःशुल्क संपादन भी करने लगी। अब तक आपकी 'नीहार' और 'रश्मि' काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी थी।

यों तो कविताओं के साथ-साथ बचपन से ही आपने गद्य लिखना भी प्रारम्भ कर

दिया था और 'पर्दा प्रथा' पर लिखित निबन्धों की प्रतियोगिता में उत्तर-प्रदेश शिक्षा-विभाग से आपको मिडिल कक्षा में ही पुरस्कार भी मिल चुका था। 'भारतीय नारी' नामक नाटक भी क्रास्थवेट कालेज और विद्यापीठ में अभिनीत हो चुका था, कतिपय संस्मरण भी लिखे जा चुके थे, परन्तु चाँद के सपादकीय के रूप में लिखा गद्य अपना एक अलग महत्व रखता है। उपेक्षित प्राणियों में नारी-वर्ग का स्थान शीर्षस्थ है, इससे हम भारतीय अनभिज्ञ नहीं। महादेवी जी के लिये यह स्वाभाविक था कि इस वर्ग के प्रति किये गये अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध वे आवाज उठातीं। इन निबन्धों में उन्होंने भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का बहुत गहराई के साथ एक समाज-शास्त्री की भाँति विश्लेषण-विवेचन किया है। आगे चल कर किंचित परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ-साथ ये निबन्ध 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक कृति में संग्रहीत हुये हैं।

महादेवी जी कवि रूप में जितनी परिचित और प्रसिद्ध हैं उतनी गद्यकार के रूप में नहीं, यद्यपि उनका गद्य भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। काव्य की तरह उनकी गद्य-रचनायें भी गाम्भीर्य, प्रौढ़ता-प्राञ्जलता और उनके व्यक्तित्व की महार्घता से समन्वित और प्रकृष्ट और परिष्कृत हैं। अपने नारी विषयक निबन्धों में महादेवी जी ने जिस क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह बड़े-से-बड़े समाज-सुधारक में भी विरल है। सामान्य नारी की स्थिति पर विचार करते हुये उन्होंने विधवाओं, वेश्याओं और अवैध सन्तानों की समस्याओं पर भी अपने साहसी और निर्भीक विचार व्यक्त किये हैं। उनके सुझाव और निष्कर्ष इतने तटस्थ और सामाजिक चेतना से परिपुष्ट हैं, जो नर-नारी दोनों वर्गों के लिये उपयोगी और व्यावहारिक हैं। यह ठीक है कि नारी की करुण स्थिति देख कर उनका हृदय विह्वल हो गया और उनका विद्रोह सक्रिय हो उठा, परन्तु उन्होंने कभी निष्पक्षता छोड़कर सतुलन नहीं खोया—"*अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अतः इन निबन्धों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिये ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।* वस्तुतः नारी के प्रति उनकी संवेदनशील करुणा जीवन के प्रगतिशील दर्शन और कल्याण पर आधारित है। ऐसी स्थिति में बलिपशु के लिये करुणा और बलि करने वाले के प्रति आक्रोश स्वाभाविक ही कहा जायगा।

"*अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बी बना देंगे तो वे* विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ-धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होनी चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।"

उन्होंने घर के दायित्व के प्रति 'आधुनिकाओं' के विद्रोह को भी स्वीकार नहीं किया और न घर के दायित्वों तक ही सीमित रहने वाली परम्परा को ही माना। उनके मत से नारी का कार्यक्षेत्र घर भी है और घर के बाहर भी—"समाज को किसी न किसी दिन स्त्री के असंतोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे

पाकर वह अपने-आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुये भी उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।" उनका निष्कर्ष इन शब्दों में स्पष्ट है—"स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"

गद्य लिखने की प्रेरणा का स्पष्टीकरण करते हुये महादेवी जी ने लिखा है—"मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि-प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्व है, जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुये, निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुये और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुये जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव-जगत की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है। उसके बौद्धिक निरूपण के लिये मैंने गद्य को स्वीकार किया था।" उनके सामाजिक निबन्धों में उनका यह संकल्प अत्यंत ओज के साथ सार्थक और चरितार्थ हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

'नीरजा' उनके काव्य-संचरण का तीसरा सोपान है। इसमें अनुभूति के उत्कर्ष और कलात्मक मनोरमता के साथ हिन्दी गीत-काव्य अपने चरम विकास का स्पर्श पा लेता है। गीतों की दृष्टि से 'नीरजा' हिन्दी की श्रेष्ठतम रचना है। छायावाद के दुर्वासा आलोचक आचार्य शुक्ल ने भी इनके गीतों की सफलता को अनन्य माना है।

चौथी कृति 'सान्ध्यगीत' में आत्मा-परमात्मा तथा प्रकृति और विश्व के बीच रागात्मक सम्बंध का आकलन करते हुये महादेवी जी का काव्य समात्म भाव के उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाता है। रहस्यवादी काव्य की यही चरम सफलता है। उन्होंने स्वयं भी लिखा है " 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा।"

'सान्ध्यगीत' के प्रकाशन के साथ कवयित्री का चित्रकर्त्री रूप भी सामने आया। इस प्रकार 'सान्ध्यगीत' काव्य, संगीत और चित्र के समन्वित स्वरूप से आलोकित है।

उनकी पाँचवीं काव्य-कृति 'दीपशिखा' को काव्यमय चित्र तथा चित्रमय काव्य अथवा चित्रगीत की संज्ञा दी जा सकती है। प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि के रूप में एक चित्र अंकित है जो काव्योत्कर्ष की चारुता बढ़ाने में सहज ही समर्थ है। कला और भाव दोनों दृष्टियों से 'दीपशिखा' अत्यंत प्रौढ़ और अपने ढंग की अकेली काव्य-कृति है। 'दीपशिखा' देखने के पश्चात् ही निराला जी ने इनके विषय में लिखा था—

हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिमा कल्याणी।

राष्ट्रकवि गुप्त जी ने बधाई देते हुये ये पंक्तियाँ लिख भेजी थी—

सहज भिन्न हो महादेवियाँ एक रूप में मिली मुझे,
बता बहन साहित्य-शारदा या काव्यश्री कहूँ तुझे।

अपने चित्रों की चर्चा करते हुये महादेवी जी ने लिखा है—"शैशव से ही रंग और रेखाओं के प्रति मेरा बहुत कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसा कविता के प्रति। रात को स्लेट पर गणित के स्थान में तुक मिला कर और दिन में माया चाची की सिन्दूर की डिबिया चुराकर कोने में फर्श पर रंग भरना और दंड पाना मुझे अब तक स्मरण है। कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है। माध्यम की दृष्टि से चित्र सूक्ष्म और स्थूल के मध्य में स्थिति रखता है। देश-सीमा के बंधन रहते हुये भी वह रंगों की विविधता और रेखाओं की अनेकता के सहारे काव्य को रंग-रूपात्मक साकारता दे सकता है। अमूर्त भावों का जितना मूर्त वैभव चित्रकला में सुरक्षित रह सकता है उतना किसी अन्य कला में सहज नहीं, इसी से हमारे प्राचीन चित्र जीवन की स्थूलता को जितनी दृढ़ता से सँभाले हैं, जीवन की सूक्ष्मता को भी उतनी ही व्यापकता में बाँधे हुये हैं। चित्र-कला में बहुत छोटे से ज्ञान-बीज पर मैंने रंग-रेखा की शाखायें फैलायी है। ललित कला हो या उपयोगी शिल्प सभी को कुछ शीघ्र ही ग्रहण कर लेने की मुझ में सहज शक्ति है, इसी से चित्र बनाने से लेकर कपड़ा बुनने तक सब कुछ मैं अनायास ही कर लेती हूँ। परन्तु यह सत्य है कि कपड़ा बुन कर वह तृप्ति नहीं प्राप्त होती जो चित्र अंकित कर लेने पर स्वाभाविक है। मेरे गीत और मेरे चित्र दोनों के मूल में एक ही भाव रहना जितना अनिवार्य है उनकी अभिव्यक्तियों में अन्तर उतना ही स्वाभाविक। गीत में विविध रूप, रंग, भाव, ध्वनि सब एकत्र है, पर चित्र में इन सब के लिये स्थान नहीं रहता। उसमें प्रायः रंगों की विविधता और रेखाओं के बाहुल्य में भी एक ही भाव अंकित हो पाता है, इसी से मेरा चित्र गीत को एक मूर्त पीठिका मात्र दे सकता है, उसकी सम्पूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता। कुछ अजंता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्ति-कला के आकर्षण से, चित्रों में यत्रतत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नहीं बता सकती, पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला, ऐसा मेरा विश्वास है। रंगों की दृष्टि से मैं बहुत थोड़े और विशेषतः नीले सफेद से ही काम चला लेती हूँ। जहाँ कई को मिलाना आवश्यक होता है वहाँ ऐसे मिलाना अच्छा लगता है कि किसी की स्वतंत्र सत्ता न रह सके। प्रकृति का शान्त रूप जैसे मेरे हृदय को एक चंचल लय से भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशान्त स्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही सम्भवतः मेरी एकाग्रता का कारण रहती है। मेरे अन्तर्मुखी गीतों में तो यह एकाग्रता ही व्यक्त हो सकती है, परन्तु चित्र में उसका बाह्य वातावरण भी चित्रित हो सका है। मेरे निकट आँधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि

कुछ ऐसे विषय है जिन पर चित्र बनाना अनायास और बना लेने पर आनंद स्थायी होता है।"

इस वक्तव्य के माध्यम से उनके गीतो और चित्रो की विशेषताओ से हम भी अनायास ही परिचित हो जाते है और सहज भाव से कह सकते हैं कि चित्रो की ऊपर गिनायी गयी सम्पूर्ण विशेषताएँ उनके चित्रो मे सफलतापूर्वक प्रतिफलित हुई है और उनके चित्रो की गणना विख्यात चित्रकारो के चित्रो के साथ ही की जायगी। वस्तुत: महादेवी जी एक कुशल चित्र-कर्त्री भी है। उन्होने मूर्ति-कला को भी अपनी प्रतिभा का सहयोग दिया है, परन्तु उनकी मूर्तियाँ अभी तक सीमित क्षेत्र में ही मूर्तित हैं।

महादेवी जी साहित्यकार, चित्रकार और मूर्तिकार ही नहीं, वरन् एक प्रभावशाली व्याख्याता तथा सक्रिय समाज-सेविका भी है। वास्तव मे महादेवी जी की भाव-चेतना इतनी गम्भीर, मार्मिक और सवेदनशील है कि उनकी अभिव्यक्ति का प्रत्येक रूप एक नितान्त मौलिक और हृदयग्राही शैली की स्थापना करने में स्वभावत: सफल होता है। व्यक्तित्व की स्वकीयता और स्वचेतनता का यह प्रौढ प्रमाण है। लेखन-कला की भाँति भाषण-कला का भी अपना एक अलग क्षेत्र और महत्त्व है। श्रोताओं को भाव-विभोर कर देने की महादेवी जी में अद्भुत क्षमता है। जिन्होने उनके भाषणो को सुना है वे जानते हैं कि वे अपने भाषणो में राजनीतिको की तरह मचीय सफलता के लिये कभी उन नारो तथा आवेगो का प्रयोग नही करती जो सस्ती उत्तेजना के सहारे वक्ता की सफलता का कारण बनते हैं। वे बडी गम्भीरता और धैर्य के साथ विषय को सुनने वालो के लिये इतना सवेदनीय बना देती है कि वे उनके शब्दो को अपने सवेदनो से मिलाते हुए उनके साथ परम आत्मीय भाव से बहते जाते है। वक्ता और श्रोता का भाव-स्पदन एक ही लय में लयमान हो जाता है। वक्ता और श्रोता का ऐसा तादात्म्य-स्थापन भाषण-कला की चरम परिणति है। महादेवी जी ऐसी ही समर्थ व्याख्याता है।

अपने साहित्यिक और सामाजिक कार्यों के साथ वे देश के स्वतत्रता-आन्दोलन में भी निरन्तर यथायोग्य सहयोग देती रही है। सन् १९४२ के विप्लव मे उन्होने जिस अडिग धैर्य और अटूट साहस के साथ विद्रोहियो का साथ दिया है, उनकी सहायता की है, उनको तथा उनके परिवार और समाज को सरक्षण दिया है, वह बहुत ही रोमाचकारी और आश्चर्यजनक है। स्वर्गीय राष्ट्र-भक्त श्री पुरुषोत्तम दास टडन भी इस विषय में उनका लोहा मानते थे। उन्ही दिनो की एक घटना-विशेष से परिचित होकर जोशी जी ने कहा—"आज-कल सरकार का रुख बहुत कडा है। किंचित मात्र सन्देह होने पर पुलिस वाले बहुत परेशान करते हैं। स्थिति महिलाओ के लिये और भी अधिक भयावह है, आपको बहुत सावधान रहना चाहिए!" महादेवी जी की आँखे सहसा लाल हो गई और दृढता से उन्होने कहा—"यह सब तो मैं जानती हूँ, पर विश्वास और आशा से आये हुये देश-प्रेमी विद्रोही को सहानुभूति और सरक्षण देने से इकार भी तो नही किया जा सकता? इस समय देश

की बहुत बड़े बलिदान और त्याग की आवश्यकता है। पुलिस वाले हमें जीवित तो पकड़ नहीं सकते, और यथाशक्ति काम तो करना ही है। राक्षसी परिपीडन का भय हम को नहीं है, क्योंकि हम जौहर व्रत के सच्चे उत्तराधिकारी हैं।" हम लोग केवल स्तब्ध रह गये। बंगाल के अकाल के समय 'बंगदर्शन' और चीनी आक्रमण के समय 'हिमालय' का संकलन और प्रकाशन उनकी राष्ट्र सेवा के ही साहित्यिक अनुष्ठान हैं। 'बंगदर्शन' की अपनी बात में महादेवी जी ने लिखा था—"किसी अन्य देश में ऐसी घटना घटित होती तो क्या होता इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु हमारा देश यदि इसे अदृष्ट का लेख मान कर स्वीकार कर ले तो स्वाभाविक ही कहा जायगा। फिर भी प्रत्येक विचारक जानता है कि यह आकस्मिक वज्रपात नहीं है जिसका कारण दुर्दैव या संयोग को मानकर जिज्ञासा विराम पा सके। यह तो मनुष्य के स्वार्थ की शिला पर उसके प्रयत्न और बुद्धि द्वारा निर्मित नरक है, अतः इसका कारण ढूंढने दूर न जाना होगा। आज के विराट मानव की व्यवस्था का समुद्र, आज के लेखक को जीवन का कोई महान तथ्य, कोई अमूल्य सत्य न दे सकेगा ऐसा विश्वास कठिन है। इस दुर्भिक्ष की ज्वाला का स्पर्श करके हमारे कलाकारों की लेखनी-तूली यदि स्वर्ण न बन सकी तो उसे राख हो जाना पड़ेगा।"

'हिमालय' का समर्पण इस प्रकार है—

'जिन्होंने अपनी मुक्ति की खोज में नहीं, वरन् भारत भूमि को मुक्त रखने के लिये अपने स्वप्न समर्पित किये हैं, जो अपना सन्ताप दूर करने के लिये नहीं, वरन् भारत की जीवन-उष्मा को सुरक्षित रखने के लिये हिम में गले हैं, जो आज हिमालय में मिलकर धरती के लिये हिमालय बन गये हैं, उन्हीं भारतीय वीरों की पुण्यस्मृति में'—और इस संग्रह के विषय में लिखते हुये उन्होंने लिखा है—"इतिहास ने अनेक बार प्रमाणित किया है कि जो मानव-समूह अपनी धरती से जिस सीमा तक तादात्म्य कर सका है, वह उसी सीमा तक अपनी धरती पर अपराजेय रहा है। इस तादात्म्य के अनेक साधनों में विशिष्ट साहित्य है। किसी भूमिखण्ड पर किस मानव-समूह का सहज अधिकार है, इसे जानने का पूर्णतम प्रमाण उसका साहित्य ही है। आधुनिक युग के साहित्यकार को भी अपने रागात्मक उत्तराधिकार का बोध था, इसी से हिमालय के आसन्न संकट ने उसकी लेखनी को, आज के शस्त्र और आस्था की वंशी के स्वर दिये हैं।"

प्राचीन काल से आज तक हिमालय पर लिखी महत्वपूर्ण कविताओं का संकलन अपने-आप में भी एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय उपलब्धि है।

इस प्रकार अन्याय की दुर्दमनीय स्थितियों के प्रति मन में विद्रोह स्वाभाविक है, पर उसे क्रियात्मक रूप देने की क्षमता जिस अपराजेय आत्मदान की अपेक्षा रखती है वह महादेवी जी की निजी विशेषता है। यही कारण है कि उनके विद्रोह की प्रखरता जीवन के प्रति अटूट आस्था की सजलता में बादल के बीच बिजली की तरह अन्तर्हित रहती है। वस्तुतः मैथिली की अग्नि-परीक्षा, बुद्ध का गृहत्याग और महादेवी का विद्रोह सत्य का

सुन्दर और सुन्दर को शिव बनाने की ऊर्ध्वगामी सीढ़ियाँ है, जिनके द्वारा राग-द्वेष से मुक्त होकर मनुष्य जीवन की उच्चतम भूमि पर चढ सकता है। इनके विद्रोह मे किसी प्रकार का उद्दाम वेग नही, एक दृढ सयम है, आग की लपटो का उच्छ्वसित आवेग नही, दीपक की लौ की आलोकवाही स्निग्धता है, चमत्कारी बुद्धि का उतावलापन नही, भावावेश को स्पदित कर देने वाली हार्दिकता का विश्वास हैं, सकोच, सदेह तथा भय-पराजय का भाव नही, विजयी की वह विनम्रता और उदारता हैं जिस पर साधना का पानी चढा हुआ है। आशय यह कि विद्रोह की मगल-मुखी भावना पर ही उनकी आस्था है।

यद्यपि उनकी काव्य-रचना का क्रम अटूट है, 'दीपशिखा' की तरह 'प्रभा' चित्र-गीत-कृति भी पूर्ण हो चुकी है, पर अब तक प्रकाशित नही हुई। कतिपय गद्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई है। उन्होने लिखा है—"जीवन की दृष्टि से मैं बहु-धधी हूँ, अत एकान्त काव्य-साधना का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ होगा। साधारणत मुझे भाव, विचार और कर्म का सौन्दर्य समान रूप से आकर्षित करता है, इसी से किसी एक मे जीवन की पूर्णता पा लेना मेरे लिये सहज नही। भाव और विचार जगत की सब सीमायें न छू सकने पर भी मेरे कर्म-क्षेत्र की विविधता कम सारवती नही। साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नही है, यह स्वीकार करने मे मुझे लज्जा नही। हमारे जीवन का धरातल इतना विषम है कि एक पर्वत के शिखर पर बोलता है और दूसरा कूप की अतल गहराई मे सुनता है। इस मानव-समष्टि मे, जिसमे शत्-प्रतिशत अक्षर और एक प्रतिशत मे भी कम काव्य के मर्मज्ञ है, हमारा बौद्धिक निरूपण कुठित और कलागत सृष्टि पख-हीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड कर व्यक्ति मात्र होकर ही पहुँच सकते हैं। बाहर के वैषम्य और सघर्ष मे थकित मेरे जीवन को जिन क्षणो मे विश्राम मिलता है, उन्ही को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय-समय पर उनके पास पहुँचाती ही हूँ, जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है। शेष जीवन को जहाँ देने की आवश्यकता है, वहाँ उसे देने मे मेरा मन कभी कुठित न होगा।

विशाल साहित्यिक परिवार के हर्ष-शोक मेरे अपने है, परन्तु उससे बाहर खडे व्यक्तियो की सुख-दुख-कथा मुझे पराई नही लगती। अपने सुशिक्षित सुसस्कृत विद्यार्थियो से साहित्यालोचन करके मुझे प्रसन्नता होती है, परन्तु अपने मलिन-दुर्बल जिज्ञासुओ (गँवई-गाँव के बच्चो) को वर्णमाला पढाने मे मुझे कम सुख नहीं मिलता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने उस उपेक्षित ससार में बहुत कुछ भव्य पाया है, अन्यथा सभ्य समाज से इतनी दूरी असह्य हो जाती। अनेक बार लोकगीत सुनकर ऐसा भी लगा है कि यह भाव मेरे गीत में होता। 'एक कदम की डार बसैं दो पँखियाँ' गाने वाली मेरी ग्रामीण सखी इस गीत को अपने जीवन की अन्योक्ति बना कर गाती है। साधारण शाब्दिक अर्थों मे यह गीत दो विहगो के करुण बिछोह की कथा है, परन्तु उसे अलौकिक अर्थ मे ग्रहण कर लेने मे मुझे कोई कठिनाई नही होती। अपने छोटे घर के द्वार पर टेढा-मेढा स्वस्तिक बनाकर उसके दोनो

और हाथ की छाप लगाने वाली सरल गृहिणी की कल्याण-कामना चाहे बहुत स्पष्ट न हो, पर मूलत यह मेरी उस भावना से भिन्न नही जिसके कारण मैं शून्य भित्ति पर बुद्ध का चित्र बना देना चाहती हूँ।

इस साम्य का एक और भी कारण है। हमारे इस उपेक्षित वर्ग ने भारतीय नारी की आत्मा पायी है—विश्वासी, सहनशील और अश्रुस्नात, इसी से उस ओर के जीवन से मेरा नितान्त अपरिचय सम्भव नही। कार्य इतना मूल्यवान क्यो हो कि सब तक न पहुँच सके, यह भी समस्या है। एक बहुत बडे मानव-समूह को हमने ऐसी दुर्दशा म रख छोडा है जहाँ साहित्य का प्रवेश कल्पना की वस्तु है। वह समाज हृदय की बात समझता है, पर व्यक्ति के माध्यम से। ऐसे समाज में काव्य पहुँचाने से अधिक महत्व का प्रश्न मनुष्य पहुँचाना है, जो अपनी सहज सवेदना से उनके हृदय तक पहुँच कर बुद्धि की खोज-खबर ले सके।"

स्पष्ट है कि साहित्य-सृजन के अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक कार्य-क्षेत्र मे भी सक्रिय भाग लिया है और नीरस साहित्यिक रचनात्मक कार्य-भार सँभालने मे भी सलग्न रही है। महिला विद्यापीठ, साहित्यकार ससद्, रगवाणी आदि सस्थाओं की सम्वर्द्धना तथा स्थापना के साथ सम्पूर्ण भारतीय भाषाओ के साहित्यकारों को एक मच पर एकत्रित करने का सर्वप्रथम श्रेय उन्ही को प्राप्त है। ग्रामीण विपन्न जीवन के साथ निकट का सपर्क स्थापित करके उन्होंने उनको शिक्षित करने की चेष्टा के साथ उनके सुख-दुख मे भी हाथ बटाया है।

उनके सस्मरण-समन्वित रेखाचित्र जो 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' में सगृहीत हैं, इस सत्य के ज्वलत उदाहरण हैं। महादेवी जी ने इन रेखाचित्रा मे किसी नेता, ऐतिहासिक व्यक्ति या किसी महान पुरुष-स्त्री को न लेकर समाज के विपन्न, अनाथ, अछूते, अशिक्षित तथा निम्नवर्ग के व्यक्तियो को ही चित्रित किया है। इन पात्रो की बाह्य कुरूपता और विपन्नता के आवरण को अपनी सहानुभूति की तीव्रता से भेदकर उनके आन्तरिक सौन्दर्य और उनकी मनुष्यता को स्पष्ट करने में उन्हें सर्वाधिक सफलता मिली है, जो उनके प्रति इनकी सहृदयता और निकटता की साक्षी है। सब से बडी बात यह है कि इन रेखा-चित्रो मे निबन्ध, कहानी और सस्मरण तीनो की विशेषताओ का आनद एक साथ मिलता चलता है। इन चित्रो के द्वारा जीवन को यथार्थ रूप मे देखने-परखने और भोगने की जिस प्रवृत्ति का महादेवी जी ने दिशा-निर्देश किया है, उसमें मानव-हृदय की अतल गहराइयो में उतरने और सवेदनशील आत्मीयता जगाने की अद्वितीय क्षमता है। अपनी सहज सहानुभूति के कारण ही वे 'गुगिया' ऐसे निर्वाक प्राणी का जीवन-वृत्त पुस्तक मे लिखी कहानी की भाँति पढ और समझ लेती है, चीनी वस्त्र-व्यापारी भी अपने कपडो के गट्ठर के साथ उनके सामने अपना हृदय खोल देता है, पहाडी अपढ कुली भी उन्हे अपने जीवन के मर्म से अव-गत कर देता है। आशय यह कि समाज, परिस्थिति अथवा भाग्य द्वारा उपेक्षित व्यक्तियो

की प्रेषणीयता और प्रभविष्णुता भी अमोघ है। इसकी बड़ी भारी विशेषता निस्संगता और काव्य को जीवन की विशाल-व्यापक भूमि पर रखकर परखने की क्षमता है। स्वभाव से ही कवि-समालोचक की दृष्टि में काव्य-सृष्टि के प्रति एक प्रत्यक्ष साक्ष्य की स्पष्टता और तत्परता होती है। सृजन के विभिन्न और विविध तत्वों से सहज ही परिचित होने के नाते उसकी मान्यताओं का बोधगम्य और विश्वसनीय होना भी स्वाभाविक है।

भारतीय साहित्य के अध्ययन तथा चिंतन-मनन से प्राप्त साहित्य के मूल्यांकन की प्राचीन कसौटी तो महादेवी जी के पास है ही, आवश्यकतानुसार युगानुरूप नवीन-नवीन कसौटी गढ लेने की सर्जनात्मक शक्ति का भी उनमें प्राचुर्य है। यही कारण है कि उनकी विवेचना शास्त्रज्ञ आचार्य की कठोर बौद्धिक रेखाओं से घिरी न होकर गतिशील जीवन को संसिक्त करने वाले भावना-प्रपात की तरह तरल-स्वच्छ और सतत प्रसरणशील है। सच तो यह है कि महादेवी जी ने काव्यालोचन के सिद्धान्तों को जीवन के विकासशील सिद्धान्तों के समकक्ष रख कर विवेचना के सूत्रों को केवल सिद्धान्तवादी समीक्षकों के हाथ से छीन कर कवि के जीवन-व्यापी अनुभव और अभिव्यक्ति-कौशल से सधे हाथों में रख दिया है, जनतंत्रीय जीवन-धारा का साहित्य में भी अभिषेक किया है। इस प्रक्रिया से साहित्य के व्यापकत्व और कवि की प्रतिष्ठा का जो सम्वर्द्धन हुआ, वह चिर अपेक्षित था। डा० नगेन्द्र ने बडे पते की बात कही है—"महादेवी जी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान है। आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका जिज्ञासु इन्हें आलोक-स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है। एतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त वचन के समान ही आदर करेगा।"

ललित निबन्धों में महादेवी जी ने उक्ति-वैचित्र्य, सूक्त-कथन, व्यंग्य और लक्षणा-व्यंञ्जना तथा हृदय-ग्राह्य जिस चित्रमयी अलंकृत शैली का सूत्रपात किया है उससे उनके निबन्धों में काव्यमयी सरसता और प्रभावोत्पादकता के साथ अभिव्यञ्जना को एक ऐसी सामर्थ्य प्राप्त हो गई कि उनकी निबन्धकता नितान्त उदात्त और उन्मेषक बन गई है। प्रवाह और प्राजलता इन निबन्धों की प्रमुख विशेषता है। यह ठीक है कि इनमें बौद्धिक व्यायाम, तर्क के दाँव-पेच और किसी जटिल समस्या के सुलझाव या दर्प नहीं, किन्तु उनकी मार्मिक तथा अनुभूत उक्तियाँ स्वत. तर्क को पीछे ढकेल कर भावात्मक रूप में अकाट्य बन जाती हैं—"हिन्दी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती। वह तो उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए। जिस नियम से नदी, नदी की गति रोकने के लिये शिला नहीं बन सकती, उसी नियम से हिन्दी भी किसी सहयोगिनी का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती।"

उत्कृष्ट मौलिक सृजन के साथ महादेवी जी ने अनुवादक का भी बहुत बडा और महत्वपूर्ण कार्य किया है। काव्यमयी वैदिक ऋचाओं से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति तथा जयदेव की उदात्त सरस काव्य-विभूतियों का काव्यमय हिन्दी

पथ एक रहा है, केवल इतना ही नही, वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये है।" यह उनके अखण्ड और सुगठित व्यक्तित्व का ही परिणाम है। 'कथनी, करनी और रहनी की यह एकता जो रचना, विचार और जीवन के रूप मे अविरोधी जान पडे, कोई सामान्य विशेषता नही है। महादेवी जी के लेखन की सचाई और उसके स्थायित्व के सम्बध मे हमें निशक होना चाहिए।'

साहित्यिको और साहित्यिक सस्थाओ ने, समाज और सरकार ने—सम्पूर्ण राष्ट्र ने उनकी विजय-यात्रा की उपलब्धिया की महत्ता को स्वीकार करते हुये उन्ह सम्मानित और अभिनदित किया है, यह किसी से छिपा नही है।

अस्तु, 'रजकणो मे खेलती विरज विधु की चांदनी'—महादेवी जी का व्यक्तित्व ममात्मभाव की साधना से जितना सरल मधुर-करुण तथा कोमल है, उनका कृतित्व उतना ही उदात्त-व्यापक-विराट एव महान् है। हिमालय का सम्बोधन करते हुये उन्होने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का आनायास ही जैसे उद्घाटन कर दिया है—

हे चिर महान !
यह स्वर्ण रश्मि छू श्वेत भाल बरसा जाती रगीन हास,
सेली बनता है इन्द्रधनुष परिमल मलमल जाता बतास,
पर राग हीन तू हिम निधान।
नभ मे गर्वित झुकता न शीश पर अक लिये है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख तन सह लेता है कुलिश भार,
कितने मृदु कितने कठिन प्राण।
टूटी है कब तेरी समाधि झझा लौटे शत हार हार,
बह चला दृगो से किन्तु नीर सुन कर जलते कण की पुकार,
सुख से विरक्त दुख मे समान।
मेरे जीवन का आज मूक तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले मन ले करुणा की थाह नाप,
उर मे पावस दृग मे विहान।

वास्तव मे महादेवी जी से तुलना करने के लिये हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त है। उनके व्यक्तित्व का वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट तथा विशाल प्रसार, वही अमल-धवल एव अटल-अचल धीरता-गम्भीरता, वही पर-दुख कातरता, करुणा तथा स्नेहसिक्त तरलता और सबसे बढ कर वही सर्व-सुखद शुभ्र मुक्त हास—यही तो महादेवी है।

अन्त मे मुझे महादेवी जी के मगलमय जन्म-दिन के महोत्सव की इस उल्लसित वेला में यह कहना समीचीन और समयानुकूल जान पडता है कि यदि हम उनके सन्देश का

अपने जीवन मे चरितार्थ कर सकें तो इससे उनको परम सतोष और आनद तो मिलेगा ही, हमारा अपना पथ भी प्रशस्त और सर्व-कल्याणमय होगा, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है—

'इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्नद्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन से मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड सिद्धान्तो का पाथेय छोड कर अपनी सम्पूर्ण सवेदना-शक्ति के साथ जीवन में घुल मिल जावे । उसकी केवल व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा आज गौण है, उसकी केवल व्यक्तिगत हार-जीत आज महत्व नही रखती, क्योकि उसके सारे व्यष्टिगत सत्य की आज समष्टिगत परीक्षा है। उसे स्वप्नद्रष्टा भी होना है, जीवन के क्षुत्क्षाम निम्न स्तर तक मानसिक खाद्य भी पहुँचाना है, तृषित मानवता को सवेदना का जल भी देना है और सबके अज्ञान का भार भी सहना है। साराश यह कि आज के कवि को अपने लिये अनगारिक होकर भी ससार के लिये गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिये सन्यासी होकर भी सबके लिये कर्मयोगी होना होगा, क्योकि आज उसे अपने को खोकर पाना है।'

जयन्ति ते सुकृतिन रससिद्धा कवीश्वरा ।
नास्ति येषा यश काये जरामरणज भयम् ॥
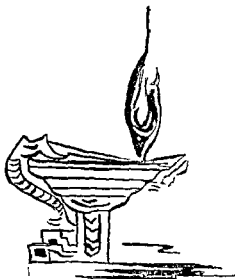
दीपक

द्वितीय भाग : स्मृति-चित्र

हँसी, किरण और ओस

डॉ० रामकुमार वर्मा

सन् १९२२

वे दिन वसन्त के थे। उमगों की गति लेकर समीर सचरण करता था, और प्राणों की सुगधि ही फूलों मे निवास करती थी। कल की कली आज फूल का रूप रखती थी तो उसकी पखडियाँ गिनने को मन होता था। कविता लिखते नही बनती थी लेकिन लेखनी उमगों की बातें कहना चाहती थी। भावनाएँ उठती थीं तो मन बैठ जाता था कि कविता यदि उमगों की भाषा है तो मैं उसे क्यों नही लिख पाता? भावना नटखट बालिका की भाँति आडी-तिरछी रेखाएँ खींचने लगती। प्राचीन सस्कृत और हिन्दी कवियों की कविताएँ पढते पढते पथ की पहिचान होने लगी, तभी एक दिन प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'चाँद' मासिक पत्र के नवम्बर १९२२ के अक पर दृष्टि पडी। उसमें मेरी भी एक कविता प्रकाशित हुई थी, इसलिए बडी ममता से उसकी एक-एक पक्ति पढी। पृष्ठ १३ पर एक शीर्षक था:

पुरस्कार दिया गया

आगे लिखा गया था .

"श्रीमती महादेवी वर्मा की दो मनोहर कविताएँ हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। कविताओं के भाव, शब्दो का सगठन, युक्तियों की रोचकता और शैली कितनी मधुर है, यह सब बातें पाठकगण स्वय ही देख लेगे। इतनी छोटी अवस्था मे भी जिसके हृदय मे ऐसे उच्च भाव हैं, वह निश्चय ही आयु पकने पर और मधुर होते जावेगे। चाँद की ओर से इन कविताओं के उपलक्ष्य मे श्रीमती महादेवी जी को १५) रु० के मूल्य का एक चाँदी का तमगा दिया जा रहा है।"

हृदय मे उत्सुकता जाग उठी उन कविताओं को पढने की। 'चाँद' के पन्ने उलटे और पृष्ठ ७३ पर 'चाँद' शीर्षक से ही श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता पढी। कविता ७ छन्दो मे लिखी गई थी। आरभ के दो छन्द और अन्त का एक छन्द इस प्रकार था:

[१]

कान्तिमाला से गगन नील सुशोभित होगा।
स्वच्छ सरवर मे कुमुद हर्ष प्रफुल्लित होगा।

देख निशनाथ तिमिर का हृदय सकुचित होगा।
चाँदनी कह रही थी चाँद का दर्शन होगा॥

[२]

दिव्य पट धार के शृंगारिता निशा होगी।
नाथ के दर्श से आनन्दिता निशा होगी।
होगा जिस ओर उदय वह मुदित दिशा होगी।
चकवी आज विरह-कष्ट पीडिता होगी॥

[७]

ज्योतिमय यह सदा आकाश का शृंगार रहे।
चाँदनी शुभ्र का यह सर्वदा आधार रहे।
प्रेम का नेम का शुभ शान्ति का आगार रहे।
चाहकों का सदा इस चाँद मे अनुराग रहे॥

कविता साग्रह पढी। उसी दिन से महादेवी जी की रचनाओ को खोज-खोज कर पढने लगा। 'चाँद' पर उनका अनुग्रह था और 'चाँद' का उन पर। उसने तो उन्हे 'चाँदी का तमगा' ही दिया था। मित्रो से कहता था कि 'चाँद' है तभी तो 'चाँदी' का तमगा दिया है, 'सूरज' होता तो सोने का देता। 'चाँद' के सम्पादक उस समय कोई रामकृष्ण मुकन्द लघाटे थे। सोच कर हँसता था कि तभी यह 'घाटे' का सौदा है। अस्तु, महादेवी जी की कविताएँ 'चाँद' में बराबर प्रकाशित होती रही। 'चाँद' के प्रथम वर्ष म ही उनकी कविताओ के शीर्षक देखिए —

सख्या १	चन्द्रोदय (पृष्ठ १४) चाँद (पृष्ठ ७३)
,, २	भारत माता (पृ० ८१) धन्यवाद (पृष्ठ ११६)
,, ३	अबला (पृष्ठ १८०) विधवा (पृष्ठ २१४)
,, ४	वसन्तोपहार (पृष्ठ २६७)
,, ५	होली (पृष्ठ ४०६)

आदि।

ये सभी कविताएँ वर्णनात्मक थीं। तत्समता की ओर प्रवृत्ति तो अवश्य थी किन्तु पक्तिया की रचना प्रयासपूर्वक की गई ज्ञात होती थी। इच्छा थी कि महादेवी जी से पत्र-व्यवहार किया जाय किन्तु उनके नाम के पूर्वार्द्ध 'महा' से मेरे नाम के उत्तरार्द्ध 'कुमार' को कुछ संकोच हुआ और मेरा मानसिक झुकाव उनकी कविताओ तक ही सीमित रहा। यो हम दोनों की रचनाएँ समान रूप से 'चाँद' के पृष्ठो पर उतरती रही।

२

तीन वर्ष बाद सन् १९२५ मे मैं बी० ए० पढने के लिए जबलपुर से प्रयाग आया। उस समय काव्य-जगत् मे महादेवी जी की रचनाएँ किसी अभिनव प्रभात की सूचना देने लगी थी। मासिक पत्रो मे उनकी रचनाएँ साग्रह प्रकाशित होती थी और उनसे तरह-तरह के अर्थ निकाले जाते थे। तभी एक दिन प्रयाग के किसी कवि-सम्मेलन मे उन्हे निकट से देखा।

कोमल कृश काया, श्वेत वस्त्र से सुसज्जित उनका सौम्य मुख-मण्डल, नेत्रो मे एक आकुल आकाक्षा, स्वर में 'ग' और 'म' के बीच की मूर्छना। कठ मे सगीत तो नहीं किन्तु आरोह और अवरोह की आर्द्रता। मैंने नमस्कार किया और अपना परिचय दिया। उन्होंने सहज भाव से स्वीकार किया। मेरी कविता सुनने के बाद उन्होने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। किन्तु यह परिचय फरवरी के २९वें दिन की भाँति अवधि-सापेक्ष्य ही बना रहा। मेरे कुतूहल को सताप था। कवि जीवन की परिधि विस्तृत तो हो गई थी, उसमे रग नही भरा गया था।

सन् १९२० से ही छायावाद की उषा काव्य क्षितिज पर अपनी अरुणिमा मे साकार होने लगी थी। पुरानी पीढी के कवि इस नये काव्य-रूप को सहन करें या न करें यह प्रश्न था। अनेक प्रकार की आलोचनाओ की 'मैजिनो लाइन' खडी की जा रही थी। पुराने कवियो द्वारा स्वीकृति-सूचक 'हाँ' कठ मे अटक रहा था। महाकवि प्रसाद का 'आँसू', कविवर निराला की 'जुही की कली' और सुकवि सुमित्रानन्दन पन्त का 'परिवर्तन' बडे वेग से वर्णनात्मक काव्य शैली को झकझोर रहा था। इधर महादेवी का 'नीहार' क्षितिज पर उठ रहा था। कौतुक, जिज्ञासा और आशका प्रसाद, निराला और पत का सामना करने के लिए उठ रहे थे, तभी श्री अयोध्यासिह उपाध्याय ने महादेवी जी के 'नीहार' काव्य सग्रह की भूमिका लिखते हुए अपना अभिमत प्रकट किया .

"छायावाद किसे कहते है ? उसे छायावाद कहना चाहिए अथवा रहस्यवाद, यह वाद ग्रस्त विषय है। स्वय छायावादी कवि इस बात को निश्चित नही कर सके कि वे अपनी नूतन प्रणाली की कविताओ को छायावाद कहे अथवा रहस्यवाद ! इस प्रकार की कविताओ की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि उनका अन्तर्भाव छायावाद अथवा रहस्यवाद मे नही हो सकता। अतएव कोई-कोई उसको हृदयवाद कहने लगे हैं किन्तु यह सज्ञा अति-व्याप्ति दोष से दूषित है। छायावाद की कविताएँ अभी आदिम अवस्था मे है, उद्गम से बाहर निकलती हुई, अधिकाश सरिताओ के समान उनमें वेग है, प्रवाह है, उल्लास और कल्लोल है, किन्तु वाछित धीरता नही, वह स्थान-स्थान पर तरगाकुल और आविल भी है।"

इस भूमिका के साथ उहोने श्रीमती महादेवी वर्मा का 'हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे सादर अभिनन्दन' किया। नीहार की ४७ कविताएँ अधिकतर सन् १९२८ और १९२९ की लिखी हुई हैं। किन्तु दो-तीन कविताएँ कुछ पहले की भी हैं। 'मुर्झाया फूल' जनवरी १९२३ और

'उस पार' कविता जुलाई १९२४ की लिखी हुई है। यदि इन कविताओं को सन् १९२२ में प्रकाशित 'चाँद' की कविताओं से मिलाया जाय तो एक महान् अन्तर दृष्टिगोचर होता है। महादेवी जी की सन् १९२२ की कविताओं का कहीं कोई संग्रह नहीं है, एक तरह से उन्हें भुला दिया गया है। यदि उनका संग्रह कहीं होता तो इस महान् अन्तर के प्रारंभिक सूत्र उनमें खोजे जा सकते थे। यह 'छायावादी अन्तर' उनमें सहसा किन मार्गों से आविर्भूत हुआ, यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। इसकी खोज तो होगी ही किन्तु यदि स्वयं महादेवी जी इस सम्बन्ध में कुछ कह सकें तो उनके काव्य की दिशा का विकास पाठकों के सामने अधिक स्पष्ट होगा।

३

चौदह नवम्बर सन् १९३० की संध्या। 'सुकवि समाज' का वार्षिक अधिवेशन मेरे घर ही था। हम लोगों ने प्रयाग के कवियों का संगठन करते हुए 'सुकवि समाज' नाम से एक संस्था बनाई थी। उसके तीन मंत्री थे। श्री पद्मकान्त मालवीय, श्रीमती महादेवी वर्मा और मैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू 'मुख्य अतिथि' के रूप में आमंत्रित थीं। श्री गोपालशरण सिंह, तथा श्री कृष्णकान्त मालवीय हमारे अभिभावक थे। जलपान के अनन्तर कवि-गोष्ठी थी। श्री विश्म, श्री भगवती चरण वर्मा, श्री पद्मकान्त मालवीय तथा मैंने स्वर से कविताएँ सुनाई। बाद में महादेवी वर्मा की बारी आई। उनकी कविता थी 'बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'। महादेवी जी ने उस कविता को बड़ी तन्मयता से पढ़ा। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने महादेवी जी की बड़ी प्रशंसा की। श्री गोपालशरण सिंह जी ने कहा कि हिन्दी में 'छायावाद' को अब कोई उसके सिंहासन से उतार नहीं सकता।

मैंने मुस्कराते हुए कहा--महादेवी जी! आप चाहे जिसकी 'बीन' और 'रागिनी' हों, हमारी हिन्दी की 'बीन' और 'रागिनी' अवश्य ही हैं।

४

श्रीमती महादेवी जी के काव्य के विकास की अनेक स्थितियाँ हैं। उनकी कविताओं की भावना, कल्पना, बिम्ब-विधान, प्रतीकों के रूप और अनुभूति की मधुमती भूमिकाओं के आधार पर उनका कवि-मानस स्पष्ट किया जा सकता है। स्थान-संकोच के कारण उस विषय का विश्लेषण नहीं करूँगा किन्तु यह स्पष्ट है कि उनमें भावना के उत्कर्ष की परिणति पूर्ण और प्राञ्जल है। करुणा की जितनी अभिव्यक्ति जितने प्रकार से हो सकती है, उसकी प्रस्तावना महादेवी जी के काव्य में है। उनके भाव-जगत् का विरह 'नभ की दीपावलियों' को बुझाने का आदेश देकर अपने 'देव' से 'तम के परदे' में आने की याचना करता है। उनकी करुणा चाहे बुद्ध भगवान् के चार 'आर्य सत्यों' से निसृत हुई हो चाहे कबीर और मीरा के विरह-निवेदन से, इतना स्पष्ट है कि महादेवी जी की 'करुणा' की अनुभूति में संसार का दुःख भी सुख में परिणत हो जाता है।

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' जैसे करुणा के सन्ध्या काल से अर्धरात्रि तक श्याम यामो की कथा है। सूरदास के भ्रमरगीत की किसी गोपिका के आत्म-निवेदन में जो व्यथा है, वह महादेवी जी के गीतो से मुखरित होती है। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश के अष्टम उल्लास में माधुर्य की जो विशेषताएँ उल्लिखित है

'करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।' की भाँति महादेवी जी के काव्य का माधुर्य न जाने कितनी दिशाओं में अग्रसर होता है। और यह माधुर्य उस विरह का अग है जो रहस्यवाद से अनुप्राणित है। इस रहस्यवाद में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। लाल की लाली म लाल हो जाने पर भी 'मैं' की गुरु-गभीर घोषणा है। साथ ही विरह की विचित्र कहानी है। कबीर के अनुसार—

जो रोऊँ तो बल घटै, हँसौं तो राम रिसाय।
मन ही माँहि विसूरनाँ ज्यो घुन काठहि खाय॥

इस मानसिक क्लान्ति मे ही आत्म-निवेदन की अनेक सूक्तियाँ महादेवी जी की भावना में जाग उठी है —

आँसुओ के देश मे !
जो कहा रुक रुक पवन ने
जो सुना झुक झुक गगन ने
साँझ जो लिखती अधूरा
प्रात रँग पाता न पूरा,
आँक डाला वह दृगों ने एक सजल निमेष में।
आँसुओ के देश मे।

५

और महादेवी की प्रतिभा कितनी बहुमुखी है ! उनकी काव्य-दृष्टि ने केवल अत-र्जगत के चित्र ही नही खीचे, बगाल के अकाल की विभीषिका भी देखी, हिमालय की उत्तुग शैल-मालाएँ भी निरूपित की। भावना को साकार करने के लिए दीप-शिखा मे चित्रकला का समावेश भी किया। चिन्तन के क्षणो को जाग्रत करते हुए अतीत के चलचित्र और शृंखला की टूटी कडियो को भी भावना से जोडा। चाँद का सम्पादन किया और साहित्य-कार-ससद की स्थापना की। शिक्षा-जगत मे नारी-समाज का मेरुदण्ड सुदृढ करने के लिए महिला विद्यापीठ को प्रयाग मे एक अभिनव वट-वृक्ष के रूप मे आरोपित किया और अपनी ओजस्विनी तथा कलात्मक वक्तृत्व कला से समस्त देश के साहित्यिक अनुष्ठानो को मत्रा-भिषिक्त किया। इन विविध कार्य-कलापो का सयोजन करने की अद्‌भुत क्षमता महादेवी जी के अद्‌भुत व्यक्तित्व में है। विषम परिस्थितियो में भी उन्मुक्त हास्य बिखेरने का उनका स्वभाव कितना सहज है। मैं सोचता हूँ इन्द्रधनुष के निर्माण मे पानी की बूँदे सहायक होती हैं। इसी तरह उनकी हँसी का इन्द्रधनुष न जाने कितने आँसुओ को पार कर उनके जीवना-काश मे सुसज्जित हुआ है ! हिन्दी मे यह हँसी बहुत दिनो तक गूँजे, यही प्रभु से प्रार्थना है।

— ० —

श्रीमती महादेवी वर्मा : एक संस्मरण

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त

सन्१९२४-२५ के लगभग मैं छायावादी कविता के प्रति आकृष्ट हुआ, जब पन्त जी की रचनाएँ धारावाहिक रूप में 'सरस्वती' में प्रकाशित हो रही थीं। इन कविताओं में प्रकृति, मनुष्य और विश्व के प्रति ऐसा कौतूहल और विस्मय का भाव था, जिससे पाठक का मन सहज आह्लाद से भर जाता था। लगता था, जिस संसार में मनुष्य जीवन-यापन करता है वह एक अव्यक्त सौंदर्य से भरा है। छायावादी काव्य से इस प्रकार परिचित होकर मन अयास ही इस काव्य के अन्य प्रवर्त्तकों की ओर उन्मुख हुआ।

महादेवी जी प्रयाग विश्वविद्यालय में मेरी समकालीन थीं। उनके छोटे भाई जगमोहन वर्मा मेरे सहपाठी थे। हम लोग महादेवी जी को यूनिवर्सिटी में आते जाते देखते थे। एक बार कायस्थ पाठशाला में वे एक कवि-सम्मेलन में भी स्वर्गीय रामेश्वरी गोयल के साथ आई थीं। तब मैं एम० ए० (फाइनल) कक्षा में पढ़ता था। महादेवी जी आर्य कन्या पाठशाला में रामेश्वरी गोयल के साथ ही रहती थीं और दोनों में काफी घनिष्ठता थी।

सन् १९३५ में महादेवी जी बद्रीनाथ जा रही थीं। वे देहरादून भी आई थीं। वहाँ मेरी वाग्दत्ता रामेश्वरी गोयल ने उनसे मेरा परिचय कराया। फिर मैंने 'नीरजा' के गीत पढ़े और इन गीतों की मिठास, उनकी करुण कोमलता ने मेरा मन परिप्लावित कर दिया। इन गीतों को लिख कर महादेवी जी छायावाद की वृहत्-त्रयी में शामिल हो गईं थीं।

फिर मैंने ध्यान से 'नीहार' और 'रश्मि' पढ़े, 'सान्ध्यगीत', 'यामा' और उनकी गद्य-रचनाएँ पढ़ीं। बाद में 'दीप-शिखा' पढ़ी। इन रचनाओं में गीत की परिपक्व मिठास है, फूल की कोमलता है, तुहिन-बिंदुओं अथवा हरसिंगार के फूलों का अछूतापन है। मानो स्पर्श-मात्र से वह बिखर जायेंगे! इस कठोर जीवन से बचा कर मानो कवयित्री अपने लिए एक स्वप्नों का संसार रचती है, जहाँ पर दूर बीन बजती है, तारों के पथ पर कोई चल कर आता है और चुपचाप चला जाता है। आँधी चल रही है, गहन अँधेरा है, एकाकी पथिक है, किन्तु दीप की लौ अकम्पित जलती रहती है। किसी बड़ी आस्था, बड़े विश्वास का अनुभव भी इन गीतों को पढ़ कर पाठक को होता है।

जिस व्यथा और वेदना से कवयित्री का हृदय मर्माहत था, वह पूरी जाति की व्यथा और वेदना थी। उन्होंने लिखा :

(१) "दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचञ्चल. . . . ."

(२) "दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी,
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला !"

वे पूछती हैं :

"अब कहो सन्देश है क्या ?
और ज्वाल विशेष है क्या ?
अग्नि-पथ के पार चन्दन-चाँदनी का देश है क्या ?"

पराधीन भारत के निविड अन्धकार में महादेवी जी अपने सभी दीप जलाना चाहती हैं :

"सब बुझे दीपक जला लूं !
घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूं !
क्षितिज-कारा तोड कर अब
गा उठी उन्मत्त आँधी,
अब घटाओं में न रुकती
लास-तन्मय तड़ित बाँधी,
धूलि की इस वीण पर मैं तार हर तृण का मिला लूं !
... ...
भीत तारक मूँदते दृग
भ्रान्त मारुत पथ न पाता,
छोड उल्का अंक नभ में
ध्वंस आता हरहराता,
उँगलियों की ओट में सुकुमार सब सपने बचा लूं !"

इन गीतों में निरन्तर भारत के आकाश पर घिरे बादलों के इंगित हैं। इनमें गति की आकुलता है :

"मैं गति-विह्वल,
पाथेय रहे तेरा दृग-जल,

आवास मिले भू का अञ्चल,
मैं करुणा की वाहक अभिनव।"

महादेवी जी की विद्रोही सामाजिक चेतना उनके गद्य-साहित्य में और भी प्रखरता से व्यक्त हुई है। विशेष रूप में नारी की असहायता और उसके शोषण और उत्पीड़न के चित्र उन्होंने आग्नेय रेखाओं से खींचे हैं।

सन् १९४१ में जब मैं प्रयाग आया, तब मन में एक बड़ा लोभ यह भी लेकर आया कि यहाँ इन साहित्य-साधकों के संसर्ग से उपकृत हो सकूँगा। श्री नरेन्द्र शर्मा जब देवली से मुक्त हो कर प्रयाग आए, मैं उनके साथ महादेवी जी से मिलने गया। वे नरेन्द्र जी से बहुत स्नेह करती हैं और इस भेंट की सुखद स्मृति आज भी मेरे मन में सुरक्षित है। महादेवी जी ने 'दीपशिखा' की एक प्रति भी नरेन्द्र जी को भेंट दी।

सन् '४२ का आन्दोलन, बम्बई में ए० आई० सी० सी० का अधिवेशन। गांधी जी और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी। 'नवीन' जी कानपुर न जाकर इलाहाबाद ही उतर गए थे। यहाँ वे मेरे मित्र और सहपाठी श्री रवीन्द्रनाथ देव के यहाँ ठहरे थे। यहीं उन्होंने महादेवी जी से भी कुछ परामर्श किया था। इससे मैं समझ सका कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन से महादेवी जी का अन्तरंग संबंध था।

सन् '४२ के साथ ही बंगाल का अकाल भी मृत्यु और अवमानना का भयावह संदेश लेकर प्रकट हुआ। महादेवीजी ने 'बंग-दर्शन' का आयोजन किया। हिन्दी कवियों की मौलिक रचनाओं के इस संग्रह को उन्होंने उत्पीड़ित बंग-भूमि की सहायता के लिए शत् वन्दनाओं सहित अर्पित किया। इस प्रयास में कुछ साथ मैंने भी दिया था।

फिर साहित्यकार संसद् का अभियान शुरू हुआ। महादेवी जी त्रस्त साहित्यकारों की शरण के लिए कुछ प्रयत्न करना चाहती थीं। अब वे साहसपूर्वक सामाजिक आन्दोलनों में लग रही थीं। पिछला अनुशासन उन्होंने तोड़ दिया था। वे एक अद्वितीय वक्ता के रूप में हिन्दी समाज के सामने आईं। वास्तव में सरोजिनी नायडू के बाद महादेवी जी ही भारत की सर्वोत्तम महिला-वक्ता हैं।

पिछले पच्चीस वर्षों में अनेक बार महादेवी जी से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अनेक सभाओं में उनके भाषण सुनने के लोभ से मैं गया हूँ। अनेक गोष्ठियों में उनके साथ शामिल हुआ हूँ। उनके घर पर ही अनेक गोष्ठियों में भाग लिया है। प्रेमचन्द-दिवस, 'निराला' जी की वार्षिकी, हिन्द-चीन मैत्री-संघ का सम्मेलन, 'रचना' की गोष्ठियाँ, सोवियत शिष्ट मंडल का स्वागत, यूगोस्लाविया की तरुण कवयित्री से भेंट— इन अनेक अवसरों पर हिन्दी साहित्य-सेवियों की अग्रजा के रूप में महादेवी जी सहज ही अपना स्थान सुशोभित करती रही हैं।"

कला शिल्प से अलङ्कृत, सुरुचि से सँवारा कक्ष। धूप गन्ध से सुवासित। कालीनों

के भार में नि शब्द । प्रसाद, भारतेन्दु, निराला आदि की लघु मूर्तियों से सुसज्जित कक्ष के केन्द्र में वीणा-वादिनी की प्रतिमा । बाहर कमल के फूल । कवयित्री के व्यक्तित्व से मुखरित वातावरण । मानो उनका सपूर्ण काव्य-जगत मूर्त्त हो उठा हो ।

महादेवी जी हँसती रहती हैं । वे कुशल, सक्रिय सामाजिक प्राणी हैं । वे महिला-विद्यापीठ की उप-कुलपति हैं । सुचारु रूप से वे सभी कार्यों का सचालन करती हैं । वे कठोर भी हो सकती हैं । वे 'अग्नि-पथ' पर चल कर 'चन्दन-चाँदनी' के देश पहुँचने की कामना रखती हैं ।

मैंने गोष्ठियों में देखा है कि वे बडे ध्यान से तरुण लेखकों की बातें सुनती हैं । अपनी रचनाएँ सुनाने की उनके मन में बिलकुल इच्छा नही रहती । किन्तु नई रचनाएँ सुनने के प्रति उनके मन में बडी जिज्ञासा रहती है ।

कितना बडा हमारा सौभाग्य है कि हम इस युग मे जीवित है, जिसमें सुमित्रा-नन्दन पन्त और महादेवी वर्मा भी साँस ले रहे हैं । महादेवी जी साठ वर्ष की हो रही हैं । आश्चर्य लगता है । उनकी सक्रियता, सजगता, कर्त्तव्य-परायणता अनेक तरुणों और तरुणियों के लिए उदाहरण हैं । अवस्था में वे मुझसे कुछ ही बडी हैं । किन्तु उनकी सूर्य-सी प्रखर और चाँदनी-सी स्निग्ध काव्यमय प्रतिभा के सम्मुख नत-मस्तक मैं निरन्तर मन-ही-मन उनके मगल की कामना करता हूँ ।
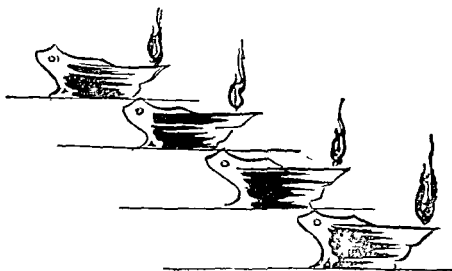
पहला गीत : पहली भेंट

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क

महादेवी वर्मा का नाम आते ही मेरे सामने अपनी जवानी के मस्ती-भरे, अल्हड़, मूर्ख दिन घूम जाते हैं, जब उनकी एक कविता पढ़ कर मैं सारी रात सिर धुनता रहा था और वही रात नहीं, मेरी कई रातें बर्बाद हो गयी थीं और उन्हें पत्र लिखे बिना मैं चैन न पा सका था और उनसे मुलाकात करने की प्रबल उत्कण्ठा मेरे मन में पैदा हो गयी थी।

•

१९३४-३५ का जमाना था। उर्दू के गढ़ लाहौर में कहीं-कहीं हिन्दी की आवाज सुनायी देने लगी थी। अस्पताल रोड की एक गली में हिन्दी-पुस्तकों की एक छोटी-सी दुकान 'हिन्दी-भवन' नाम से खुल गयी थी। कुछ ही अन्तर पर गनपत रोड पर 'इंडियन प्रेस' ने अपनी ब्रान्च खोल दी थी। 'भारती' नाम से एक बड़ी सुन्दर हिन्दी मासिक पत्रिका 'हिन्दी-भवन' से निकलने लगी थी। श्री हरिकृष्ण प्रेमी उसके सम्पादक हो कर आये थे और हिन्दी के बिखरे हुए लोग आपस में मिलने-जुलने लगे थे। प्रेमी जी के साथ मेरी खूब घुटने लगी थी। सुबह-शाम उनके यहाँ जाना, उनकी लम्बी-लम्बी भावुकताभरी कविताएँ सुनना, उनके साथ काव्य-चर्चा करना मेरा रोज का शगल था।.

यद्यपि मैंने उसी साल कानून ले लिया था और बाकायदगी से अध्ययन भी करता था, लेकिन साथ-साथ हिन्दी में लिखने और हिन्दी को जानने के लिए भी सतत प्रयत्नशील था।

तभी एक दिन प्रेमी जी के यहाँ मालूम हुआ कि हिन्दी की किसी नयी कवयित्री को उनके काव्य-संग्रह पर सम्मेलन से पाँच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार मिला है और हिन्दी-काव्य के क्षितिज पर एक प्रकाशमान तारिका उदित हुई है। (यद्यपि बाद में मालूम हुआ कि वह महादेवी जी का तीसरा काव्य-संग्रह था, पर उस अहिन्दी प्रदेश में 'नीहार' अथवा 'रश्मि' का नाम किसी ने नहीं सुना था।) मैंने प्रेमी जी से अनुरोध किया कि वे मुझे पुस्तक खरिदवा दें। 'भारती' के दफ्तर से उतर कर हम गनपत रोड पर आये। एक रुपया कीमत थी। मैंने पुस्तक खरीद ली—'नीरजा'। मुझे नाम कठिन लगा। प्रेमी जी से मतलब पूछा। उन्होंने बताया : नीर = जल, जा = पैदा होने वाली—जल से पैदा होने वाली यानी कमलिनी। पुस्तक में चित्र भी था। वह मुझे उतना अच्छा नहीं लगा था। कुछ ही महीनों पहले मैंने हिन्दी की एक अन्य कवयित्री स्व० रामेश्वरी देवी चकोरी का एक काव्य-संग्रह 'किंजल्क' खरीदा था और उस पर उनका चित्र मुझे बहुत अच्छा लगा था और

यदि यह कहूँ कि मैं ने उस काव्य-संग्रह को महज चित्र देख कर ही खरीद लिया था तो गलत न होगा। महादेवी जी की पुस्तक खरीदने में चित्र ने कोई योग नही दिया।

वही दूकान पर बैठे-बैठे प्रेमी जी ने पुस्तक से एक गीत भी सुनाया और जब उन्होंने उसके अर्थ समझाये तो मेरे दिल की धडकन अनायास तेज हो गयी। मैं उन दिनो वहाँ से कुछ ही आगे, मोहनलाल रोड पर, एक मामूली से होटल—पवित्तर (पवित्र) हिन्दू होटल—की तीसरी मजिल पर, बरसाती मे, जिसे बडे चौडे किवाड लगा कर दूसरे कमरे का रूप दे दिया गया था, एक दूसरे युवक के साथ रहता था। मेरा साथी किसी दफ्तर मे क्लर्क था और उर्दू मे कुछ शेर-वो-शायरी भी करता था। सस्ता होटल। एक सीट का पाँच रुपया महीना, जिसमे खाने के साढे तीन रुपये भी शामिल थे। प्रकट है कि चारपाई के अलावा और कुछ भी फर्नीचर कमरे मे नही था। एक टूटी कुर्सी, तिपाई तक नहीं। मेरी चारपाई के साथ एक खिडकी होटल के आँगन में खुलती थी, जिसे सर्दी के कारण मैं बन्द रखता था। उसकी सिल पर मैं ने किताबे, कागज, कलम-दवात सजा रखी थी और चौखट से एक बल्ब टाँग रखा था। यही मैं काम करता था। मुझे अच्छी तरह याद है, प्रेमी जी से छुट्टी ले कर मैं सीधा 'पवित्तर हिन्दू होटल' की छत के अपने उसी कमरे में जा पहुँचा और बल्ब जला कर 'नीरजा' का पारायण करने लगा।

मेरी हिन्दी बहुत अच्छी नही थी। इतने बरस उर्दू मे लिखते रहने के कारण जितनी आती थी, भूल चुकी थी। प्रेमी जी की सहायता से मैं ने हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया था, पर मुझे बडी कठिनाई होती थी। फिर महादेवी की भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ, मुझे 'नीरजा' के गीत कुछ ज्यादा समझ मे नही आये। लेकिन उनमें कुछ ऐसा संगीत था कि मैं बार-बार उन्हे पढता रहा।

उस रात मुझे 'नीरजा' के कौन से गीत रुचे, मुझे याद नही, लेकिन एक गीत (जो मुझे आज भी पूरे का पूरा कण्ठस्थ है और जिसका नम्बर तक मुझे याद है—पन्द्रहवाँ—) मुझे बेहद पसन्द आया। कई बार मैंने उसे पढा। कमरे के एकान्त मे अपनी नितान्त बेसुरी आवाज मे, लगभग पागलो की तरह, मैं उसे बार-बार गाता रहा और जब मेरा साथी वापस आया (वह दफ्तर ही से खूब घूम-घाम कर, नीचे होटल मे खाना खा कर ही, तीसरी मज़िल की उस बरसाती में सोने को आता था) और उसने पूछा कि मैं उस तन्मयता से क्या पढ रहा हूँ, तो मैंने कहा, "आराम से बैठ जाओ तो तुम्हे एक लाजवाब गीत सुनाता हूँ।"

अपनी रौ मे मैं उस गीत के दो-तीन बन्द सुना भी गया। जब उसने जरा भी दाद न दी और मुँह बाये, परम मूर्खों की तरह मेरी तरफ देखता रहा तो मुझे खयाल आया कि वह मौलाना जफरअली खाँ की क्लिष्ट अरबी-फारसी जदा उर्दू को असली उर्दू समझने वाला शायर, उसे गीत के उन चरणो म चन्द शब्दों के सिवा कुछ भी समझ में न आया होगा (मुझे भी कुछ शब्दो के अर्थ प्रेमी जी ने न समझा दिये होते तो मैं भी उसमें उतना

रस कहाँ पा सकता ?) सो मैं ने कहा, "हिन्दी कुछ मुश्किल है, मैं तुम्हे समझा कर बताता हूँ, मजा आ जायगा। ऐसी ऐसी नाजुक-खयालियाँ हैं कि उर्दू में ढूँढे से न मिलेगी। (और फिर इस खयाल से कि उसे बुरा न लगे और वह पहले ही कवयित्री के खिलाफ पूर्वग्रह न बना ले, मैं ने इतना और बढ़ा दिया :) असल मे हिन्दी कविता का रस ही अलग है। तुम मजे से पैरों पर रजाई ओढ लो, मैं तुम्हे समझाकर यह कविता सुनाता हूँ।

और मैं फिर से सुनाने लगा—

मुखर पिक हौले बोल !
हठीले, हौले-हौले बोल !
जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेगे 'और',
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे बौर,
समीरण मत्त उठेगा डोल !
हठीले, हौले-हौले बोल !

"नर बुलबुल की तरह" गीत का पहला चरण पढ कर मैंने उसे अर्थ समझाते हुए कहा, "नर कोयल का गला भी ज्यादा मीठा होता है। इसलिए शायरा ने शब्द 'पिकी' नहीं, 'पिक' (नर कोयल) रखा है। कैसा कोयल ? मुखर ! ज्यादा बोलने वाला।" और मैंने जोश से कहा, "तुम कल्पना करो। आधी रात का वक्त है। कोई विरह की मारी किसी तरह सोयी है कि कोयल अचानक पूरे स्वर से 'कूहू, कूहू' की रट लगा देता है। वह बेचारी दो-चार बार करवटें बदलती है। जब वह चुप नहीं होता तो वह उठती है, "अरे भाई धीरे बोल।" वह उसकी नही सुनता। टेर लगाये जाता है। तो वह प्यार और मनुहार से कहती है कि ओ जिद्दी धीरे धीरे बोल। और उसे समझाती है—अगर तू धीरे नही बोलेगा तो कलियाँ जाग जायेंगी और तेरे स्वर से यह जान कर कि वसन्त आ गया है, अपना शहद लुटा देंगी और भँवरे अघायेंगे नहीं और 'और-और' का शोर मचायेंगे और पतझड के पीले पत्ते चौंक कर कि अब वसन्त आ गया ? गिर पड़ेंगे और आमों पर बौर आ जायगा और सुबह की हवा मदमत्त डोल उठेगी। इसलिए ओ जिद्दी धीरे-धीरे बोल।"

और यों अपने मित्र को गीत के अर्थ समझाते हुए, उसकी प्रतिक्रिया जाने बिना, मैं अपने-आप ही कह उठा—"वाह वा, वाह वा ! कोयल की कूक से बहार की आमद का कैसा खाका खीचा है। वाह वा, वाह वा" !

और मैंने दूसरा चरण सुनाया :

मर्मर की वशी मे गूँजेगा मधुऋतु का प्यार,
झर जावेगा कम्पित तृण से लघु सपना सुकुमार,

एक लघु आँसू बन बेमोल ।
हठीले, हौले-हौले बोल !

और मैं अर्थ समझाने लगा :

"उर्दू में पत्तों की आवाज़ को 'सर-सर' कहते है । हिन्दी मे मर्मर । तो शायरा कहती है कि पत्तो की मर्मर रूपी बाँसुरी मे बहार का प्यार गूँज उठेगा और काँपते हुए तिनके से शबनम की बूँद (मदमस्त हवा के झकोरे से) एक छोटा-सा बेशकीमत आंसू बन कर झर जायेगी, इसलिए ओ जिद्दी कोयल हौले-हौले बोल ।"

मैंने अपने साथी के आने से पहले इस गीत को कई बार पढा था । कांपते तिनके और उससे झर जाने वाले छोटे-से नाजुक सपने की बात पढ कर मेरी कल्पना मे अपने प्रिय के विरह मे तिनके-सी क्षीण हो जाने वाली और सपना देखते-देखते कोयल की आवाज से जाग उठने वाली विरह की मारी आ जाती, जिसकी आँखो से (यह जान कर कि उसका प्रिय नही आया और वह महज़ सपना ही देख रही थी) एक आंसू झर जाता है—बेमोल आंसू ! चरण के शाब्दिक अर्थ समझा कर मैं ने उसकी यह व्याख्या भी की और आगे बढा

'आता कौन' नीड तज पूछेगा विहगों का रोर,
दिग्वधुओं के घन-घूंघट के चचल होगे छोर,
पुलक से होगे सजल कपोल !
हठीले, हौले-हौले बोल !
प्रिय मेरा निशीथ नीरवता मे आता चुपचाप,
मेरे निमिषो से भी नीरव है उसकी पदचाप,
सुभग ! यह पल घडियाँ अनमोल !
हठीले, हौले-हौले बोल !

और मैं चिल्लाया—"वाह, वाह क्या बात कही है !—मेरा प्यारा आधी रात के सन्नाटे मे चुपचाप आता है और उसके पैरो की चाप मेरी पलको के गिरने की आवाज से भी खामोश है. क्या नाजुक-खयाली है !" मैंने झूम कर कहा और अपने मित्र को समझाया—"ज़ाहिर है कि वह सपने में आता है, इसलिए शायरा कहती है—'ओ अच्छे कोयल यह पल और घडियाँ अनमोल है, तू मुझे सपना देखने दे, न चिल्ला, ओ हठीले न चिल्ला । और शायरा अगले बन्द में यह बात साफ भी कर देती है :

वह सपना बन-बन आता जागृति मे जाता लौट,
मेरे श्रवण आज बैठे है इन पलको की ओट,
व्यर्थ मत कानो मे मधु घोल !
हठीले, हौले-हौले बोल !

"अहा हा, हा हा !" मैं जोश से बोला, "कैसा बारीक खयाल बाँधा है। मेरे श्रवण आज बैठे हैं इन पलकों की ओट ! मेरी सुनने की सारी कूवतें पलकों की ओट में आ बैठी है। मैं अपने प्रिय को सपने में बुलाने का प्रयास कर रही हूँ। तू बेकार कानों में शहद घोल रहा है।"

सव्याख्या गीत सुना कर, भरपूर दाद देते हुए, जब मैंने अपने साथी से कहा, "क्यों ?" (याने है न लाजवाब ?) तो वह बड़ी ऊँचाई से बोला, "हाँ ठीक है। लेकिन हफ़ीज के गीतों की बात कहाँ है।"

और उसने करवट बदल दी और कुछ ही मिनट बाद खर्राटे लेने लगा।

●

मैं मान लूँ कि मुझे बहुत बुरा लगा था। हफ़ीज मेरे वतनी हैं। बड़े सरल गीत लिखते हैं। बहुत अच्छा गाते हैं। मैं स्वयं उनके गीतों का शैदाई था और मुझे उनके गीत 'मन है पराये बस में' और 'प्रीत है तेरी रीत' कण्ठस्थ भी थे, लेकिन महादेवी के गीतों की गहराई और गीराई (व्यापकता) हफ़ीज के यहाँ नहीं थी। उस रात के बाद भी मैंने महादेवी का वह गीत अपने अन्य उर्दू-दाँ मित्रों के सामने सुनाया और मैंने पाया कि फारसी इस्तआरों (प्रतीकों) के अभ्यस्त उनके कान और जेहन उस नितान्त भारतीय वातावरण और प्राकृतिक चित्रण को कबूल नहीं कर पाते और आज जब मैं 'फिराक़' को हिन्दी शायरी को गाली देते सुनता हूँ तो मुझे हैरत नहीं होती। उर्दू और हिन्दी शायरी का रस जुदा-जुदा है। न जाने अपने किन संस्कारों के कारण मैंने जब महादेवी के गीतों को पढ़ा तो इक़बाल को छोड़ कर मुझे उस वक्त के सारे नज्म-गो (जोश भी, फिराक भी, हफ़ीज भी—फ़ैज़ और राशिद तब उदित नहीं हुए थे—) नितान्त फीके लगने लगे।

●

मेरा साथी सो गया तो मैं उसकी तरफ से पीठ मोड़ कर फिर इसी गीत को पढ़ने लगा था। मुझे याद है कि बाद में मैंने प्रेमी जी से 'नीरजा' के कई गीत पढ़े थे। शब्दकोश की सहायता से कठिन शब्दों के अर्थ जाने थे। 'नीरजा' का वह संस्करण आज भी मेरे पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसके पृष्ठों पर कठिन शब्दों के अर्थ उर्दू लिपि में लिखे हैं। मुझे याद है उस गीत का नशा जब टूटा था तो बहुत दिनों तक मैं संग्रह का पाँचवाँ गीत गाया करता था। एफ० ई० एल० की परीक्षा दे कर मैं जालन्धर चला गया था। पत्नी मेरी बीमार थी। (उसे यक्ष्मा हो गया था) उसकी सेवा शुश्रूषा मैं ही करता था। दिन भर के काम से थक कर जब मैं शाम को ऊपर छत पर खुरीं चारपाई पर लेटता तो अनायास गुनगुना उठता :

आज क्यों तेरी वीणा मौन
शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर
स्पन्दन भी भूला जाता उर

मधुर मसक-सा आज हृदय मे
आन समाया कौन
आज क्यो तेरी वीणा मौन।

मुझे इसका अन्तिम चरण बहुत ही अच्छा लगता और मैं बार-बार लगभग मदहोशी के आलम मे गाया करता :

बाहर घन-तम, भीतर दुख-तम
नभ मे विद्युत, तुझ मे प्रियतम
जीवन पावस - रात बनाने
सुधि बन छाया कौन
आज क्यो तेरी वीणा मौन

इसके अतिरिक्त 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल', 'मेरे हँसते अधर नही,' 'इस जादूगरनी वीणा पर', 'क्या नयी मेरी कहानी', 'लाये कौन संदेश नये घन' मेरे अन्य प्रिय गीत थे। उन दिनो तो मुझे ये सब के सब और 'नीरजा' के अन्य कई गीत भी कण्ठस्थ थे, लेकिन आज भी 'मधुर पिक', 'आज क्यो तेरी वीणा मौन', और 'लाये कौन संदेश नये घन', मुझे ज़बानी याद हैं और यद्यपि इनको पढते हुए न वैसे दिल धडकता है, न उन्माद छाता है, न मन उदास और अभिभूत होता है, पर पहले प्यार-ऐसे ये तीनो गीत मुझे आज भी अच्छे लगते हैं। लेकिन बात तो मैं उस पहले गीत की और उसके प्रभाव की सुनाने जा रहा था। इसमे रच-मात्र भी अत्युक्ति नही कि मैं सारी रात जागता रहा था। सच्ची बात यह है कि एक ही रात नही, मेरी कई रातें और दिन बर्बाद हो गये थे और मेरा पढना लिखना छट गया था। दूसरा सारा दिन मैं महादेवी ही की तर्ज पर स्वय एक गीत लिखता रहा था। उसमे मैंने यह बात पैदा करने की कोशिश की कि गीत की पक्तियो के पहले अक्षरो को मिलायें तो कवयित्री का पूरा नाम बन जाय। वैसा मेरे ही साथ हुआ था, और वैसा गीत मैं ने ही लिखा था, आज सहसा विश्वास नही आता। आज न वैसे करुण-मधुर गीत लिखे जाते है, न वातावरण मे वह ग्रहणशीलता है। आज की किसी नयी कविता को पढ कर कोई इस तरह पागल हो सकता है, मुझे सन्देह है। वातावरण बदल गया, सम्वेदना बदल गयी, दृष्टि बदल गयी। लेकिन मैं बात आज से लगभग बत्तीस वर्ष पहले की कर रहा हूँ। और तब सचमुच मुझ पर वैसा उन्माद छा गया था। आज अपना वह गीत पूरे-का-पूरा याद भी नही, पहली पक्तियाँ ही याद है और उन्ही की सहायता से मैं उसे यहाँ लिखता हूँ। कुछ ऐसा था

म मानस के पर्दों पर छाओ
ह हृद के तारो मे बिध जाओ

ा	आंसू बन कर मेरे मानी
द	दर्द भरी फिर कहो कहानी
े	एक बार छेडो तारो को
वी	वीणा की उन झकारो को
व	वन-वन जिनसे कूंज उठे थे
॰	रस-विभोर हो कूंज उठे थे
मा	मादकता की लहर बहाओ—मानस के पर्दों पर

दिन भर मैं कविता लिखता रहा और दूसरी रात जब फिर मुझे नींद न आयी तो मैंने एक बहुत लम्बा, तेरह-चौदह पृष्ठों का पत्र महादेवी जी के नाम लिखा। मुझे उस पत्र का और कुछ भी याद नहीं, सिवा इसके कि अन्त में मैंने उर्दू भाषा की आम दुआ लिखी थी जो प्राय नये और अच्छा लिखने वालो को दी जाती है—'अल्लाह करे ज़ोरे-कलम और ज्यादा !' यह भी याद है कि इसे लिख कर काट भी दिया था कि हिन्दी की शायरा के लिए ये शब्द शायद उपयुक्त न हो, पर इनसे बेहतर शब्द मुझे सूझ न पाये थे। और आखिर यह सोच कर कि एक उर्दू शायर की ओर से पत्र जा रहा है, मैंने फिर वे ही शब्द लिख दिय थे।

इससे पहले कि मैं सबेरे जा कर उस पत्र को डाक मे डालता, मेरे बडे भाई मुझसे मिलने आये। मैंने बडे उत्साह से अपना वह कारनामा—वह कविता और पत्र—उन्हें दिखाया। उन्होंने उसे पढा और फाड दिया—"यह क्या बकवास लिखी है !"

मुझे अपने भाई की इस कोरज़ौकी (अरसिकता) पर मन-ही-मन बडा अफसोस हुआ। लेकिन मैं उनकी बात मानता था, इसलिए मैंने फिर पत्र नहीं लिखा। जब मेरा पढना लिखना चौपट हो गया और बार-बार वह पत्र मेरे दिमाग में बनता-बिगडता रहा और मेरी रातों की नींद हराम हो गयी तो तीसरी या चौथी रात मैंने फिर बैठ कर पूरे का पूरा पत्र, कविता समेत, दोबारा लिखा और महादेवी जी को भेज दिया और तब जा कर मेरे मन को शान्ति मिली।

आज मैं जानता हूँ कि महादेवी जी पत्रों का, जब तक कि वे कार-आमद न हो, कभी उत्तर नहीं देतीं। लेकिन मुझे तब विश्वास था कि मेरे उस प्रशंसा-भरे, श्रद्धा विगलित पत्र का वे वापसी डाक उत्तर देंगी। जब एक सप्ताह गुजर गया और कोई उत्तर न आया तो मैंने एक और पत्र लिखा। जब उसका भी उत्तर न मिला तो मैं ने वह कविता बडे खूबसूरत अक्षरो में कागज़ पर उतार, उसके बायें किनारे पर हर पक्ति के सामने महादेवी वर्मा के पहले अक्षर लिख कर उसे ठाकुर श्रीनाथ सिंह, सम्पादक 'सरस्वती' (इलाहाबाद) को भेज दिया।

ठाकुर श्रीनाथ सिंह से मेरा परिचय कुछ ही महीने पहले हुआ था और यदि आज मैं हिन्दी में लिख रहा हूँ तो इसमें उनका बडा हाथ है। मैं उस जमाने मे प्रेम-भरी, काल्पनिक

रोमानी कहानियाँ लिखता था, जो उर्दू में बडी पसन्द की जाती थी। और यद्यपि मेरी एक कहानी 'हंस' में छप चुकी थी, पर वे कहानियाँ प्रेमचन्द को पसन्द नहीं थी, इसलिए मैं हंस में भेजने का साहस नहीं कर सका था। तभी, जब मेरी एक प्रसिद्ध कहानी, जिसे प्रेमी जी की सहायता से मैंने हिन्दी में किया था, लेकिन जिसे वे 'भारती' में छापने को तैयार न हुए थे, दो-तीन अन्य पत्रिकाओं से भी वापस आ गयी तो हिन्दी वालो की इस अरसिकता से नाराज हो कर मैंने यह फैसला करने की सोची कि हिन्दी वाले मेरी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए अभी तैयार नही हैं। उनका पिंड छोडकर मैं उर्दू ही मे लिखता रहूँ। लेकिन इससे पहले कि मैं यह फैसला करता, मैंने एक और चाम लिया और वह कहानी ठाकुर श्रीनाथ सिंह को भेज दी। यह भी लिख दिया कि अमुक-अमुक पत्रिका इसे वापस कर चुकी है। ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने न केवल मेरी वह कहानी छाप दी, बल्कि शान से छापी, उस पर मेरी तस्वीर भी दी और मुझे उस कहानी के पैसे भी दिये। न केवल यह, बल्कि मेरी दूसरी कहानी भी छापी।

लेकिन वह कविता उन्होंने वापसी डाक यह कह कर वापस भेज दी कि उसमें व्यक्तिगत रग झलकता है और वे उसे 'सरस्वती' में नहीं छाप सकते।

तब यद्यपि मेरा वह जोश उपेक्षा के ये छींटे पा कर किंचित ठण्डा पड गया, पर मैं बडे मनोयोग से 'नीरजा' की कविताएँ पढ़ने लगा और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मुझे लगभग सारी की-सारी पुस्तक कण्ठस्थ हो गयी और यदि मैं कहूँ कि हिन्दी की ओर मेरी रुचि के उत्तरोत्तर बढने में 'नीरजा' का बडा हाथ है तो गलत न होगा।

महादेवीजी से मुझे कोई उत्तर नही मिला, लेकिन अगले कुछ वर्षों तक उनकी जो भी कविताएँ पत्र पत्रिकाओं में छपी, अथवा उनके काव्य के सम्बन्ध मे जो भी समालोचनाएँ अथवा लेख छपे (और उन दिनो उनके काव्य की बेपनाह चर्चा थी) वे सब मैंने पढ़े और उनसे भेंट करने की प्रबल उत्कण्ठा मेरे मन में पैदा हो गयी।

●

लेकिन उनसे भेंट करने का अवसर मुझे जल्दी नही मिला। इस बीच मैंने डिस्टिंक्शन से कानून पास किया और बी० ए० मे थर्ड डिवीजन से पास होने का कलंक धो डाला। उसी वर्ष दिसम्बर में मेरी पत्नी का देहान्त हो गया। मैंने अपने दुख को हल्का करने के लिए हिन्दी में कविता लिखनी शुरू की और प्रेमी जी से एक छन्द सीख कर उसी में कुछ कविताएँ लिख डाली। और यद्यपि मेरी पहली कहानी तो 'विशाल भारत' से लौट आयी थी, लेकिन पहली कविता 'विशाल भारत' ही में छपी और तीसरी को उसी पत्रिका में प्रथम पृष्ठ का आदर मिला। और उस वक्त जब मैंने कुल छै कविताएँ लिखी थी, मुझे गोरखपुर के अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन से निमत्रण भी मिला और मैंने जाने का फैसला भी कर लिया।

कवि-सम्मेलन मे कविता पढने और नयी जगहें देखने की लालसा तो थी ही, पर कही अतर में महादेवी जी के दर्शन करने की भी उत्कण्ठा थी।

गोरखपुर के कवि-सम्मेलन का बड़ा ही रोचक वर्णन मैंने कहीं किया है, उसे मैं नहीं दुहराऊँगा,—सिवाय इस बात के कि मेरे लगातार अनुरोध के कारण ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने ऐसे वक्त मेरा नाम ले दिया जब कोई अन्य कवि पढ़ने को तैयार नहीं था और बच्चन तक ने इनकार कर दिया था। —बात यह थी कि श्रीनाथ सिंह सम्मेलन का संचालन कर रहे थे और चोंच एक घण्टे से कविता पढ़ रहे थे जब कि मैं धीरे-धीरे खिसक कर श्रीनाथ सिंह के पास जा पहुँचा। वे खासे परेशान थे। श्री चोंच पूरी तरह से जमे हुए थे। जब भी उठने लगते, श्रोता शोर मचाने लगते और वे फिर बैठ जाते। जब चोंच जी को हटाने के सभी प्रयास निष्फल हो गये तो मैंने श्रीनाथ सिंह को सुझाया कि आप यह घोषणा कर दें—"अब केवल चोंच जी ही पढ़ेंगे।" ठाकुर श्रीनाथ सिंह को मेरी बात ऐसी भायी कि उन्होंने तत्काल उठ कर यही घोषणा कर दी और चोंच जी यह सुनते ही 'नमस्कार' कर के उठ गये और लोगों के लाख शोर मचाने पर भी नहीं लौटे। तब ठाकुर साहब ने एक दो कवियों को बुलाना चाहा, जब वे नहीं आये तो उन्होंने बच्चन का नाम लिया, लेकिन बच्चन तैयार नहीं हुए और तब परेशानी में उन्होंने मेरी ओर देखा। मैं उनके पास ही बैठा था और काफी देर से उन्हें परेशान कर रहा था कि मुझे भी पढ़वायें। —"अब अदर लाहौर के कविता पढ़ेंगे।' सहसा उन्होंने घोषणा कर दी।

मैं उठा तो सामने श्रोताओं को देख कर लगा कि मेरे आधे अंग को फालिज मार गया है। लेकिन मैं घबराया नहीं। उस वक्त जब सारे कवि बैठ कर कविताएँ पढ़ते थे, मैं ने औसान बहाल करने के लिए गर्म चादर को बड़ी अदा से घुमा कर कन्धे पर डाला और ज़रा आगे बढ़ कर खड़े खड़े, पूरे हाव-भाव से, कविता पढ़ने लगा। मुझे आज भी इस बात का गर्व है कि मेरी वह पहली कविता उस सम्मेलन में न केवल जम गयी, वरन मैंने दूसरी कविता भी उसी वक्त पढ़ी।

लेकिन उस सम्मेलन म यही मेरी उपलब्धि नहीं थी। मेरी वास्तविक उपलब्धि थे प० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जिनसे सहसा वहाँ भेंट हो गयी और कई वर्षों तक हम मे बहुत गहरी छनती रही। वापसी पर मैं उन्हीं के साथ आया और उन्हीं के घर दारागज म ठहरा। सबसे पहली इच्छा, जो इलाहाबाद पहुँच कर मैंने वाजपेयी जी से प्रकट की वह महादेवी जी के दर्शनो की थी।

वाजपेयी जी ने बताया कि वे महादेवी जी से कभी नहीं मिले। उन्होंने कई बार सोचा है, पर प्रयाग महिला विद्यापीठ के गेट के अन्दर जाने का साहस नहीं जुटा पाये। तब मैं उन्हे ले कर इंडियन प्रेस, 'सरस्वती' के आफिस पहुँचा और ठाकुर श्रीनाथ सिंह स अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने उसी फक्कड़पन से, जो उनके स्वभाव का अंग है, कहा कि देवी जी मिलती तो नहीं, पर चलो मैं मिला लाता हूँ।
और हम लोग वहाँ से पैदल ही प्रयाग महिला विद्यापीठ पहुँचे।

●

उन दिनों महादेवी जी प्रयाग महिला विद्यापीठ के अन्दर ही गेट के पास छोटी-सी बँगलिया में रहती थीं, जिसमें कि वे अशोक नगर के बँगले में जाने से पहले तक रहती रहीं। गेट के सामने खुलने वाला बराण्डे का दरवाजा बन्द था। घूम कर दायीं ओर से बराण्डे के सामने हम गये और ठाकुर साहब ने चपरासी के हाथ में चिट भेजी, जिस पर उसी फक्कड़पन से अपना नाम और नीचे ब्रेकेट में—अश्क लाहौरी के साथ—लिख दिया। कुछ क्षण बाद चपरासी ने अन्दर से दरवाजा खोला और हम अन्दर कमरे में गये।

सबसे पहली चीज़ जिसने कलापूर्ण ढंग से सजे उस कमरे में मेरा ध्यान खींचा वह सामने की बायीं दीवार पर बने बौद्ध भिक्षुओं के चित्र थे। कमरे के फर्श पर क्या बिछा था, मुझे याद नहीं, इतना याद है कि बायीं ओर और सामने एक बड़ा सोफा-सेट था जिसके बड़े कौच पर मैं और वाजपेयी बैठे और बराबर के सोफे पर श्रीनाथ सिंह। कुछ क्षण बाद पिछली ओर के बराण्डे से दरवाजे का पर्दा उठा कर महादवी जी आयीं। हाथ में उनके पेंसिल थी और उन्होंने शायद कहा कि क्लास से छुट्टी ले कर आ गयी हैं। उनकी वह झलक आज भी मेरी आँखों में वैसी की वैसी सुरक्षित है। पतला छरहरा शरीर, गोरा रंग, हल्की-सी ऊपर को उठी नाक, जो चेहरे पर सुन्दर लगती थी और खादी की एकदम सफेद साड़ी—'नीरजा' के अपने चित्र की अपेक्षा मुझे तब वे बहुत अच्छी लगीं।

ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने मेरा परिचय दिया और छूटते ही कहा कि इन हज़रत ने एक कविता आप पर लिख कर 'सरस्वती' में छपने के लिए भेजी थी। बजाय इसके कि मैं शर्मिन्दा होता या झेंपता, मैंने कहा कि आप ही को नहीं, इनको भी भेजी थी। और तब महादेवी जी ने स्वीकार में सिर हिलाते और उन्मुक्त रूप से हँसते हुए कहा कि हाँ भेजी थी।

उस मुलाकात का बहुत कुछ मुझे याद नहीं सिवाय इसके कि महादेवी जी मुझे उतने डर की वस्तु नहीं लगी थीं, जितना कि सुना था और फ़र्श पर, दीवार के अथवा जाने किस चीज़ के सहारे, एक बड़े कैनवस पर वह चित्र खिंचा था, जो बाद में किसी पुस्तक में 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' गीत के साथ छपा था। कमरे की सजावट, पर्दों और हर चीज से सुरुचि और कलाकारिता टपकती थी। उसी भेंट में मुझे यह पता चला था कि महादेवी चित्रकार भी हैं। यद्यपि मुझे उस चित्र में दीवट ज़रा-सा टेढा लगा था, लेकिन उसे बनाने वाली के लिए जो ऊँचे दर्जे की कवयित्री थीं, मन में श्रद्धा द्विगुणित हो गयी थी। मुझे यह भी याद है कि ठाकुर साहब या मैं बातें करते रहे, महादेवी जी हँसती रहीं, लेकिन बन्धु भगवतीप्रसाद वाजपेयी कौच के कोने में बैठे थे तो वहीं बैठे रहे थे और उन्होंने एक भी बात नहीं की थी। यह और बात है कि जब हम महादेवी जी के बँगले से बाहर निकले थे तो उनको लेकर वाजपेयी जी के अन्तर में रुका मोखड़ा डैम फूट पड़ा था।

चलते वक़्त देवी जी बाहर बरामदे तक हमें छोड़ने आयीं और जब मैंने शिकायत की कि वे पत्र का जवाब नहीं देतीं तो उन्होंने वहीं बरामदे के स्तम्भ पर मेरा पता नोट

कर लिया—१८४ अनारकली, लाहौर—और कहा कि अब मैं पता याद रखूंगी और उत्तर दूंगी ।

मुझे उनकी वह अदा बहुत भायी, लेकिन जैसे उन्होंने स्तम्भ पर पता नोट किया था, मन में कहीं लगा था कि ये पत्र का उत्तर नहीं देंगी । मुझे याद नहीं कि मैंने फिर देवी जी को पत्र लिखा या नहीं, शायद नहीं लिखा, लेकिन इतना निश्चित है कि यदि लिखा तो उन्होंने उसका उत्तर नहीं दिया ।
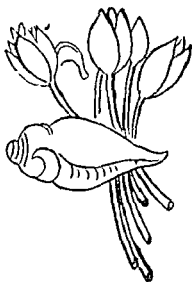
श्रीमती महादेवी वर्मा : स्मृति-चित्र

डॉ० नगेन्द्र

सन् १९३२-३३ तक, जब कि मैं सेंट जान्स कॉलिज आगरा मे बी० ए०—प्रथम वर्ष म पढता था, हिन्दी कविता से मेरा घनिष्ठ परिचय हो चुका था। मेरा यह अध्ययन केवल स्वान्त सुखाय ही न होकर एक विशेप क्रम से योजनाबद्ध रूप मे चल रहा था—और उस समय तक मैं हिन्दी के प्राय समस्त नये पुराने प्रतिनिधि कवियो के प्रमुख ग्रथो का विधिवत् अवलोकन कर चुका था। चूंकि मेरा लक्ष्य हिन्दी के (साथ ही अँगरेजी तथा सस्कृत के भी) अभिजात काव्य का विधिवत् अध्ययन करना था, अत मेरे मन मे अति-नवीन काव्य के प्रति कोई विशेप आग्रह नही था। आगरा का साहित्य रत्न भण्डार हमारे छात्रावास के पास ही था जहाँ मैं नियमित रूप से जाकर नई पुस्तकें देखता और खरीदता था। प्राचीन ग्रथो के सस्करण जहाँ भाडे और सस्ते होते थे, वहाँ नये काव्य ग्रथ वाह्य रूप-सज्जा की दृष्टि से अत्यत आकर्षक होते थे—उनका मुद्रण और मुखपृष्ठ कलापूर्ण होते थे और जिल्द प्राय रेशमी रहती थी, परन्तु अभिजात (क्लासिक) काव्य की शोध म प्रवृत्त मेरा किशोर मन अनायास ही इस वाह्य आकर्षण का सवरण कर प्राय प्राचीन ग्रथो के सग्रह का ही प्राथमिकता देता था। अत जब एक दिन विक्रेता ने 'रसराज' और 'नीहार' दोनो एक साथ मेरे सामने रखे तो मैंने 'रसराज' खरीदना ही आवश्यक समझा—क्योकि मेरे अध्ययन क्रम मे 'रसराज' का तो अत्यत महत्वपूर्ण स्थान था पर एक उदीयमान कवि की प्रथम रचना होने के कारण 'नीहार' का कोई महत्त्व नही था।

यह प्रबध धीरे धीरे शिथिल हाने लगा, प्राचीन काव्य के साथ-साथ नवीन काव्य की ओर मेरा आकर्षण बढने लगा और चूंकि मैं स्वय भी कुछ रोमानी कविता लिखता था, इसलिए छायावाद के कवियो के साथ मैं एक विशेप तादात्म्य का अनुभव करने लगा। 'परिमल', 'पल्लव' और 'ग्रथि' के साथ 'नीहार' भी एक वर्ष के भीतर मेरे पुस्तकालय के अलकार बन गये। तब तक 'नीहार' की अनेक पक्तियाँ मुझे कण्ठस्थ हो चुकी थी—'जो तुम आ जाते एक बार !' को मैं प्रगीत काव्य का अत्यत उत्कृष्ट उदाहरण मानता था। अत 'रश्मि' के प्रकाशित होते ही मैं तुरत उसे खरीद लाया—और एक दिन जब कोई फेरी वाला हास्टल मे आया तो मैंने सगमरमर का एक छोटा-सा फ्रेम लेकर 'रश्मि' मे सकलित महादेवी जी का चित्र उसमे लगाकर पढने की मेज पर रख लिया। कुछ समय के बाद हिन्दी के एक स्थानीय कवि मेरे पास आये और उस चित्र को देखकर अचानक पूछ बैठे

यह आपकी बड़ी बहन की तस्वीर है ? उनके इस अनुमान के लिए कोई विशेष आधार तो नहीं था और मन ही मन उनके अल्पबोध का उपहास करते हुए मैंने तुरत इसका प्रतिवाद भी कर दिया। परन्तु इस गौरवमय सम्बन्ध की एक विचित्र महत्वाकांक्षा मेरी चेतना में जग गयी जो वर्षों के बाद एक दिन महादेवी जी का स्नेह पाकर अनायास फलवती हुई।

महादेवी जी के दर्शन मैंने पहली बार शायद १९३९-४० के आसपास किया। उस समय तक 'नीरजा' प्रकाशित हो चुकी थी और वे हिन्दी के आधुनिक कवियों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उधर मैं भी 'सुमित्रानन्दन पंत' तथा 'साकेत एक अध्ययन' लिख चुका था और वे मुझे नाम से जानती थीं। मैंने एक मित्र के माध्यम से उनसे भेंट करने की योजना बनाई और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मुझे अपने स्थान पर लौटने का अवसर न मिला। मैं यों ही शहर में घूमने निकल पड़ा था और जब मित्र ने तुरत ही महादेवी जी के पास चलने का प्रस्ताव कर दिया तो मैं कुछ द्विविधा में पड़ गया। मुझे लगा जैसे मेरी वस्त्रभूषा में उन-जैसी गौरवास्पदा महिला के पास जाने लायक सजीदगी नहीं थी। मैं शायद जर्सी पहने हुए था। मैंने सुन रखा था कि वे लोगों से प्रायः कम ही मिलती हैं—और मर्यादा की बड़ी कायल हैं। अतः मेरे मन में बार-बार कालिदास की यह उक्ति गूंजने लगी—'विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि !'—और मैं सहसा हतप्रभ-सा हो गया। परन्तु अपने मन की इस द्विविधा को मित्र के सामने व्यक्त करने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ी और उधर मित्र ने भी मुझे इसका अवसर नहीं दिया। —हम लोग एलगिन रोड पर स्थित उनके आवास की ओर चल दिये।

रास्ते में आते हुए 'छायावाद की मीरा' के व्यक्तित्व के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ मेरे मन में उठने लगीं। एक क्षीण-कल्पना धूमिल चित्र मेरी आँखों के सामने आने लगा और मैं बार-बार अपने उस अवाच्यमय अविनीत वेश के प्रति सचेत-सा होने लगा। ऐसी ही विचित्र कल्पनाओं और धारणाओं को लेकर मैंने महादेवी जी के वार्ताकक्ष में प्रवेश किया। उस कमरे की साज सज्जा अत्यंत कलापूर्ण थी।—दीवारों पर अजन्ता शैली के भव्य चित्र अंकित थे, —एक कोने में कृष्ण की सुन्दर मूर्ति खड़ी हुई थी, फर्श पर कालीन बिछे हुए थे और कुर्सियों तथा आसन्दियों पर रेशम की गद्दियाँ थीं सम्पूर्ण कक्ष में कला का वातावरण व्याप्त था जिसमें छायावाद का रंग-वैभव तो यथावत् था, परन्तु मुझे लगा जैसे इसकी व्यंजनाएँ कुछ अधिक मूर्त थीं। मैं बड़े ध्यान से भित्तिचित्र आदि को देख रहा था कि इतने में महादेवी जी ने प्रवेश किया। हम लोगों ने उठकर विनयपूर्वक अभिवादन किया और अत्यंत सम्भ्रम के साथ अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। महादेवी जी शुभ्र खादी के वस्त्र धारण किये हुए थीं जो कमरे में विकीर्ण रंग-वैभव से सर्वथा भिन्न होते हुए भी उसमें विसंगति उत्पन्न नहीं करते थे जैसे शारदा की श्वेत प्रतिमा रंग बिरंगे फूलों के बीच किसी प्रकार असंगत प्रतीत नहीं होती। कक्ष का वातावरण कुछ औपचारिक-सा होने लगा था—परन्तु महादेवी जी ने तुरत अपने मुक्त

हास्य और उसी के अनुरूप सहज व्यावहार से उसे भंग कर दिया। मुझे देखकर सहसा कह उठीं—अरे तुम हो नगेन्द्र : तुम्हारे लेख पढ़ कर तो मैं समझती थी कि कोई भारी-भरकम आदमी होंगे। मैंने कहा : 'नहीं—मैंने तो अभी दो वर्ष पूर्व ही एम० ए० किया है।' मित्र बोले 'क्या उम्र है आपकी ?' मैंने कहा : '२४ वर्ष।' इस पर तुरत ही महादेवीजी बोल उठीं . 'तब तो हम तुम्हारी बड़ी दीदी है।' मैंने इस अयाचित स्नेह के लिए आभार व्यक्त किया और लगभग ६-७ वर्ष पहले घटित होस्टल की वह घटना अनायास ही मेरी स्मृति में मूर्तित हो गयी।—हम लोग कोई घंटा-डेढ़-घंटा बातचीत करते रहे। थोड़ी देर वे मेरे-घरबार के बारे में बातें करती रहीं जो सहज आत्मीयता से भीगी हुई थीं। बीच में प्रगतिवाद की चर्चा चल पड़ी मैंने देखा कि उनकी वाणी सहसा उद्दीप्त हो उठी और छायावाद-विरोधी तर्कों का वे अपूर्व दृढ़ता से खण्डन करने लगीं। इतने में ही चाय आ गई और उनके स्वर मे फिर वही सहज मार्दव आ गया जैसे किसी साहित्यिक मंच को छोड़कर वे तुरत ही परिवार के सहज स्निग्ध वातावरण में लौट आई हों। चाय पी कर अत्यंत कृतज्ञ भाव से मैंने उनसे विदा ली और मित्र के साथ अपने आवास की ओर चल दिया। रास्ते में स्वभावत मैं महादेवीजी के विषय में ही सोचता आ रहा था—मुझे लगता था कि मैंने 'अतीत के चलचित्र' की ममतामयी विधात्री के दर्शन तो कर लिये—'शृंखला की कड़ियाँ' की लेखिका का तेजस्वी रूप भी देख लिया परन्तु छायावाद की जिस विरहदग्ध कवयित्री को देखने मैं गया था वह अपने साधना-कक्ष से बाहर नहीं आई।

—और, महादेवी जी के विषय में आज भी यही सत्य है। उनके व्यक्तित्व के तीन रूप हैं एक—ममतामयी भारतीय महिला का जो बड़ो से छोटी बहन और छोटो से बड़ी बहन की तरह व्यवहार करती है, दूसरा—राष्ट्र की जाग्रत मेधाविनी नारी का जिसके विचारो में दृढ़ता और वाणी मे अपूर्व तेज है, और तीसरा—रहस्यकल्पनाओं की भावप्रवण कवयित्री का जिसने मधुरतम छायावादी गीतो की सृष्टि की है। इनमें पहला उनका पारिवारिक रूप है जो साहित्यिक बन्धुओ के सीमित वृत्त मे प्रकट होता है, दूसरा सामाजिक रूप है जो सार्वजनिक मचो पर दीप्त हो उठता है और तीसरा काव्य की मधुर-साधना मे लीन ऐकान्तिक रूप है जो सामने नहीं आता।

२

इस स्नेहाश्वासन के बाद मैं महादेवी जी के प्रति एक श्रद्धामय नैकट्य का अनुभव करने लगा और इलाहाबाद जाने पर नियमित रूप से उनसे मिलता। सन् १९४० में उनकी प्रसिद्ध कृति 'दीपशिखा' प्रकाशित हुई और मैंने पूर्ण मनोयोग के साथ उसकी समीक्षा लिख कर 'आकाशवाणी' से प्रसारित की जो बाद में प्रकाशित भी हुई। उन दिनो हिन्दी-साहित्य मे प्रगतिवाद का आन्दोलन जोर पर था। जैसा कि आज नवलेखन के सूत्रधार कर रहे हैं, उसी तरह सन् ४० के आसपास साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित लेखक भी सगठन बनाकर

सिद्धान्तो का व्यवसाय कर रहे थे और उन्होंने भी नये लेखकों की तरह अपनी सीमा की रक्षा करने के लिए कुछ छोटे-बडे प्रहरी छोड रखे थे जो उनकी अपनी चौहद्दी से बाहर चलने वालो पर अकारण ही झपटते रहते थे। सास्कृतिक परपरा के प्राय सभी कवि-लेखक उनके शिकार बन चुके थे। सिद्धान्त और व्यवहार दोनो की दृष्टि से प्रगतिवाद के आन्दोलन के प्रति मेरे मन में आस्था नही थी—मुझे लगता था और आज भी लगता है कि कोई भी जीवन-दृष्टि जैसे-जैसे वह आन्दोलन का सहारा लेती है, साहित्य से दूर हटने लगती है। इस प्रकार के आन्दोलनवादी साहित्य में भौतिक सिद्धियाँ प्रमुख हो जाती हैं और कला की साधना गौण। फिर भी, एक हल्ला तो मच ही गया था। पत जी की काव्य-कल्पना जीवन में मूलभूत साम्य का अनुसधान करती हुई मार्क्स के सिद्धान्तो की ओर आकृष्ट हो गई थी और वे अपनी प्रत्या को सायास उधर मोड रहे थे। प्रगतिवाद को इससे बडा बल मिल रहा था और उसके प्रचारक पत जी की मूल दृष्टि को न पकड कर उनकी बाह्य अभिव्यजनाओ मे आत्म-समर्थन ढूँढते हुए 'ग्राम-युवती' या 'कहारो का नृत्य' का कविता के आदर्शरूप म विज्ञापित कर रहे थे। इधर निराला की उत्तम कविताओ की उपेक्षा कर वे ऐसी रचनाओ को फतवे दे रहे थे जिनमें, उनकी दृष्टि से, शोषण के विरुद्ध क्रांति का स्वर प्रमुख था। मैं काव्य के क्षेत्र में बढती हुई इस अराजकता पर क्षुब्ध था। तभी 'दीप-शिखा' का प्रकाशन हुआ और मैंने मुक्त हृदय से उसका अभिनन्दन करते हुए लिखा

'इस युग में 'दीपशिखा' का प्रकाशन एक घटना है। महादेवी जी के ही शब्द उधार लेकर हम कहेंगे कि 'जीवन और मरण के इन तूफानी दिनो में रची हुई यह कविता ठीक ऐसी ही है जैसे झझा और प्रलय के बीच में स्थित मन्दिर मे जलने वाली निष्कम्प दीप शिखा।'

इस पुस्तक का महत्त्व एक और दृष्टि से भी है। आज छह-सात वर्षों के बाद महा-देवीजी के साधना मन्दिर का द्वार खुला है और करुणा के स्नेह से जलती हुई इस दीपक की लौ को अब भी एकाकीपन मे तन्मय और विश्वास में मुस्कराती हुई देखकर हिन्दी के विद्यार्थी का सशक मन उत्फुल्ल हो उठा है।"

परन्तु आगे 'दीपशिखा' के प्रगीति तत्व का विश्लेषण करते हुए मैंने निराशा व्यक्त की

"अब हमे यह देखना है कि दीपशिखा को जिस अनुभूति से प्रेरणा मिली है, उसमें कितनी तीव्रता है।

इस दृष्टि से हमे निराश होना पडेगा। कारण स्पष्ट है। इस अनुभूति के मूल में जो 'काम' का स्पन्दन है, उसके ऊपर कवि ने चिन्तन और कल्पना के इतने आवरण चढा रखे है कि स्वभावत उनकी तीव्रता दब गई है और उसका टटोलने पर बहुत नीचे गहरे मे एक हल्की-सी धडकन मिलती है। साथ ही अनुभूति को पुजीभूत होने का अवसर नही मिला। उसका वितरण प्रयत्न-पूर्वक किया गया है, इसलिए वह तीव्र न रहकर हल्की-हल्की बिखर गई है। स्पष्ट शब्दो में, इन गीतो में लोकगीतो की जैसी मास की उष्ण गन्ध प्राय नि शेष

हो गई है। दूसरी ओर बुद्धिजीवी महादेवी जी मे सन्त या भक्त कवियो का-सा विश्वास और समर्पण भी सम्भव नही हो सका। इसलिए उनके हृदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है, पीडा नही। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि दीप शिखा की प्रेरक अनुभूति छाँह-सी सूक्ष्म और मोम-सी मृदुल तो है, परन्तु हूक-सी तीव्र नही।"

मैंने अपनी धारणा पूरी ईमानदारी और उतने ही आदर के साथ व्यक्त की थी और महादेवी जी पर भी मेरी भावना अव्यक्त नही रही थी, फिर भी उक्त वक्तव्य में ऐसा कुछ अवश्य था जो उनको ग्राह्य नहीं हो सकता था। अगली बार जब मैं उनसे मिला तो यह बात मेरे मन म थी। उन्होने सहज-स्नेह से मेरा स्वागत किया और घर की—बाहर की—बहुत सी बातें करती रही। तभी मेरे मना करने पर भी भगतिन चाय ले आई और यद्यपि मैं सवेरे अच्छी तरह खा पीकर निकला था, फिर भी मुझे दीदी के आदेश का पालन करना पडा। भूख एकदम न होने से मैंने एकाध चीज़ लेकर तश्तरी सामने से हटा दी। इस पर उन्हे मौका मिल गया—शायद वे उसकी तलाश में ही थीं, और बोलीं "बात करते हो कविता में भी मास की, मुंह मे सेव तक नहीं चलते।" मैं इसके लिए तैयार था, पर यह झिडकी इतने स्निग्ध रूप मे मिलेगी, ऐसी आशा नही थी। मैंने बात को टालते हुए कहा—"भोजन में, दीदी, मैं पूरा आयसमाजी हूँ।" फिर भी, उस स्नेहसिक्त व्यग्य ने मुझे अपन निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए बाधित किया और यह प्रश्न आज भी मेरे सामने है कि क्या महादेवी की या सामान्यत छायावाद की कविता का इस आधार पर अवमूल्यन किया जा सकता है कि वह मासल नही है?

वास्तव में अपने अध्ययन और चिंतन-मनन के आधार पर मेरी यह निर्भ्रान्त धारणा बन गई है कि काव्य का प्राणतत्त्व रागात्मक अनुभूति है—और परिणामत काव्य के मूल्याकन का आधार भी मैं अनुभूति को ही मानता हूँ। अनुभूति के अतिरिक्त मानव चेतना की एक और प्रमुख वृत्ति है कल्पना जो जीवन के समस्त क्षेत्रो में—विशेषकर काव्य में सक्रिय रहती है—काव्य में अनुभूति को रूपायित करने का सबसे प्रमुख साधन कल्पना ही है। इन दोनो वृत्तियों का यो तो अविच्छिन्न सम्बन्ध है, फिर भी स्थूल रूप से दोनो मे कल्पना की अपेक्षा अनुभूति सत्य के अधिक निकट है—अतएव सामान्यत अनुभूति मानव मन के लिए अपेक्षाकृत सहजग्राह्य होती है। इस तर्क से, जिस कविता में अनुभूति का तत्त्व अधिक है—अर्थात् जिसका अर्थ (सवेद्य) हमारी इन्द्रिया और उनके माध्यम से मन को अधिक प्रभावित करता है, वह अधिक मूल्यवान है। उक्त तथ्य का अनेक बार और अनेक रूपो मे प्रतिपादन हो चुका है भारतीय रस-सिद्धान्त में इसकी स्पष्ट स्वीकृति है, मिल्टन की बहुमान्य परिभाषा का भी सार यही है-- कविता सरल, ऐन्द्रिय और सवेगप्रवण होती है, वर्ड्सवर्थ ने इसी आधार पर कविता को प्रबल मनोवेगो का सहज उच्छलन माना है—आदि, आदि। छायावाद की कविता पर विशेषकर महादेवी और पत की कविता पर यह परिभाषा अपेक्षाकृत कम घटित होती है, इसमें सन्देह नही। परन्तु इस तर्क का प्रतिवाद भी कठिन नहीं है और छाया-

वाद की ओर से वहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है कविता जीवन के सामान्य ऐन्द्रिय-मानसिक अनुभवो की वाणी नहीं है—परिष्कृत अर्थात रागद्वेष तथा ऐन्द्रिय विकारो से मुक्त शुद्ध अनुभवो की अभिव्यक्ति है। अत अनुभूति की मासलता नहीं वरन् मागल तत्त्व की परिष्कृति ही कविता की सिद्धि है और छायावाद की कविता में मानव-अनुभूतियो के मृण्मय तत्त्व की अपेक्षा इसी चिन्मय तत्त्व का उन्मेष अधिक है। जीवन मे सहजता अर्थात् प्रकृत आवेग और अत स्फूर्ति का महत्त्व निश्चय ही है, परन्तु परिष्कृति के प्रति भी मानव-चेतना की प्रवृत्ति न नई है और न अस्वाभाविक। स्वस्थ मानव-मन के लिए जीवन के मासल उपभोग मे प्रवृत्त होना सर्वथा स्वाभाविक है परन्तु उससे ऊपर उठने की स्पृहा भी कम स्वाभाविक नहीं है। प्रकृत जीवनवादियो का यह तर्क सही है कि आदमी केवल फूल सूँघ कर नहीं रह सकता, परन्तु यह भी कम सही नहीं है कि आदमी को फूल सूँघने की आवश्यकता भी जीवन में निरतर बनी रहती है। महादेवी जी आज मेरे इस वक्तव्य को पढ कर हँस कर कहेंगी कि अब आए रास्ते पर, बच्चू ! —मैं रास्ते पर कहाँ तक आया हूँ, यह तो इस समय नहीं बताऊँगा, परन्तु इतना अवश्य है कि छायावाद के मूल्याकन के सदर्भ मे यह एक अत्यन्त सार्थक प्रश्न है जो आज हमारे सामने उपस्थित है।

इसी प्रकार नया कवि महादेवी जी के काव्य शिल्प के विरुद्ध भी एक विशेष आक्षेप करता है और वह यह कि उनकी बिम्ब-योजना का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है उनके उपमानो और प्रतीको में वैचित्र्य एवम् वैविध्य नहीं है। यह आक्षेप गलत नहीं है कि जीवन और जगत के सीमित क्षेत्र से महादेवीजी अपने उपमानो और प्रतीको का चयन करती है परन्तुउनकी सयोजनाओ में अपूर्व वैचित्र्य है। कहीं भी महादेवी अपने बिम्ब या चित्र की पुनरावृत्ति नहीं करती, उपकरण प्राय समान ही रहते हैं परन्तु उनका प्रयोग सर्वथा भिन्न होता है। इसलिए महादेवी जी की कला में विस्तार तो नहीं है परन्तु सूक्ष्म विन्यास अद्भुत है। यहाँ फिर एक मौलिक प्रश्न उठता है कि क्या उपमान और प्रतीको का वैविध्य-वैचित्र्य मात्र कला के मूल्याकन का आधार हो सकता है। कला का रहस्य सामग्री के सग्रह मे निहित है या उसके प्रयोग में ? छायावाद के प्रसग मे यह प्रश्न भी उतना ही सार्थक है।

३

सन् १९५० के बाद महादेवी जी की प्रख्या ने एक प्रकार से उपराम ले लिया। पिछले दो दशको मे उनकी केवल दो ही कृतियाँ सामने आईं एक 'सप्तपर्णा' जिसमे सस्कृत की कुछ चुनी हुई रचनाओ के पद्यानुवाद सकलित है और दूसरी 'पथ के साथी' जो कवयित्री के समसामयिक कलाकारो के मार्मिक व्यक्ति चित्रो का सकलन है। यह वास्तव में उनके सार्वजनिक जीवन का युग है। १९५० के बाद उनकी प्रतिभा साहित्यिक सगठन के कार्यो मे प्रवृत्त हो चली थी। इस अवधि मे उन्हे अनेक प्रकार के कडवे-मीठे अनुभव हुए। हिन्दी की जनता से उन्हे फूल भी मिले और धूल भी परन्तु इसी बीच वर्तमान युग के तीन महान्

व्यक्तित्व उनके जीवन मे आए—राष्ट्रपति राजन्द्रप्रसाद, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और महाप्राण कवि निराला। मेरा विश्वास है कि इन तीनो ने ही महादेवीजी के प्रबल और समृद्ध व्यक्तित्व के विकास मे, अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से, योगदान किया। सयोगवश अथवा हो सकता है कि अपने स्वभाव की असार्वजनिक प्रवृत्तियो के प्रच्छन्न प्रभाव से इस अवधि में महादेवी जी के साथ मेरा सपर्क प्राय नही रहा। परन्तु मेरे प्रति उनके वत्सल भाव मे कोई कमी नही आई और इसका प्रमाण मुझे मिला मैथिलीशरण गुप्त अभिभाषण-माला के सदर्भ मे जिसका आयोजन अभी कुछ मास पूर्व दिवगत राष्ट्रकवि के जन्मदिवस पर हमारे विभाग की ओर से किया गया था।

यह प्रसग भी अपने आप मे बडा ही रोचक और स्मरणीय है। दद्दा के स्वर्गवास के उपरात हमारे विभाग ने श्यामलाल-ट्रस्ट के अनुदान से मैथिलीशरण गुप्त अभिभाषण-माला के आयोजन का निर्णय किया और अपने उपकुलपति डा० देशमुख के सामने प्रथम वक्ता के रूप में श्रीमती महादेवी वर्मा को आमन्त्रित करने का प्रस्ताव रखा। डा० देशमुख ने बडे उत्साह के साथ उनके नाम का अनुमोदन किया और कहा कि वास्तव मे महादेवी जी के आने से एक भव्य परम्परा का सूत्रपात होगा। यह सब तो आसानी से हो गया, परन्तु महादेवी जी को बुला लेना अपने आप में एक असाध्य-साधना थी। मैं समस्या के हर पहलू को जानता था, इसलिए मैंने पूरी सावधानी से योजना बनाई। सबसे पहले तो उनकी स्वीकृति प्राप्त करने का ही सवाल था, क्योकि जब से मुझे मालूम है कि प्रयाग के डाक विभाग से महादेवी जी की कोई खास दुश्मनी चली आ रही है—न जाने क्यो दूसरो के पत्र उनको नही मिलते और उनके पत्र भी यथास्थान नही पहुँच पाते। इसका हल मैंने यह निकाला कि सरकार के भरे-पूरे डाक-विभाग का एकदम अविश्वास कर व्यक्तियो को पत्राचार का माध्यम बनाया। जिन दिनों यह योजना बन रही थी, तभी भाग्य से महिला विद्यापीठ के कर्मसचिव अपने किसी आवश्यक कार्य से महादेवी जी का पत्र लेकर मेरे पास आये। मैंने कहा—"आपके कार्य मे कतिपय वैधानिक बाधाएँ है, परन्तु मै निश्चय ही प्रयत्न करूँगा।" वे बेचारे बडे कृतज्ञ हुए और धन्यवाद देकर जाने लगे। उसी वक्त मैंने अपना मतलब उनसे कहा और महादेवी जी के नाम आमत्रण-पत्र सौप कर तुरत ही उसकी स्वीकृति भिजवाने का वचन ले लिया। परन्तु पूरी सावधानी के बावजूद पहला प्रयास विफल गया—उत्तर नही आया न नकारात्मक और न स्वीकारात्मक, यद्यपि वे सज्जन वादा कर गये थे कि देवी जी को यदि कोई कठिनाई हुई तो भी वे मुझे तुरत सूचना दे देंगे। मैंने जल्दी ही दूसरा उपाय किया और अब की बार एक ऐसे सज्जन को माध्यम बनाया जो विनीत और निष्ठावान् होने के साथ-साथ अपने दायित्व के प्रति भी अत्यत सजग थे। तब भी मैंने उन्हे पूरी तरह सतर्क कर दिया था। वे पूर्ण सकल्प के साथ आगे बढे और नाना प्रकार की बाधाएँ पार कर अत मे महादेवी जी की स्वीकृति प्राप्त करने मे सफल हो गये। उसी दिन उन्होंने मुझे तार स सूचना दी कि महादेवी जी ने सहर्ष हमारा आमत्रण स्वीकार कर लिया है।

यद्यपि मेरे पास सदेह का कोई विशेष कारण नहीं था, क्योंकि एक तो यह दद्दा के सारस्वत श्राद्ध का पुनीत अवसर था और दूसरे मेरा भी यह पहला निमत्रण था जिसमें मैंने अपनी ओर से सभी प्रकार के विकल्प देकर अस्वीकृति के लिए कोई अवकाश नहीं छोडा था, फिर भी मैं आश्वस्त नहीं था और उधर उनकी 'तात्कालिक स्वीकृति' मेरे सदेह में और भी वृद्धि कर रही थी। निमत्रण चूंकि सर्वथा औपचारिक था अत उसकी औपचारिक स्वीकृति भी अपेक्षित थी—यहां से दूसरी समस्या आरम्भ हुई। मैं पूरे बुद्धिबल से काम लेता हुआ, दोहरे साधनो का प्रयोग कर रहा था—एक ओर सीधे रजिस्ट्री पत्र और तार भेजता दूसरी ओर मित्र के माध्यम से उनकी प्रतिलिपियां। अत में, दीदी के सहज स्नेह से अभिषिक्त व्यक्तिगत पत्र के साथ औपचारिक स्वीकृति तो मुझे मिल गई, परन्तु तिथियो का प्रश्न अब भी हल नहीं हुआ। अत तिथियो के निर्णय के लिए फिर मोर्चा लगाया गया, और महीनो के बाद यह फैसला हुआ कि अगस्त में दद्दा के जन्मदिवस पर ही भाषणमाला का श्रीगणेश हो। अगस्त का महीना आया और विभाग की ओर से, समय पर, अवसर एव वक्ता की गरिमा के अनुरूप विधिवत् आयोजन किया गया। प्रयाग से आने की गाडी आदि का निश्चय हो गया और यह भी तय हो गया कि महादेवी जी को चूंकि नई दिल्ली में कुछ आवश्यक कार्य है, अत वहीं श्री दिनकर के यहां ठहरने मे उन्हे अधिक सुविधा रहेगी। समारोह से एक दिन पूर्व तार आया कि वे अपर इडिया से आ रही है। हम लोगों ने आराम की सांस ली। पर कुछ ही घटे बाद एक तार और आया—मेरा माथा ठनका और मैंने समझा कि बस कोई न कोई बाधा आ गई। परन्तु इस तार का भी मजमून वही था कि महादेवी जी अपर इडिया से पहुंच रही हैं—मुझे लगा जैसे आतिथेय की व्यग्रता का सक्रमण अब अतिथि पर हो गया है। दूसरे दिन पता लगा कि अपर इडिया लेट है—यों तो लेट होने की उसकी आदत पुरानी है पर उस दिन वह तीन घटे लेट थी। खैर, तीन घटे भी कब तक पूरे न होते और गाडी आ गई।

परिचित वेश-भूषा में महादेवी जी अपनी सहायिका के साथ डिब्बे से उतरीं। उनका स्वागत करने के लिए विभाग के अनेक सदस्य आये थे पर वे अपने-अपने काम पर लौट चुके थे—मैं भी घर जाकर दोबारा आया था। अत उस समय मैं और मेरे साहित्य-सहायक ही स्टेशन पर रह गये थे। मैंने सप्रणाम माल्यार्पण द्वारा उनका स्वागत किया और कहा "इतने विलम्ब से आएंगी तो फीका ही स्वागत होगा।" बोलीं, "हम क्या करें—अंधेरे के कारण स्टेशन कुछ पहले चले आये थे—वहां आकर पता चला कि गाडी डेढ घटा लेट है, फिर वह और लेट होती गई और १० की जगह १ बजे रात को जक्शन से छूटी। कई दिन से हमें ज्वर था, पर डाक्टर से प्रार्थना की कि कैसे ही इजेक्शन देकर इसे दबाइए नही तो नगेन्द्र का हार्टफेल हो जाएगा। ज्वर तो जैसे-तैसे दब गया, पर तीन घटे तक स्टेशन पर बैठे रहने से फिर हरारत बढ आई है।" और, सचमुच उन्हे १००° से ऊपर बुखार था। मेरे मन ने कृतज्ञता और क्लेश दोनो का एक साथ अनुभव किया।

नियत समय पर मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व और कृतित्व पर महादेवी जी के दो भाषण हुए। विश्वविद्यालय का सबसे बड़ा हाल—नवदीक्षान्त-भवन—खचाखच भरा हुआ था दिल्ली की साहित्यिक और हिन्दी प्रेमी जनता भारतवर्ष की सर्वाधिक प्रतिभा-शालिनी नारी के दर्शन के लिए उमड़ पड़ी थी परन्तु वह अपार भीड़ एक विशेष सम्भ्रम की भावना से अनुशासित थी। स्वागत-भाषण में जब गार्गी और मैत्रेयी की परम्परा के प्रतिनिधि-रूप में महादेवी जी का अभिनन्दन किया गया, तो वाणी तथा व्यवहार में अत्यत सयत डा० देशमुख ने बड़े आदर के साथ करतल-ध्वनि से उसका समर्थन किया। महादेवी जी ने अपने पहले भाषण मे दद्दा के व्यक्तित्व का मार्मिक विश्लेषण किया। प्रतिभा से दीपित उनकी वाणी अत्यत शात-स्निग्ध रूप में प्रवाहित हो रही थी। हृदय से उद्भूत भाव सहज रूप में बिम्बो पर आरूढ़ होकर वाग्धारा पर तैरते चले जाते थे। तूलिका के बड़े ही सरस कोमल स्पर्शो से उन्होने स्वर्गीय कवि के जीवन के मार्मिक चित्र अकित किये लगा श्रवण-चक्षुओ के सामने दद्दा के जीवन का सुन्दर एलबम खुलता जा रहा हो और वह अपार श्रोता-समूह मत्रमुग्ध होकर उसे काना स देख रहा हो। सभापति—डा० देशमुख—के चेहरे पर गर्वमिश्रित सतोष का भाव था और जब मैं धन्यवाद-प्रस्ताव करने के लिए उठा, तो उन्होने धीरे-से कहा यह जरूर कहना कि रुग्ण होने पर भी हमारा आमत्रण स्वीकार कर इन्होने हमें विशेष रूप से उपकृत किया है।" —और, फिर, अपने पास बैठे हुए बंगला के प्रोफ़ेसर से अँगरेजी में बोले 'वेरी सेन्सिटिवली पेन्टेड—बड़ा ही मार्मिक चित्रण था।" भाषण समाप्त होने के बाद एक मित्र ने कहा "कैसा अद्भुत प्रवाह था, लगता था जैसे पूनम की चाँदनी से झलमल गगा की धारा बह रही हो।" मैंने उत्तर दिया "आपकी यह उत्प्रेक्षा सुन्दर होने पर भी अपूर्ण रही, इसमें शुभ्र स्नेह और स्फीत वाग्धारा के उपमान तो हैं, परन्तु वाणी के साथ सहज रूप से गुम्फित बिम्बावली का उल्लेख नहीं है, यह कहिए कि जैसे पूनम की चाँदनी में झलमल गगा की धारा फूलो से भरी घाटियो मे होकर बह रही हो।"

दूसरा भाषण मैथिलीशरण गुप्त के कृतित्व पर हुआ—अध्यक्ष थे विश्वविद्यालय के प्र-उपकुलपति डा० गागुलि। इस भाषण में भी शब्द और अर्थ का वैसा ही अपूर्व समारोह था और हम सभी के मन मे बार-बार यह विचार आ रहा था कि कवि के श्रद्धापर्व की इससे सुन्दर परिणति सम्भव नहीं थी। इतने में ही अपने अध्यक्षीय वक्तव्य का उपसहार करते हुए डा० गागुलि ने कहा "हमारे धर्म मे भिन्न-भिन्न देवी-देवताओ के पूजन की अलग-अलग विधियाँ हैं। इनमें गगा के पूजन की पद्धति सबसे विलक्षण है। उसमें बाहर से कोई सामग्री लाने की आवश्यकता नहीं होती, गगाजल से ही गगा का अभिषेक कर दिया जाता है। हमने भी वही किया है स्वर्गीय राष्ट्रकवि की वाणी का अर्चन आज हमने उन्ही के समतुल्य एक दूसरे कवि की वाणी के द्वारा किया है।"

महादेवी ते मिले हौ ?

श्री अमृतलाल नागर

काव्य व्यक्तित्व के अतिरिक्त महादेवीजी के दर्शन भी पहले पहल मुझे 'चाँद' ही के माध्यम से हुए थे । एक चित्र की स्मृति अब तक सजीव है, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान और चन्द्रावती लखनपाल का चित्र छपा था । यह त्रिपुटी उन दिनो बहुत प्रसिद्ध थी । चन्द्रावती जी आज विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो चुकी है ।

हिन्दी, बगला, गुजराती और मराठी की कवितायें अब भी बडे चाव से पढता हूँ । देवनागरी लिपि मे प्रकाशित उर्दू काव्य पढने का चस्का भी 'चाँद' ही की कृपा से लगा था और अब तक है । पहले हिन्दी भाषा के अनेक नये-पुराने कवियो की बहुत-सी कवितायें मैंने याद भी की थी । महादेवी जी की 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'अश्रुमय कोमल, कहाँ तू आ गई परदेशिनी री' मैंने बहुत दिनो तक गुनगुनाई ।

यह सब होते हुए भी उनके साक्षात् दर्शन पाने का सौभाग्य मुझे सन् '४२-'४३ से पहले न मिल सका । अगस्त-आन्दोलन के कुछ महीनो बाद बबई से घर गया था और वहाँ से निराला जी के दर्शन करने प्रयाग । उन दिनो वे गैरिकवस्त्रधारी थे ।

"महादेवी ते मिले हो ?" उन्होने पूछा । मेरे नकारने पर बोले "चलौ ।"

इस प्रकार वर्षों की साध पूरी हुई । स्मृतिपट पर अब सब कुछ अकित नही रह गया । तीन बातें याद हैं । एक महादेवी जी की हँसी । ऐसा लगता था कि जैसे उनके साथ-साथ उनके भीतर वाली कोई शक्ति उनसे हँसने मे होड ले रही हो । हम लोग आमतौर पर फुहारे की ऊपरी खिलखिलाहट को देख कर ही प्रसन्न होते है, उसके स्रोत का उल्लासमय वेग नही देखते । गीत मे शब्द और राग दोनो ही की अपनी-अपनी महिमा भी है, भले ही गायक के मधुरकण्ठ रूपी व्यक्तित्व के प्रभाव से वे एक रूप होकर झलके और उस प्रभाव की महिमा अनन्य हो ।

दूसरी बात फिल्मो से सबधित थी । आदरणीय भाई वाचस्पति जी पाठक उन्हें शायद कुछ ही दिन पहले यह बतला गये थे कि मैंने 'सगम' नामक एक तत्कालीन फिल्म मे प्रसाद जी का एक गीत ('अरे कही देखा है तुमने मुझे प्यार करने वाले को') प्रयुक्त किया है । कहने लगी · "निराला जी और पत जी के गीतो को भी फिल्मो मे लेना चाहिये ।"

तीसरी बात अगस्त सन् '४२ के आन्दोलन से सबधित थी । अग्रेज सरकार ने 'भारत छोडो' आन्दोलन को बडी बेरहमी से कुचला था । महादेवी जी उन दिनो ग्राम-सेवा-व्रत-

धारिणी थी। अपने अनुभव, दमनचक्र से भयभीत दीन-हीन किसानों की दशा का वर्णन करते-करते एकाएक चुप हो गईं फिर कहने लगीं. "हमारा आन्दोलन अब शायद अनेक वर्षों तक अपनी शक्ति न पा सकेगा।"

इसके बाद प्रयाग जाने पर उनसे कई बार मिला। उसी दौर में कब से मैंने उन्हें जीजी कहना शुरू कर दिया यह अब याद नहीं आता।

जीजी फिर एम० एल० सी० हो गईं। उनके लखनऊ आने-जाने के कारण स्वाभाविक रूप से बनने लगे। जब आतीं, विधायक-निवास से उनका टेलीफोन-संदेश मुझे मिलता, मैं दर्शन करने जाता।

स्व० पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त उत्तर प्रदेश की राजगद्दी छोड़ कर दिल्ली की गद्दी सम्हालने जा रहे थे। विधायक-निवास के 'कामन रूम' में लेखकों, पत्रकारों और कलाकारों की ओर से उनका विदाई-समारोह मनाया गया था। कत्थक नटवरी नृत्य सम्राट श्री शम्भू महाराज ने अपने नृत्य-प्रदर्शन से सभी को मुग्ध किया। जीजी भी उस समारोह में थीं। मुझ पर जीजी का रौब गालिब देख कर समारोह के बाद महाराज उनके पास गये और कहने लगे "देखिये, आप नागर जी को डाँटिये। ये मेरा काम नहीं करवा देते।" जीजी ने महाराज की तसल्ली के लिये मुझे तुरत ही डाँटा। यह बात अभी कुछ ही महीनों पहले लखनऊ रेडियो केन्द्र के एक 'स्टाफ आर्टिस्ट' संगीतकार ने प्रसंगवश सुना कर मेरी याद ताजा की थी।
इसके बाद—

सन्-सम्वत् ठीक-ठीक याद नहीं, शायद '५४ या '५५ की बात है, मगर यह याद है कि जून का अंतिम सप्ताह था। धर्मवीर भारती साहित्यकार संसद द्वारा ताकुला-नैनीताल में आयोजित ग्रीष्म शिविर के कार्यक्रमों में भाग लेकर सीधे लखनऊ, मेरे यहाँ आये थे। मैंने वहाँ के हाल-हवाल पूछे। भारती बोले 'वह सब भी सुनाऊँगा पर पहले जीजी का एक आदेश सुन लीजिये। आपको पन्द्रह दिनों के अन्दर भारतेन्दु जी की जीवनी पर आधारित एक नाटक लिखना है। नाटक लिख कर तुरन्त इलाहाबाद आजाइये। भारतेन्दु जी की जयंती के दिन 'रंगवाणी' का उद्घाटन-समारोह होगा। समय कम है। नाटक का दिग्दर्शन भी आप ही को करना है।"

जुलाई मध्य तक नाटक लिख कर मैं इलाहाबाद पहुँच गया और टैगोर-टाउन में भारतभूषण अग्रवाल के यहाँ डेरा डाल दिया। उन दिनों पंत जी भी टैगोर-टाउन ही में रहते थे। उनका तथा बालकृष्ण राव जी का घर भारत के घर के पास ही था। शाम को पंत जी के घर पर हम सब इकट्ठा हुए, जीजी भी वहीं आ गईं। नाटक सुना गया, सबको पसन्द भी आया। जीजी बोलीं "नाटक अच्छा है पर इसे रंगमंच पर भी अच्छा सिद्ध होना चाहिये। मामा (वरेरकर) बतलाते थे मराठी का रंगमंच बहुत विकसित है। मैं उन्हें तो बुला ही रही हूँ पर और भी अन्य भाषाभाषी नाटककारों को बुलवाना चाहती हूँ।"

मैंने कहा, "मैं अपनी भरसक कोई कसर न रक्खूँगा, आगे भगवान् नटराज मालिक हैं।"

रात में घर आकर इलाहाबाद के रंगकलाकारों के सम्बन्ध में भारतभूषण से मिस्कौट की। वे उन दिनों आकाशवाणी में काम करते थे। इलाहाबाद से पहले लखनऊ केन्द्र में थे। रेडियो का ड्रामा-प्रोड्यूसर होने से पहले भी अपने रेडियो नाटकों के रिहर्सल मैं स्वयम् ही कराने जाता था। भारत मेरी रुचि औरआवश्यकताओं को भलीभांति समझते थे। पात्रों के चुनाव में उनकी सलाह आम तौर से बेचूक हुआ करती थी। सब पात्रों का चुनाव हो गया। अब बचे स्वयम् भारतेन्दु। वे समस्या बन गये। मैंने कहा "बाह्य रूप से मेकअप में तो उसे भारतेन्दु लगना ही चाहिये पर उनके अंत: व्यक्तित्व का निरूपण भी उसे खूबी से करना चाहिये। यह पहली शर्त है। तभी मेरी जीत होगी।" मैं 'लगभग सच्चे' तक समझौता करने को राजी था पर इसके बाद नहीं। मैंने कहा, "मन का कलाकार न मिलने पर मैं नया नाटक लिख दूंगा और वह भी इस तरह से कि मंच पर भारतेन्दु की अनुपस्थिति ही नाटक के इंच-इंच में उनकी उपस्थिति का आभास करा दे। भारत बोले "आप मेरी बात मानिये, विजय बोस को 'ट्राई' कर लीजिये। वह लगभग सच्चे वाली आपकी शर्त पूरी कर देंगे। यदि आपको रिहर्सल में संतोष न हो तो फिर दूसरा नाटक लिख लीजियेगा।"

उस चिन्ता भरी रात के बाद का सवेरा भी याद रखने लायक बन गया। लगभग साढ़े आठ नौ बजे पंतजी पधारे। पहले तो वे नाटक और उसके लिये मेरी जालीदार परदे वाली तरकीब की प्रशंसा करते रहे फिर हँस कर कहा "बंधु बुरा न मानियेगा, महादेवी जी को आपके भाँग के गोलों की बड़ी चिन्ता है। कहने लगीं कि भाँग-वांग पीके सो गये और नाटक की तयारी में कसर रह गई तो बड़ी बदनामी होगी। मैंने उनसे कह दिया है बंधु कि आप बंधु की तरफ से बिल्कुल चिंता न करें। मैं उन्हें बहोत अच्छी तरह से जानता हूँ। पर आपसे भी कहता हूँ बंधु, आजकल जरा गोले-वोले कम चटाइयेगा। और कुछ नहीं तो कहीं तबियत ही खराब हो जाय।"

मुझे बड़ी जोर से हँसी आगई। पंतजी से, मर्यादाबद्ध रहते हुए भी मैं मुक्त रूप से हँसी-मजाक कर लेता हूँ, पर जीजी होने के बावजूद महादेवी जी से मेरा तब परिचित मात्र होने ही का नाता था। पंतजी की इस बात के पीछे मुझे जीजी का मनोचित्र उभरता दिखलाई दिया। स्वप्नवादिनी तो वे हैं ही साथ ही अपने सपनों को साकार करने के प्रति वे बड़ी लगन हठीली भी हैं। प्रयाग महिला विद्यापीठ इसका प्रमाण है। मूल रूप में निराला जी को महल देने के लिये ही उन्होंने साहित्यकार संसद् की योजना बना डाली और उसे साकार करके ही दम लिया। हिन्दी रंगमंच की पुनर्स्थापना का स्वप्न उन दिनों उनके मनोलोक पर छाया हुआ था। लखनऊ में भारती से होने वाली बातें उस समय मेरे मन में फिर गूंज उठीं। मैंने उसी दिन जाकर जीजी को अपनी ओर से शंकामुक्त कर दिया। वहाँ भी खूब हँसी रही। खैर, दो-तीन रोज के भीतर ही जीजी यह जान गईं कि उनका रंगवाणी का सपना मेरा अपना सपना भी है।

मैं इस नाटक मे नटराज उदयशंकर जी से सीखी हुई जालीदार परदे की, उस समय के हिसाब से नयी, एक तरकीब का प्रयोग करना चाहता था। अपने बडे बेटे चि० कुमुद से दो छोटे-छोटे नमूने के पर्दे रँगवा कर मैं साथ लाया था और पतजी के घर पर जीजी, राव साहब (श्री बालकृष्ण राव) और उमाजी को उसका करिश्मा दिखला चुका था। जीजी को परदे की तैयारी के सबध मे शका थी, कहने लगी "देखो। जैसा तुम चाहते हो वैसा बन जाय। इलाहाबाद तो बबई नही है।"

पेंटर की तलाश हो रही थी पर राव साहब का मन भर नही रहा था। एक दिन उमाजी कहने लगी "महादेवी जी कह रही थी कि ट्रिक वाले पर्दे का मोह छोड ही दिया जाय तो अच्छा होगा। अगर खराब बना तो नाटक पर उसका दुष्प्रभाव भी निश्चित रूप स पडेगा।" लेकिन यहाँ मैं आसानी से समझौता करने को राजी न हुआ। राव साहब की शरण गही कि यह तो नाक का सवाल है, हमारी भी और आपकी भी। इलाहाबाद भले ही बबई न हो पर रेगिस्तान भी नही है। राव साहब की लगन भी जाग उठी। दो-तीन दिनो तक पेंटर की खोज में वे इलाहाबाद का आकाश-पाताल एक करते रहे और अत में बबई के एक फिल्म स्टूडियो में काम कर चुकने वाले एक रगसाज को ही उन्होने इलाहाबाद की गलियो से खोज निकाला।

शौकिया रगमच के कलाकारो को आमतौर से नाटक के 'टका'-आयोजको से यह शिकायत बनी ही रहती है कि रिहर्सल के दिनो मे वे लोग कलाकारो के चाय-नाश्ते का प्रबन्ध उनके मनोनुकूल नही कराते। लेकिन यहाँ तो स्वयम् महादेवी जी ही 'मालिक-कम्पनी' थी। नाश्ता कराने के लिये वे स्वयम् आती थी। अपने-अपने दफ्तरो से सीधे रिहर्सल-स्थल पर आने वाले कला के भूतो को ऐसा सतोष कभी और कही नही मिला था। पर मेरे लिये जीजी के कारण एक परेशानी भी पैदा हो गई। जलपान कराने के बाद वे रिहर्सल देखने के लिये बैठ जाती थी। उनके रौब के मारे मेरे कलाकार काठ हो जाते थे। यह तमाशा दो दिनो तक चला। मैं घबराया, पर यह घबराहट ऊपरी थी, मन को यह विश्वास था कि यदि जीजी से कहूँगा तो वे बुरा नही मानेंगी। और अपनी बिपदा मैंने उनसे निवेदित भी कर दी। कहने लगी . "अच्छा भाई, कल से नही बैठूँगी। पर नाटक के दिन तो बडे-बडे साहित्यिक आयेंगे। तुम्हारे कलाकार जब मुझी से इतना घबराते हैं तो उस दिन क्या होगा ?"

मैंने कहा "मुँह पर रग पोतते ही अभिनेता शेर हो जाता है। उस दिन की चिंता आप न करें।"

दूसरे दिन हम लोगो को जलपान कराने के बाद जीजी तुरत उठ खडी हुईं। किसी ने कहा भी कि थोडी देर विराजें, परतु आप मेरी ओर देख कर हँसते हुए बोली "ना भाई, ये मुझे मना कर चुका है। कहता है कि कलाकार मेरी उपस्थिति के रोब से घबरा जाते हैं।" 'रोब' शब्द उच्चरित करते न करते उनकी हँसी का झरना झर पडा।

मैंने अभिनेताओ को ललकारा। हमारी टोली के कलाकार सचमुच ही इलाहाबाद

के नौरतन थे। जीजी की हँसी मेरे हाथ में चुनौती की तलवार बन कर खेली। और फिर तो ऐसा रिहर्सल जमा है कि मजा आ गया। एक दृश्य देख कर जीजी मगन मन गईं। उस दिन के बाद से जलपान लेकर आना भी छोड़ दिया। जलपान-व्यवस्था के लिये कभी उमा जी, कभी दो लडकियाँ और गगाप्रसाद जी पाण्डेय तथा कभी-कभी राव साहब तक उनकी ओर से बराबर उपस्थित होते रहे। वे स्वयम् 'ग्राड रिहर्सल' के दिन ही हाल में पधारी। हम शौकिया रगमच के गुनाह बेलज्जत ठोकरें खाने वाले प्रेमी जनों की कौम को ऐसा 'मालिक-कम्पनी हाज़िर' बडे नसीबों, बडी मुश्किल से मिलता है।

ग्राड रिहर्सल के दिन वही हुआ जिसका कि जीजी को भय था, अर्थात परदा अपना पूरा जादू न दिखा सका। अनिवार्य गडबडियों का देखने के निमित्त ही से मैं अपने द्वारा प्रदर्शित नाटकों के ग्राड रिहर्सल म भीतर नहीं बैठा करता था। मैं दर्शकों मे सबके पीछे अपनी कागज पेंसिल सम्हाले बैठा था। नाटक पूरा होते ही अगली पक्ति मे मराठी के मूर्धन्य नाटककार स्व० मामा वरेरकर जी के साथ बैठी हुई जीजी के पास आया। उनका चेहरा उतरा हुआ। मैंने कहा 'चिंता न करें, जो आज देखा है वह कल न देखें इसीलिये आज ही देख लिया। मेरा तो यही अभीष्ट था पर आप लोगों जैसी कला-मर्मज्ञ महान विभूतियाँ भी भीड के साथ बेटिकट का तमाशा देखने घुस आईं तो भला बतलाइए मैं क्या करूँ ?'

मेरी विदूषकता से वातावरण कुछ बदल गया। मामा से मेरा घनिष्ट परिचय था। उनकी उपस्थिति में प्रदर्शित कमजोरियों के कारण जीजी के मन पर एक प्रकार की झेंप सी चढी हुई थी। मैं उनके मन को पहचान गया। मैंने कहा "कलाकारों की छोटी-मोटी चूकें कल आपको न दिखाई देंगी।"

'यह तो मैं भी समझती हूँ। अभिनेताओं से विशेष शिकायत आज नहीं है। सब ने अच्छा काम किया। कल शायद और भी अच्छा करेंगे। पर तुम्हारा पर्दा अतिम दृश्य में तो सचमुच बडा बुरा लगता है। दृश्य की करुणा को ही आघात पहुँचाता है। यह तो बहुत ही बुरा लगता है। एक प्रयोग किया, नहीं सफल हुआ, यह कोई लज्जा या दुख की बात नहीं पर उसका प्रदर्शन करके नाटक का रस बिगाडना तो ठीक नहीं है। इससे तुम लोगों के कठिन परिश्रम के प्रति भी अन्याय होता है और दर्शकों के प्रति भी। तुम सादे नीले परदे का प्रयोग करो।"

जीजी का भय मेरे लिये निर्मूल था, उस दोष को दूर कर देना तनिक भी कठिन न था। पर जीजी अब कुछ कुछ हठ पकड गई थीं। मैं चुप ही रहा, न हाँ कही न ना।

दूसरे दिन नाट्य प्रदर्शन के बाद जीजी की सतोष भरी, गवभरी, आनन्दमग्न श्रीमुख छवि जो उस समय देखी थी वह मेरे मन में इस समय भी वैसी ही सजीव होकर उभर रही है।

श्रीमती महादेवी वर्मा : कुछ संस्मरण

श्री नरेन्द्र शर्मा

आज से लगभग छत्तीस वर्ष पहले की बात है। उन दिनो मै खुर्जा मे इटर का विद्यार्थी था। दूसरे वर्ष मे पढता था। हमें पढाने वाले दो प्राध्यापक प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ चुके थे। मैं उनकी प्रतिभा और सुजनता से प्रभावित था। पडित विद्याधर चतुर्वेदी राजनीति और नागरिक-शास्त्र पढाते थे। अच्छे वक्ता थे। सद्भाव और विचारो मे उदार थे। और स्थिर स्वार्थो की सत्ता के विरुद्ध आवाज उठा सकते थे। उनके प्रभाव मे उग्र राजनीति मे मेरी रुचि मद न पडी। किन्तु अँगरेजी के शिक्षक श्री महेश शुक्ल के कारण मैं हिन्दी कविता के प्रति आकृष्ट हुआ। शुक्ल जी से मुझे पत जी की 'वीणा' और महादेवी जी का कविता-सग्रह 'नीहार' मिला। और इन दो पुस्तको ने मेरे अन्तर्मन के न जाने किस अनजाने स्रोत को जगा दिया। राजनीति मे मेरी रुचि शनै शनै गौण हो गई और कविता मेरी मुख्य प्रवृत्ति बन गई।

श्री महेश शुक्ल महादेवी जी को व्यक्तिगत रूप मे भी जानते थे और उनकी कविता के तो प्रशसक वे थे ही। 'नीहार' देकर मेरे किशोर मन को उन्होने एक नई ज्योति दी। 'रजनी ओढे जाती थी झिलमिल तारो की जाली' जैसी सुदर सुकुमार पक्तियो ने मेरे मन में विरज विरल सौन्दर्य के प्रति लालसा जगा दी। 'मैं निर्धन तब ले आई भर कर सपनो से डाली'—इस पक्ति की स्निग्ध करुणा और भोली समर्पण-भावना ने मुझे भाव-विभोर बना दिया। 'चिन्ता क्या है, हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा, हो जायेगा तेरा ही पीडा का राज्य अँधेरा।' —जैसी पक्तियो ने मेरे मन मे समर्पण के आत्मविश्वास को पुष्ट किया। लेकिन सर्वोपरि प्रभाव पडा 'जो तुम आ जाते एक बार!' गीत की उत्कठा का। यह गीत मेरे मन मे कुछ इस प्रकार रम गया कि जब मैं गीत लिखने की दिशा में प्रवृत्ति हुआ, तो इस गीत की दो-चार पक्तियो को मैंने अपने अविकच गीत-प्रयोग में किंचित् रूपातर के साथ, उद्धृत पाया।

वेदना और सवेदना की सघनता और भावना की कोमलता की दृष्टि से महादवी जी की कविताओ ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है। शब्द-शिल्प, रचना-सौष्ठव और विचार-सस्कार की दृष्टि से पत जी ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। यह दो प्रभाव मेरे मन में बहुत गहरे हो गये हैं। और यह मेरा सौभाग्य है कि व्यक्तिगत रूप से भी मुझे इन दोनो का स्नेह और सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

वर्तमान ईसवी शती के तीसरे दशक में इलाहाबाद का साहित्यिक वातावरण बहुत स्नेहपूर्ण और सद्भावनापूर्ण था। वह वातावरण रचनात्मक प्रवृत्तियो के लिये बहुत अनुकूल था। मेरा तो निस्सदेह ऐसा ही अनुभव रहा है। उन्नीस सौ इकतीस से चालीस तक का, दस वर्ष का वह समय मेरे लिये तो सदैव स्मरणीय रहेगा। छायावादी शैली में, मैं उसे अपने जीवन-दिन का स्वर्णिम प्रहर कहूँ, तो अत्युक्ति न होगी।

अन्य अनेक आदरणीय साहित्यिको का सग-साथ तो सौभाग्य-सूचक था ही, पत जी और महादेवी जी का स्नेह और सानिध्य सचमुच एक अद्‌भुत उपलब्धि थी। अग्रज साहित्यिकों के स्नेह और आर्शीवाद की देन को देखते हुए, मै यही कह सकता हूँ कि मनुष्य को जो मिलता है, वह योग्यता के आधार पर नही, भाग्य से ही मिलता है। मुझमे योग्यता न थी। उन दिनो मेरा भाग्य अच्छा था।

या शायद भाग्य भी बहुत अच्छा न था। महादेवी जी मुझे सस्कृत पढाने लगी। मैं न पढ सका। छोड भागा पहली पाठ्‌य पुस्तक को। महादेवी जी ने मेरे लिये एक बहुत बढिया रेशमी लिहाफ बनवाया। त्रिपुरी काग्रेस मे जाते हुए, मैने अपने पूरे विस्तर के साथ, उस नायाब रेशमी लिहाफ को भी खो दिया। त्रिपुरी मे गाँधी आश्रम के खुरदुरे मोटे कम्बल उधार न मिलते, तो शायद मैं ठडा ही हो जाता।

महादेवी जी ने मुझे सदा अपना छोटा भाई माना है। पात्र की योग्यता का विचार किये बिना, मुझे बहुत स्नेह दिया है। ऐसी हालत मे मेरा भी यह कर्त्तव्य था कि मैं अपने आपको उनकी देन के योग्य बनाता। किन्तु मुझसे यह न हुआ। महादेवी जी से भी यह न हुआ कि मुझे बडी बहन के अपने स्नेह से वचित रक्खे।

महादेवी जी की कलाप्रियता उनकी काव्य-रचना तक ही सीमित नही है। उनका गद्य कला की कसौटी पर कीर्ति की अनेक अवलक कनक-रेखायें अकित कर चुका है। वह लिखती ही नही, सुदर गद्य बोलती भी है। उनके भाषण अस्खलित धारावाहिक प्राजल गद्य के अप्रतिम उदाहरण होते हैं। उनके चित्र मनोहर होते है। शब्द-चित्र ही नही, तूलिका से बनाये हुए भाव भरे रगीन चित्र भी। किन्तु जब मैं उनकी कलाप्रियता की बात करता हूँ, तो मेरा आशय उनकी दैनिक रहन-सहन और घर की साज-सज्जा से है। उनके अनेक पालतू पशु भी—कुत्ते, बिल्ली, शशक और मोर भी—उनके कला-सस्कारी दैनिक जीवन के अग बन गये हैं। घर के सदस्यो जैसे ही, वह उनके स्नेह में हिस्सा बटाते है।

द्रौपदी घाट के पास की आजकल की उनकी कोठी तो बहुत बडी है। बाग के साथ कोठी और भी बडी है। लेकिन जिन दिनो की बात मैं कह रहा हूँ, वह महिला विद्यापीठ के पूर्वोत्तर के एक कोने मे अपने छोटे-से कॉटेज मे रहती थी। बीच का कमरा, जो शायद अपेक्षाकृत कुछ बडा था, उठने-बैठने के काम में आता था। वह भित्तिचित्रो से सजा था। चित्र बुद्ध-जीवन की घटनाओं को दरसाते थे। दरवाजों पर सुदर सुरुचि पूर्ण परदे थे, उन्हे समेटने के लिये छोटे-छोटे शखों की मालाएँ थी। सरस्वती की पूर्वाभिमुख मूर्ति-

यथास्थान प्रतिष्ठित थी। सुगंधित वातावरण था। धूप-बत्तियाँ यत्र-तत्र रक्खी रहती थीं। पंत जी ने एक बार यह सब देख कर कहा—"आपका घर तो मंदिर है।" महादेवी जी हँसते-हँसते बोलीं—"लेकिन आपका हृदय तो शून्य मंदिर है।" संकेत संभवतः पंत जी के तत्कालीन निर्गुण अद्वैतवाद की दिशा में था। संभवत महादेवी जी तथागत की करुणा से निष्पन्न अजंता के राग-विराग-रंजित वातावरण का पक्ष ले रही थीं। लेकिन मैं इस सबसे अछूता और अनभिज्ञ था। मेरा अपना मानसिक स्तर था उस निरक्षर लकड़हारे कालिदास का-सा जो विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ करने के लिये पकड़ बुलाया गया था। सो, मेरे मुँह से निकला—"हाँ, तभी तो आपने (महादेवी जी ने) एक जगह लिखा है—"शून्य मंदिर में बनूँगी, प्राण, मैं प्रतिमा तुम्हारी!—है न?" कहना न होगा कि विदूषक के-से मेरे कथन पर विदुषी-विद्वान दोनों कवि खूब हँसे। मैं भी चौंका, क्योंकि मेरी गोशमाली होते-होते बाल-बाल बची!

गोशमाली की नौबत एक-डेढ़ साल पहले भी आ गई थी। मैं अपनी पत्नी को साथ लेकर, यानी सपत्नीक पहली बार प्रयाग गया था। प्रयाग के अपने पुराने इष्ट-मित्रों से प्रमाण-पत्र प्राप्त करना था कि मैं अब 'प्रवासी' नहीं, 'गृहस्थ' हूँ। गृहस्थ बनने के बाद भी अनेक बार अकेला तो प्रयाग गया था, लेकिन मेरी पत्नी को देखे बिना मेरे मित्र मुझे गृहस्थ होने का प्रमाण-पत्र देते ही न थे। इसीलिये पत्नी के साथ प्रयाग जाना अनिवार्य था।

प्रयाग में हम पंत जी के साथ ठहरे थे। शाम को महादेवी जी के घर जाना तै हो चुका था। लेकिन जाना था अमृतराय के घर होते हुए। मैं निश्चित होकर दिन में सो रहा था। टेलीफून की घंटी बजी। मेरी नींद टूटी और मैंने हड़बड़ा कर टेलीफून उठाया। प्रश्न हुआ—"आ रहे हो न?" मैंने बड़े ही इतमीनान से जवाब दिया—"हाँ, हाँ, बस अब निकलते ही हैं।" प्रश्न—"आवाज पहचानी?" मेरा उत्तर—"हाँ, हाँ, अमृत!" डाँट पड़ी—"बुद्धू हो तुम!" कान-खिंचायी की नौबत आ गई। उधर टेलीफून पर महादेवी जी थीं।

मैंने बिगड़ी बात को बनाने की लाख कोशिश की कि मेरा आशय तो यह था कि आवाज़ में अमृत है। लेकिन उस समय 'बात बनाये न बने' वाली मेरी स्थिति थी। अपने सहज स्वाभाविक भोलेपन में मैंने पंत जी को पूरी बात बतायी। पंत जी ने, हँस-हँस कर, बात मेरी पत्नी को सुनायी और सबने मुझे बुद्धू कहे जाने का बहुत आनंद लिया।

प्रयाग को मैं अपना मानस-घर ही मानता हूँ। इसलिये मैंने भी हँस कर कहा—"चलिये दुर्भाग्य की कृपा से कान तो नहीं खिंचे। जान बची और लाखों पाये, घर के बुद्धू घर को आये!"

याद आती है अपने दिल्ली-वास के दिनों की एक बात। महादेवी जी पद्मभूषण की अपनी उपाधि और पदक लेने दिल्ली आई थीं। उन दिनों मेरी पत्नी और बच्चे भी वहाँ

थे। महादेवी जी घर पर आईं। जैसा कि उनका सहज स्वभाव और नित्य का बर्ताव है, उन्होंने चलते समय बच्चों को बहुत-से रुपये, मिठाई खाने के लिये दिये। मेरी पत्नी ने कहा—"जीजी, इतना नहीं!" लडकियों में सबसे छोटी ने अपनी माँ का समर्थन तो किया, लेकिन कुछ शंकित होकर कि कहीं हाथ में आये हुए रूपये एकदम हाथ से न निकल जायें। वह बोली—"इतना नहीं फूआ जी! बस आधा बहुत है!" खूब हँसी हुई। क्या महादेवी जी पर मेरी देवी जी का अनुशासन चल सकता था? वैसे भी माँ से फूआ का और भाभी से ननद का दरजा बडा होता है। और फिर महादेवी जी तो हर तरह से बडी हैं ही।

लगभग तीन-चार वर्ष हुए, दिल्ली के चित्रकला संगम तथा लेखिका संघ की ओर से महादेवी जी का अभिनंदन राष्ट्रपति भवन में किया गया था। सांध्य गोष्ठी का आयोजन श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के निवास-स्थान पर हुआ था। पंडित जवाहर लाल नेहरू भी गोष्ठी में पधारे थे। उनसे कुछ कहने के लिये निवेदन किया गया, तो वह बडी ही अनौपचारिक आत्मीयता से यह कहते-कहते चले गये कि मैं महादेवी जी का 'अभिनंदन करने ही तो यहाँ आया हूँ, और क्या कहूँ—महादेवी जी खूब जोरों पर हैं!'

महादेवी जी कभी किसी भी परिस्थिति में, किसी भी वातावरण में कमजोर नहीं पडतीं—यह सच है। यह सच है कि वह आधुनिक हिन्दी-साहित्य की महादेवी हैं। किन्तु उनका कार्यक्षेत्र साहित्य-रचना तक ही सीमित नहीं है। वह वर्षों से नारी-शिक्षण की संचालिका रही हैं। महिला विद्यापीठ की तो वह वर्षों से पीठेश्वरी हैं। उन्होंने साहित्यकार-संसद् की स्थापना की थी। वह उत्तर प्रदेश की मानद-मनोनीत विधायिका भी रह चुकी हैं। और प्रयाग के साहित्य-जगत् की प्रमुख प्रेरणा तो वह हैं ही। महादेवी जी अब व्यक्ति की कोटि से ऊपर उठ कर संस्था बन गई हैं। साहित्य-जगत् में सामान्यतः, और प्रयाग में विशेष कर, वह देवी जी कहलाती हैं। पर मैं तो उन्हें बडी बहन के रूप में ही जानता हूँ और देवी जी नहीं, मैं उन्हें महादेवी जी मानता हूँ।

कवि के रूप में जन्म लेकर, मैंने घुट्टी के साथ उनके कवितामृत का बूँद-बूँद कर पान किया है। कहना न होगा कि उनका मुझ पर विशेष आभार है। किन्तु उन्होंने आभार-जन्य श्रद्धा से मेरे मन को कभी दबने नहीं दिया। बडी बहन के प्यार ने सब प्रकार से छोटे, इस भाई को सब प्रकार से उद्धत ही बनाया है। प्रगतिशीलता के जोश में मैंने अपने और अपनों के वैयक्तिक भावनाप्रधान गीतिकाव्य को अनेक बार गलत-सलत ढंग से मूल्यांकित किया था। अपने 'प्रवासी के गीत' कविता-संग्रह को मैंने मानसिक क्षय-ग्रस्त काव्य कहा था और शब्द-चित्रों से परिपूर्ण भाव भीने उत्तम गीतों को एक बार मैंने कविता कामिनी की कबरी में गूँथे हुए फूलदार चुटीलों की संज्ञा दी थी। मेरी बुद्धि पर महादेवी जी को तरस अवश्य आया होगा। पर उनका स्नेह कभी कम न हुआ। वैसे एक बार, हँस कर, उन्होंने चुटीले की मेरी अनुपयुक्त उक्ति को, बडे ही चुटीले ढंग से दोहराया अवश्य था।

महादेवी जी की हँसी मशहूर है। हँसी-हँसी में वह बडा ही चुटीला व्यंग्य कर सकती

हैं। यदि उनके स्नेह और कृपा-दृष्टि का सहारा न हो, तो अच्छे-अच्छों को उनके सामने चुप होना पड़ता है। बड़े से बड़े मुँहफट हँसोड़ों की उनके सामने घिग्घी बँध जाती है। फिर उनकी फटकार की मार का तो कहना ही क्या ?

लेकिन मैंने उन्हें कड़ी बात कहते कभी नहीं सुना। उनके व्यंग्य से तिलमिलाते हुए लोग देखे अवश्य हैं।

महादेवी जी शक्ति और स्नेह, सुरुचि और संस्कार की प्रतीक हैं। यह हमारे देश-काल का दुर्भाग्य है कि उनकी प्रतिमा से हमें उस प्रकाश का दशमांश भी नहीं मिला, जो उनके अंतर में सुरक्षित है। जो समाज की और युग की योग्यता है, उसी के अनुरूप ही तो महादेवी से वरदान प्राप्त होगा। मेरी तो इस अवसर पर यही विनती है---या देवी सर्व भूतेषु कविता रूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

आज विजयादशमी के दिन, मैं हृदय से उनकी जीवन-विजय की कामना करता हूँ।

साहित्यकार संसद भवन, प्रयाग (स्थापित : १९४५)

हिला विद्यापीठ महाविद्यालय

तृतीय भाग : व्यक्तित्व

•

दो क्षेत्रों में सरस्वती की आराधिका

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी

श्रीमती महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य की मूर्धन्य कवयित्री हैं। किंतु साहित्य क्षेत्र में विख्यात होने के पूर्व वे अध्यापिका के रूप म प्रसिद्ध थी। अध्यापिका के रूप में मैंने उनकी प्रशसा सबसे पहिले उस समय सुनी जब वे आर्य कन्या पाठशाला, प्रयाग में थी। इसके बाद वे महिला विद्यापीठ में चली आयी। उस समय यह सस्था अपनी आरभिक अवस्था मे थी और इसके सस्थापक बाबू सगमलाल इसके लिए एक भवन बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। अत में दक्षिण मलाका मुहल्ले में उन्होने उसके लिए एक जमीन प्राप्त कर ली और उसका पहिला भवन बनने लगा। उसी समय प० रामनारायण चतुर्वेदी तहसीलदारी से अवकाश प्राप्त कर प्रयाग आ गये थे। बाबू सगमलाल जी की प्रेरणा से वे भी उस भवन के निर्माण की देखभाल करने लगे। श्रीमती महादेवी वर्मा भी अध्यापन कार्य के अतिरिक्त इस निर्माण कार्य म भी बडी रुचि लेती थी। उन दिनो वे स्नान करने बहुधा गगा जी जाया करती थी। एक बार स्नान करते समय उनका हाथ कछुए ने काट लिया। चोट हलकी थी। रामनारायण जी को इस दुर्घटना का समाचार पहिले ही मिल चुका था। जब वे हाथ में पट्टी बाँध कर भवन-निर्माण की प्रगति देखने आयी, तब रामनारायण जी (जो कविता भी करते थे) बोले—"सुना है कि क्रूर कच्छप ने आपके कोमल कर को काट लिया।"

श्रीमती महादेवी वर्मा सफल अध्यापिका है। महिला विद्यापीठ महाविद्यालय ने जो उन्नति की उसका श्रेय उन्ही को है। वे अपनी छात्राओ मे अत्यन्त समादृत और लोकप्रिय हैं। प्रयाग में उच्च स्त्री शिक्षा की उन्नति म महादेवीजी ने जो काम किया है, तथा अपनी छात्राओ म जीवन और साहित्य के प्रति जो दृष्टिकोण उत्पन्न किया है, उसके लिए उनकी जितनी प्रशसा की जाय वह कम है।

हिन्दी साहित्य ससार ने उन्हें केवल साहित्यकार के रूप मे देखा है, किंतु वास्तविकता यह है कि साहित्य उनके व्यस्त जीवन का एक अग मात्र है। काव्य के अतिरिक्त उन्होने अपने सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति चित्रकला के द्वारा भी की है। उनमें ऊँचे दर्जे की कार्यकारिणी योग्यता है। महिला विद्यापीठ महाविद्यालय की प्राचार्या के रूप मे उन्होने जो सफलता पायी है वह उनकी प्रशासकीय योग्यता का प्रमाण है। साहित्य मे वे केवल कलम की ही धनी नही है—उन्हाने साहित्यकार ससद की कल्पना और स्थापना करके अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। महादेवीजी के बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का

ठीक तरह से मूल्यांकन करने के लिये उनके साहित्येतर क्रिया-कलापों का जानना बहुत आवश्यक है।

किंतु यह सही है कि साहित्य-क्षेत्र ही में उनका यश-शरीर जीवित रहेगा। हिन्दी काव्य जगत में उनका स्थान सुरक्षित है। कुछ विद्वानों का मत है कि आधुनिक रहस्यवाद का वास्तविक और सर्वोत्कृष्ट दर्शन महादेवी जी की कविताओं में होता है। छायावाद में रहस्यवाद का सर्वोत्तम परिपाक उन्हीं की कविताओं में हुआ है।

आस्था, सात्विकता और उदात्तवृत्ति—महादेवी जी के काव्य के ये विशिष्ट गुण हैं, और यदि कुछ लोगों ने उन्हें आधुनिक मीरा माना है तो उनके काव्य के उपर्युक्त गुणों को देखते हुए मुझे इस पर आश्चर्य नहीं होता। संभव है कि कभी-कभी उनकी कविताओं की उपेक्षा की जाय—क्योंकि युग के साथ साहित्य की धाराएँ और शैलियाँ बदलती रहती है, तथा कुछ दिनों के लिए पुराने उत्कृष्ट काव्य भी उपेक्षित हो जाते हैं। प्रत्येक अमर काव्य सदैव एक समान मान्य नहीं रहता। समसामयिक अल्पकालीन क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के कारण कुछ दिनों के लिए मान्यताएँ भले ही बदल जायें, थोड़े दिनों के लिए अमर साहित्य पर अमान्यता का भले ही ग्रहण लग जाय, किंतु फिर भी कुछ काव्य 'कालजयी' होता है जो अधिक समय तक उपेक्षित नहीं रह सकता। उतार-चढ़ाव के बावजूद वह सदैव कम या अधिक मान्य रहेगा तथा काव्य-रसिकों और विदग्ध पाठकों को प्रत्येक युग में आनन्द और प्रेरणा देता रहेगा, मुझे महादेवी जी के काव्य में साहित्य को अमर बनानेवाले तत्वों का अस्तित्व स्पष्ट दिखायी देता है, और इसलिए मैं उसकी अमरता—कम से कम दीर्घजीवन—के संबंध में आश्वस्त हूँ।

उनकी षष्ठिपूर्ति हिंदी प्रेमियों और साहित्यानुरागियों के लिए आनन्द का अवसर है। हिन्दी के एक सामान्य पाठक और अनुरागी की हैसियत से मैं इस अवसर पर उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। भगवान से प्रार्थना है कि वे महादेवी जी को दीर्घायु करें तथा उन्हें हिन्दी भाषा और साहित्य की और अधिक उत्कृष्ट सेवा करने की प्रेरणा एवं सामर्थ्य दें।

स्वाभिमानिनी ; स्वतन्त्रबुद्धि; करुणामयी !

डॉ० कामिल बुल्के

सन् १९३५ ई० मे मैं छब्बीस वर्ष की आयु में भारत पहुँचा। इस घटना के कारण मेरा सम्पूर्ण जीवन ही बदल गया, एक प्रकार से उस समय जीते जी मेरा पुनर्जन्म हुआ। मैं अविलम्ब बालकों की भाँति नागरी लिपि का अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने लगा, और दस वर्ष तक हिन्दी, संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के बाद मैं सन् १९४५ ई० मे हिन्दी में एम० ए० करने के लिए इलाहाबाद गया। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा की प्रेरणा से मैने एम० ए० के बाद वहाँ शोध-कार्य भी किया और इस प्रकार मैं चार वर्ष तक इलाहाबाद मे रहा। यदि मैं अपने इस प्रयाग-वास को अपने जीवन का 'द्वितीय वसन्त' कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी। वहाँ मेरे साथ लोगो ने इतना आत्मीय व्यवहार किया तथा मुझे इतनी सहृदयता से अपनाया कि राँची लौटकर मैं प्रयाग को नही भूल सका। भूलना तो दूर, उसकी स्मृति वर्ष-प्रति-वर्ष मधुरतर होती गयी, यहाँ तक कि मैं प्रयाग को अपना ही समझने लगा हूँ और वहाँ के लोग 'मायके वालो' की भाँति मेरे लिए आत्मीय एव प्रिय बन गये है। उन 'मायके वालो' मे दीदी' महादेवी जी' का एक विशिष्ट स्थान है।

अपने इलाहाबाद के विद्यार्थी-जीवन मे ही श्रीमती महादेवी वर्मा से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। जहाँ तक मुझे स्मरण है डॉ० रघुवंश, जो उस समय अपना शोध-प्रबन्ध लिख रहे थे, मुझे पहले-पहल उनके यहाँ ले गये थे। उस समय से अब तक मैं बीच-बीच मे बराबर महादेवी जी से मिलता रहा। प्रस्तुत संक्षिप्त संस्मरणात्मक लेख मे उनके कृतित्व के विषय मे कुछ न कहकर, उनके व्यक्तित्व का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा, इसी को अंकित करना चाहूँगा।

महादेवी जी के विषय में यह सुन कर कि वे कभी अँगरेजी नही बोलती, मैं मिलने के पहले से ही उनके प्रति आकर्षित हुआ था। बात यह है कि मेरी जन्मभूमि बेलजियम में दो भाषाएँ बोली जाती हैं उत्तर में फ्लेमिश और दक्षिण मे फ्रेंच। प्रथम महायुद्ध के बाद दोनो भाषाओ के समर्थकों में काफी संघर्ष चला था और मैंने अपने जीवन के 'प्रथम वसन्त मे अपनी फ्लेमिश मातृभाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए उस संघर्ष में भाग लिया था। उस समय फ्रेंच का बोलबाला था और उत्तर बेलजियम के बहुत से शिक्षित लोग फ्रेंच बोलना तथा फ्रेंच सभ्यता मे रँग जाना गौरव की बात मानते थे। मेरी

माता जी कभी-कभी हाईस्कूल में पढने वाली अपनी सन्तानो से अनुरोध करती थी कि हम अभ्यास करने की दृष्टि से आपस में फ्रेंच बोला करें। एक बार मेरी बहन ने माता जी को इस सम्बन्ध मे जो उत्तर दिया था वह मुझे अब तक स्मरण है। उसने दृढता-पूर्वक कहा, "हम खच्चर नही है। इस घर में फ्रेंच नही बोलेंगे।" भारत पहुँचकर मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि बहुत से शिक्षित लोग अपनी ही सस्कृति से नितान्त अनभिज्ञ है, और अँगरेजी बोलना तथा विदेशी सभ्यता में रँग जाना गौरव की बात समझते हैं। महादेवी जी के विषय में यह जानकर कि वे कभी अँगरेजी नही बोलती मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मैंने मन-ही-मन उन्हें अपनी स्वाभिमानिनी बहन के समकक्ष रख दिया। इस प्रकार वे मेरे लिए भारतीय स्वाभिमान का प्रतीक बन गयी थीं और बीस वर्ष के बाद जब मैं आज उनके व्यक्तित्व के विषय मे सोचने बैठा तो उनकी वही विशेषता सबसे पहले मेरे सामने आई। इस लम्बी अवधि मे कितने ही विषयो तथा समस्याओ पर उनके साथ बातचीत हुई, उनकी प्रतिक्रिया सुनकर मैंने बारबार आनन्द विभोर होकर मन-ही मन कहा है—'यहाँ सच्चा भारतीय स्वाभिमान बोल रहा है।'

सच्चा भारतीय स्वाभिमान रूढिवाद का पर्याय नही है। महादेवी जी को पुराण-पथियो की श्रेणी मे रखना उनके प्रति घोर अन्याय ही नही, अपने का हास्यास्पद बनाना भी होगा। राजनीतिक परतन्त्रता के अन्त के साथ-साथ भारत में मानसिक दासता का अंत नही हो पाया है। एक ओर तथाकथित शिक्षित वर्ग आधुनिकता के नाम पर विदेशी सभ्यता के प्रति अनुचित रूप से आकर्षित दिखाई पडता है, दूसरी ओर पुरातनता के अन्ध भक्तो की भी कमी नही है। ऐसे लोग एक प्रकार से रास्ते के किनारे बैठ जाते है अथवा सिर पीछे की ओर मोड कर धीरे-धीरे आगे बढते हुए भी यह नही देखते है कि हम किधर जा रहे है, मन में यही विचार सर्वोपरि है—हम कितना लम्बा सफर तय कर चुके है। महादेवी जी का मनोविज्ञान पुरातन के इन पुजारियो के मनोभाव से कोसो दूर है। वे वाल्मीकि, कालिदास, रवीन्द्रनाथ आदि भारतीय सस्कृति के सच्चे प्रतिनिधियो की श्रेणी में आती हैं, जो निर्जीव रूढियो की बेडियाँ दूर फेंक देते हैं और अपने विवेक के बल पर आगे बढने का मार्ग खोज निकालते हैं। वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करते समय मेरे मन में अनायास ही यह विचार बारम्बार उठा है कि आदिकवि ने जिस भारत का चित्रण किया है, वह अपने अतीत गौरव से मुग्ध होकर निष्क्रिय नही बन गया था अपितु हृदय में जीवन के प्रति उत्साह भर कर आगे बढता जा रहा था। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में लिखा है—

> पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
> सन्त परीक्ष्य-अन्तरद्-भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥

[पुराने होने से ही न तो कोई काव्य उत्कृष्ट हो जाता है और न नये होने से हीं निकृष्ट। ज्ञानी लोग दोनो को परखकर उनमें से एक को अपनाते हैं। मूर्ख ही दूसरे के कहने पर चलता है।]

काव्य के विषय में कालिदास की यह उक्ति सस्कृति के अन्य अगो पर भी लागू होती है। कालिदास की तरह स्वतन्त्र विचार रखने वाले मनीषियो के योगदान से भारतीय सस्कृति रूढियो से मुक्ति पाकर विकास की ओर बढ सकी है। महादेवी जी का 'भारतीय स्वाभिमान' जितना सच्चा और स्वाभाविक है, उतना ही विवेकपूर्ण और प्रगतिशील भी है। 'नवीन' विचारो को अपनी प्रखर बुद्धि की कसौटी पर कसकर, खरे उतरने पर उन्हे 'प्राचीन भारतीय' साँचे मे डालना तथा निर्भीकतापूर्वक अपनाना, यह क्षमता मैं महादेवी जी के शक्तिशाली व्यक्तित्व का अनिवार्य गुण मानता हूँ।

जिन्हे महादेवी जी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ है, उनके मन में समवत एक गुरु-गभीर विदुषी साधिका का चित्र बन गया होगा। ऐसा चित्र नितान्त अपूर्ण ही होगा, क्योकि महादेवी जी के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष कम महत्वपूर्ण नही है। उनके कोमल सवेदनशील हृदय मे मनुष्य मात्र के प्रति कल्याण की भावना कूट-कूटकर भरी है। 'प्राणो का दीप जलाकर करती रहती दीवाली' के अनुसार वे दूसरो की सेवा मे लगी रहती हैं और मिलने वालो से मुस्कराते हुए बात चीत करती है। कोई भी सहृदय व्यक्ति उनके स्नेही करुणामय व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। ईश्वर से मेरी यह प्रार्थना है कि महादेवी जी शतायु बनकर दूसरो के लिए 'दीवाली' करती रहे वे बहुतो में भारतीय स्वाभिमान की भावना भर सकें, 'नवीन' विचारो को भारतीय सस्कृति की कसौटी पर कसकर ही अपनाने की प्रेरणा देती रह और अपनी करुणामयी ममता से भरे प्यार स मिलनेवालो को स्निग्ध करती जाएँ। मैं भी और बहुत वर्षो तक बीच-बीच मे प्रयाग जा सकूँ और उनके भारतीय स्वाभिमान, बौद्धिक निर्भीकता तथा निर्मल स्नेह के सगम में नहाकर नये उत्साह से अपनी द्वितीय मातृभूमि की सेवा कर सकूँ।

जीवन का एक पक्ष

डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर'

कवि के रूप में महादेवी जी लगभग चालीस वर्षों से शून्य मन्दिर में कर्पूर की शिखा के समान जलती रही है। शून्य से यहाँ तात्पर्य गार्हस्थ्य के अभाव से है और शिखा का अर्थ विरहानुभूति है। कविता में उनका जो रूप प्रकट हुआ है, वह तपस्विनी का रूप है, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में वे कर्मठता की मूर्ति रही है। अतएव, कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति उनके बाहरी जीवन में है, भीतर से वे निवृत्ति में लीन हैं। यह स्थिति लगभग ज्ञान की स्थिति है, यद्यपि महादेवी जी कभी आध्यात्मिक साधना के चक्कर में पडी हैं या नही, इसमें मुझे सदेह है।

मगर यह युग तो ज्ञानी की स्थिति को समझना नही चाहता। वह हर एक जगह यही जानना चाहता है कि इस मनुष्य को समझने का सही नुस्खा किसके पास है? मार्क्स के या फ्रायड के? कुछ यह बात भी है कि मामला अगर मर्द का हो तो पूछताछ कुछ आसानी से की जा सकती है, मगर सम्भ्रात महिला के इतिहास के पन्ने कोई भी व्यक्ति उलटना नही चाहता।

शायद यही कारण है कि लबे अरसे तक महादेवी जी के सपर्क मे रहने के बाद भी मेरी कभी यह हिम्मत नही हुई कि उनके बारे मे कुछ जानने की कोशिश करूँ। उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् १९३५ ई० मे कलकत्ते मे हुई थी, जब हम लोग जापानी कवि नोगूची के सम्मान मे होने वाले कवि-सम्मेलन में भाग लेने को वहाँ गये थे। जैसे ही उन्हे मैंने देखा, मुझे लगा, मैं कवयित्री नही, करुणामयी, युवा सन्यासिनी के समक्ष खडा हूँ और तब से लेकर आज तक मेरी दृष्टि में महादेवी जी का भावाकुल सन्यासिनी-रूप ही प्रधान रहा है। मिलते ही वे सात्त्विक उल्लास से भर जाती हैं, जब तक साथ रहता हूँ, बराबर हँसती रहती है और जैसे ही विदा होने लगता हूँ, उनकी आँखों से मोती झरने लगते हैं। भला ऐसे कोमल, निश्छल, निरीह जीव से कैसे पूछूँ कि आपका पिछला इतिहास कैसा रहा है?

लेकिन, एक दिन, आपसे आप, खुद उन्ही के मुख से, मुझे वे सारी बातें मालूम हो गयी, जिनका प्रामाणिक विवरण जानने की कभी-कभी मुझ मे उत्कठा जगती थी। सन् १९६२ ई० के जून महीने में मैं इलाहाबाद गया था और महादेवी जी के ही पास टिका था। बातों-बातों में एक दिन वे आत्मकथन की मुद्रा मे आ गयी और अपने आरम्भिक दिनो

के बारे में उन्होने बहुत-सी बाते बिना पूछे ही बतला दी, जिन्हें मैंने दिल्ली या पटने पहुँच कर नोट कर लिया था। मेरी डायरी का वह पन्ना इस प्रकार है —

"२९ जून को मैं महादेवी जी के घर ठहरा हुआ था। अचानक देवी जी आत्म-चरित सुनाने की मुद्रा में आ गयी। उन्होने कहा, "मेरे पिता बाबू गोविन्दप्रसाद थे, जो पहले इन्दौर मे पढाते थे, पीछे भागलपुर चले गये। मेरे दादा बाबू बाँकेबिहारी जमीदाराना ठाट के आदमी थे। हमारा परिवार आर्यसमाजी था, लेकिन, कन्यावध के रिवाज से वह अभी बरी नही हुआ था। मैं जब जनमी, तब मेरी माँ १५ साल की थी। जब उन्हे बताया गया कि सतान बेटी है, तब वे अपना दुख भूलकर मुझे टटोलने लगी कि बेटी जीवित है या मार डाली गयी।

'लेकिन दादा को मेरा बडा ख्याल था। हमारा परिवार यद्यपि आर्यसमाजी हो गया था, किन्तु, कुलदेवी हमारी दुर्गा ही मानी जाती थी। दादा ने दुर्गा की आराधना इस उद्देश्य से की थी कि उन्हे एक पोती का मुँह देखना नसीब हो। जब मैं जनमी, उनकी यह इच्छा पूर्ण हो गयी। वे मुझे बहुत अधिक प्यार करते थे।

"मेरा व्याह सात वर्ष की उम्र में हुआ था। पति भी लगभग इतनी ही उम्र के थे। विवाह में बरात और सरात के बीच झगडा हो गया। मेरे दादा बडे ही अक्खड मिजाज के थे। उन्हाने जोश म आ कर कह दिया लो, हम बेटी की बिदाई नही करेंगे। जोश लडकावालो को भी आ गया और उन्होने भी कह दिया, अगर आप बेटी को बिदा न करेंगे, तो लीजिये, हम भी पतोहू को बिदा नही करवायेंगे, नही, कभी भी नहीं। इसी झगडे के कारण सबब टट गया। पीछे दादा ने पाँचवीं कक्षा स ही मुझे पढने को इलाहा-बाद भेज दिया।

"छात्रजीवन मे गार्हस्थ्य की ओर मेरा थोडा भी झुकाव नही हुआ। मैं बौद्ध भिक्षुणी होने का सपना देखने लगी। लका के कोई स्थविर थे, जिन्हे मैंने लिखा था कि आप मुझे दीक्षा देने की कृपा करें। उन्होने उत्तर दिया कि मैं नैनीताल आऊँगा, तब तुम से बात करूँगा। वे नैनीताल आये और मैं उनसे मिलने भी गयी। लेकिन, मेरे पहुँचते ही उन्होने अपनी आँखो पर ताड के पखे से आड कर लिया। जब मैं वहाँ से चली, मैंने स्थविर जी के शिष्य से पूछा कि महाराज ने आँखो पर परदा क्या कर लिया। शिष्य ने बताया, "स्थविर नारियो को देखने से परहेज करते है। यह बात मुझे अच्छी न लगी। अतएव, मैंने निश्चय किया कि ऐसे दुर्बल को गुरु बनाने से कोई लाभ नही है।

"इसके बाद मैं गाँधी जी से मिली। उन्होने कहा, लडकियो को पढाने का काम तुम्हे खुद करना चाहिए। इसलिए, एम० ए० करते ही मैंने महिला विद्यापीठ का काम शुरू कर दिया।

"मेरे पति डाक्टरी पढते थे। उन्होने कई बार चाहा कि हम लोग साथ रहे।

लेकिन यह बात मेरे मन में थी ही नहीं। मैं ने उनसे कहा कि गृहस्थ-जीवन की ओर मेरी थोड़ी भी प्रवृत्ति नहीं है, अतएव, मैं आपके साथ कभी भी नहीं रह सकूंगी। मैं ने कई बार उन्हें यह भी समझाया कि वे अपना दूसरा विवाह कर लें। लेकिन दूसरा विवाह उन्होंने नहीं किया। वे गोरखपुर में रहते हैं।"

महादेवी जी के छात्र जीवन की कुछ थोड़ी जानकारी मुझे एक दिन श्रीमती सावित्री जी से मिली थी। सावित्री जी लखनऊ के विख्यात सर्जन डाक्टर जानकी प्रसाद की विधवा पत्नी हैं और स्कूल में वे महादेवी जी के साथ पढ़ती थी। उन्होंने बताया कि "महादेवी जी जब पाँचवीं या छठी कक्षा में नाम लिखाने को आयी थीं, तब वे पैंट, कमीज और टाई में थीं। पिता, शायद पुत्र-भाव के कारण, बेटियों को बेटों की तरह रखना चाहते थे। किन्तु, शीघ्र ही वे सादगी पर उतर आयीं यानी होश सँभालते ही उन्हें रंगों से विरक्ति हो गयी। वे सादी पोशाक में रहने लगीं।"

सावित्री जी ने यह भी कहा कि "स्कूल और छात्रावास में महादेवी जी किसी से भी ज्यादा नहीं बोलती थीं। वे गुमसुम बैठी अपनी पुस्तकों में लगी रहती थीं। स्वर्गीय पं० श्रीधर जी की पुत्री श्रीमती ललिता पाठक से उनका विशेष मेलजोल था और उनके साथ महादेवी जी का पत्राचार भी चलता था।"

छात्रावास में महादेवी जी अपने कमरे में कृष्ण जी की मूर्ति रखा करती थीं। उनकी प्रवृत्ति आरम्भ से ही धार्मिक थी। स्कूल में उनका जीवन बाल भगतिन का जीवन था। सावित्री जी ने मुझ से यह भी कहा कि "महादेवी जी की माँ फारसी जानती थीं और सूफी कविताएँ उन्हें बहुत सी याद थीं।"

मैं ने सावित्री जी से भी महादेवी जी के बारे में खोद कर ज्यादा कुछ नहीं पूछा, किन्तु, विवाह के बारे में बात चलने पर सावित्री जी ने कहा, "विवाहित जीवन के प्रति विरक्ति होने के कारण महादेवी ने अपने पति डाक्टर स्वरूपनारायण को कभी भी अपने जीवन में आने नहीं दिया। डाक्टर साहब जब मिलने को हास्टल में आते, महादेवी तब भी उनसे नहीं मिलती थीं। वे कभी कभी अपनी सहपाठिनों से यह भी कह देती थी, इनसे मुझे मुक्ति ही दिलवाओ। छात्रावास में महादेवी जी का बड़ा सम्मान था।"

अपने स्कूल में वे अत्यंत मेधाविनी समझी जाती थीं। एक बार कोई शिक्षक किसी श्लोक का ठीक ठीक अर्थ नहीं लगा सका। निदान, वह श्लोक महादेवी जी ने मँगवाया और उसका अर्थ लिख कर शिक्षक को भेज दिया। स्कूल के उत्सवों में गाये जाने को वे गीत भी लिखा करती थीं। सावित्री जी ने यह भी बताया कि एक बार उनके स्कूल में कवि-सम्मेलन हुआ था, जिसके अध्यक्ष श्री मैथिलीशरण गुप्त थे। उस सम्मेलन में महादेवी जी छात्रा के रूप में सम्मिलित हुई थीं, किन्तु, कविता उनकी किसी अन्य बालिका ने पढ़ी थी।

यह महादेवी जी के जीवन की संक्षिप्त भूमिका है। ध्यान देने की बात यह है कि

जो बात इस भूमिका में नहीं है, वह उनके जीवन से भी विलुप्त है। मेधा उनकी आरंभ से ही प्रखर थी और जो लोग महादेवी के काव्य में मेधा की विद्यमानता से प्रभावित नहीं होते, वे उनकी मेधा को गद्य में देखते हैं और मेधा जिन्हें उनके गद्य में नहीं मिलती, उन्हें महादेवी जी का भाषण सुनना चाहिए।

सभा-मंच से कविता पढ़ने का काम उन्हें शायद कभी भी रुचिकर नहीं रहा है। ऊपर एक प्रमाण आया ही है कि जब महादेवी जी कवि-सम्मेलन में पहले-पहले सम्मिलित हुई, उनकी कविता किसी और लड़की ने पढ़ी थी। लेकिन मुझे याद आता है कि सन् १९३५ ई० में जब हम लोग कलकत्ते से शान्ति-निकेतन गये थे, तब वहाँ भी एक साहित्यिक गोष्ठी में हम लोगों ने कविताएँ पढ़ी थीं। उस दिन महादेवी जी ने अपनी 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' नामक कविता पढ़ी थी। काव्य-पाठ उन्होंने नोगूची वाले कवि-सम्मेलन में भी किया था। नोगूची महादेवी जी को इतने पसन्द आये थे कि वे उनकी कविताओं के हिन्दी अनुवाद कई मास तक छपवाती रही थी।

गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भी दर्शन हम लोगों ने एक साथ ही किये थे। उस छोटे-से मिलन में सब से अधिक बातचीत पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने की थी। मुझे याद है कि जब हम लोग रवि बाबू से विदा ले कर लौट रहे थे, महादेवी जी ने कहा था, "अह, गुरुदेव से बुलवाना ठीक नहीं हुआ। उन्हें तो चुपचाप देखना चाहिए था।"

महादेवी जी हिन्दी के उन थोड़े-से साहित्यकारों में से हैं, जो प्रचलित वाद-विवाद में रस नहीं लेते, न मिलते ही नये या पुराने लेखकों पर फतवे देने लगते हैं। लेखकों के बारे में उनके वैयक्तिक मतों का पता लगाना एक तरह से असंभव कार्य है। जब कुरुक्षेत्र पहले पहल प्रकाशित हुआ था, उन्होंने मुझे बड़ा ही प्यारा पत्र लिखा था। मगर उसके बाद मेरी किसी किताब पर उन्होंने अपनी राय जाहिर की या नहीं, मुझे याद नहीं है। पुस्तक के बारे में विवाद अगर तेज हो जाय, तो महादेवी जी और भी अधिक मौन हो जायँगी, ऐसी मेरी धारणा है।

महादेवी जी में जो एक प्रकार की उदासीनता, गुम रहने का आग्रह, विवाद से बचने की प्रवृत्ति और सब को प्रसन्न रखने की चिंता है, वह है तो सब का सब गुण ही, मगर वह इतना प्रमुख क्यों है? उनकी हँसी इतनी निश्छल और सद्भावक होती है कि हम महादेवी जी को अपना अत्यंत निकटस्थ मान लेते हैं। किन्तु, यह निकटता इतनी सघन कभी नहीं होती कि आप व्यक्ति या ग्रन्थ विशेष के विषय में उनका मतामत जान सकें। उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं। एक वह जो हमारे सामने पड़ता है और जहाँ वे हँसती और किलकारती रहती हैं। और दूसरा वह जो बहुत आन्तरिक है, जहाँ उनका हृदय अशोक-वासिनी सीता के समान कैद है। मैं ने इस दरवाजे पर दस्तक तो दी है, मगर, उसे खुलते नहीं देखा है।

. . .   .

एक करुण अभाव मे

चिर तृप्ति का ससार सचित ।

राजा जी (राजगोपालाचारी) का अनुमान है कि आदिकवि ने मूलतः रामकथा वही समाप्त की होगी जहाँ राम का राज्याभिषेक होता है । राम ने सीता का परित्याग किया, यह मूलकथा मे नही रहा होगा । वह प्रक्षिप्त अंश है । किन्तु, भारत में नारियों पर जो अत्याचार होते रहे, उन्हे प्रतीक का रूप देने को सीतावनवास की कथा गढ दी गयी और लोगों ने उसे इतना सत्य मान लिया कि वह मूल कथा का ही अश बन गयी ।

भारतीय नारी की करुण स्थिति महादेवी जी को अत्यत निकट से अनुभूत हुई है-- अनुभूत नही हुई, कन्यावध की परिपाटी और विवाह की विडवना के भीतर से वह स्थिति महादेवी जी के रग-रेशे से हो कर गुजरी । कन्या-शिक्षा का प्रचार करके उन्होने इस स्थिति का मुकाबला किया है । किन्तु, कविता के भीतर उन्होने इस स्थिति से हार कर औरतो की बदकिस्मती का रोना रोया है । महादेवी जी के आँसू भारत की सभी नारियो के आँसू हैं । उनका दु खो को ही सुख मानने का भाव, भारत की परपराप्रिय नारियो का भाव है जो जीवित इसलिए रही है कि वे विपत्तियो से समझौता करना जानती थी, उन्हे अपना भाग्य समझ कर भोगना जानती थी ।

विचित्र विचार रखती हैं, अत. जब नागरी लिपि में उर्दू मासिक पत्रिका 'डगर' का उद्‌घाटन समारोह हुआ और उसके सम्पादक जाफर रज़ा साहब ने महादेवी जी से उद्‌घाटन समारोह की अध्यक्षता के लिए अनुमति प्राप्त कर ली तो मुझे आश्चर्य हुआ। और इस समारोह मे सम्मिलित होते हुए सबसे अधिक कौतूहल इस बात का था कि देखें, ऐसे अवसर पर वह उर्दू-साहित्य के इस अच्छे संकलन को देखने के बाद उर्दू के बारे मे क्या कहती है। वह इस समारोह में पंत जी, फिराक साहब और एजाज साहब वगैरह के साथ सम्मिलित हुईं। अपनी बारी पर उन्होने बडी स्पष्टता से अपने विचार रखे। जैसे-जैसे वह बोलती जाती थीं मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि यदि सभी हिंदी के अच्छे लेखक और कवि उदारता से ऐसे ही विचार प्रकट करे तो बडी आसानी से दोनो भाषाओ का कल्याण हो सकता है। उस दिन उन्होंने कहा था कि उर्दू और हिंदी दोनो बहनें है और उन्हे इसी रूप में देखना चाहिए। वह एक दूसरे से अलग भी हैं और बहनो सा मेल-जोल भी रखती है। महादेवी जी ने उर्दू साहित्यकारो और लेखको को उदारतापूर्वक सराहा और इस बात पर जोर दिया कि हिंदी पढने वाले उर्दू के अच्छे साहित्य से लाभ उठाएँ। मुझे नही मालूम कि महादेवी जी ने उर्दू-हिंदी के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कही अपने विचारो को व्यक्त किया है या नही, किन्तु यदि उनकी इतनी ही बात को सामने रखकर हिन्दी-उर्दू के लेखक एक-दूसरे के करीब जाएँ और दोनो भाषाओ के बडे लेखको और कवियो के ऐसे ही आशीर्वाद प्राप्त करें तो दोनो तरफ के कुछ लोगो ने जो वैमनस्य फैला रखा है वह बहुत-कुछ दूर हो सकता है।

महादेवी जी केवल हिंदी जगत के लिए नही, पूरे भारतीय साहित्य के लिए आदर्श प्रतीक है, उनकी रचनाएँ दुख-दर्द में समोए हुए उस प्रेम का आलेखन करती हैं जो व्यक्ति और समाज दोनो को जीवित रखने के लिए आवश्यक है। भारतीय दर्शनशास्त्र, संस्कृति और जीवन के गहरे अध्ययन ने उनकी रचनाओ मे जो विचारधारा प्रस्तुत की है, उसको केवल भक्तिकाल की उपलब्धि समझना या केवल स्वप्न-लोक का छायावादी आदर्श बताना उचित न होगा क्योकि उन्होंने इस युग के भारत की पीडा का भी अनुभव किया है और अतीत के उन उदार विचारो से प्रकाश ग्रहण करके उन्हे आज की चेतना से सम्बद्ध भी किया है। यह बातें उनकी कविताओ के अतिरिक्त उनके चित्रो, लेखो और भाषणो में भी परिलक्षित होती है।

मैं यह तो नही कह सकता कि मैंने उनकी रचनाओं का अध्ययन ठीक से किया है या उनके विचारो के सभी पहलुओं को समझा है किंतु इतना कहने में मुझे कोई संकोच नही है कि उन्हें सम्मानित करने में हम उन अच्छे आदर्शो को सम्मानित करते है जो प्रेम, सौंदय, और सहानुभूति को प्रोत्साहन देते है। इस अवर पर मैं बडे हर्ष से सम्मान-कर्ताओ मे सम्मिलित होकर महादेवी जी का अभिनन्दन करता हूँ और दुआ करता हूँ कि वह बहुत दिनो तक इसी प्रकार भारतीय साहित्य और चिन्तन को समृद्ध करती रहें।

एक सबल व्यक्तित्व

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा को वर्तमान युग के आलोचकों ने मीरा के समकक्ष रखकर महादेवी वर्मा के साथ अन्याय किया है, मेरा कुछ ऐसा मत है। भक्ति-भावना और तन्मयता में बहुत सम्भव है मीरा के साथ महादेवीजी की तुलना महादेवीजी के लिए गौरव की बात मानी जाये, पर जहाँ तक कला की उत्कृष्टता का प्रश्न है, महादेवी जी बहुत अधिक समर्थ और कुशल कलाकार हैं।

वर्तमान हिन्दी-कविता में महादेवी वर्मा का एक विशिष्ट स्थान है। भावना की कोमलता और शब्द-संगीत में महादेवी वर्मा वर्तमान हिन्दी-कविता में प्रेरणा के रूप में स्थित हैं। महादेवी के समकालीन कवियों को, और उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो बहुत सम्भव है भविष्य में अमर कलाकारों में अपना स्थान बना सकें, महादेवी वर्मा ने निश्चित रूप से बहुत अधिक प्रभावित किया है।

महादेवी वर्मा पर आज के बौद्धिक युग का प्रभाव कम-से-कम पड़ा है। दर्शन उनकी कविता का साधन है, साध्य नहीं है। महादेवी वर्मा की कविता शुद्ध रूप से भावनात्मक है, पर उनकी कविता में एक दार्शनिक आभिजात्य है। महादेवी की भावना शान्त, स्निग्ध और स्वच्छ है, उनकी भावना करुणा से ओत-प्रोत है, पर यह करुणा विवशता और असफलता की करुणा नहीं है, यह करुणा जीवन पर महादेवी के दृष्टिकोण की प्रतीक है।

वर्तमान कवियों में महादेवी वर्मा को ही मैं रहस्यवाद की सच्ची प्रतिनिधि के रूप में पाता हूँ। शुद्ध बौद्धिक रहस्यवाद की दुरूहता और जटिलता से उनकी कविता मुक्त है, उनके रहस्यवाद में मन को खटकने वाली उलझन नहीं है। महादेवी का रहस्यवाद भावनात्मक है, लेकिन यहाँ भी भावना की प्रखरता महादेवी के बौद्धिक कलाकार के संसर्ग में आकर लोप हो जाती है, कोमल संगीत के सृजन में ही यह भावना रत हो जाती है। कलाकार के बौद्धिक परिष्कार से युक्त उनका रहस्यवाद जीवन की समस्त सुंदरता के सृजन में प्रयत्नशील है। उनके रहस्य का प्रथम रस है करुणा। पर महादेवी की करुणा में रुदन नहीं है, हाहाकार नहीं है। वह करुणा भौतिक नहीं है, हमारे जीवन के संघर्षों में और निराशाओं में उस करुणा का स्रोत नहीं है।—वह करुणा शान्त और निर्मल जल के प्रवाह की भाँति है, वह करुणा नीरव और सहमी हुई वैशाख मास की उदास संध्या की भाँति चिन्तन और मनन से युक्त है।

—

महादेवी मे सबसे बडी बात यह है कि वह अपने वर्तमान से, अपनी परिस्थितियो स और अपनी कुण्ठाओ से ऊपर, बहुत ऊपर उठ सकती है। उनका उल्लसित और उन्मुक्त हास, जीवन के प्रति उनकी भावनामय आसक्ति और उनका असीम अनुराग—इन सबके साथ-साथ वे साहित्य में रहस्यवाद की महान साधिका के रूप में आती है ।

महादेवी वर्मा से मेरा परिचय कब हुआ और किन परिस्थितियो में हुआ, यह मुझे स्पष्ट याद नही है। पर इतना निश्चित है कि मेरे प्रयाग-विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जीवन मे, अर्थात् सन् १९२८ तक, मुझे महादेवी वर्मा के सम्बन्ध मे कोई ज्ञान नही था। उस समय साहित्य-क्षेत्र मे श्री सुमित्रानन्दन पत, श्री जयशकर प्रसाद, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का ही स्थान बन पाया था। अन्य कवियो में जिनसे मैं उस समय तक परिचित हो चुका था, श्री बालकृष्ण शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। सन् १९३० या १९३१ मे सम्भवत प्रयाग विश्वविद्यालय के किसी कवि सम्मेलन म मैंने महादेवी की कविता प्रथम बार सुनी थी। उस समय उनकी कविता ने मुझे प्रभावित नही किया था, यह मैं स्वीकार करता हूँ, और इसके साथ मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैं कुछ अपने मे ही केन्द्रित, दूसरा के प्रति उदासीन या उपेक्षा के भाव से युक्त, स्वय कविता के क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में प्रयत्नशील था, दूसरो की कविता की प्रशसा करने अथवा पसन्द करने की प्रवृत्ति उन दिनो मुझ मे नही थी।

श्रीमती महादेवी वर्मा से मेरा परिचय सभवत सन् १९३३ के आस पास हुआ, जब मैं वकालत छोडकर इलाहाबाद मे शुद्ध साहित्यकार की हैसियत से बस गया था। रामकुमार वर्मा तथा महादेवी वर्मा के साथ मैंने प्रयाग मे एक साहित्यिक-सस्था की स्थापना की, जिसका नाम तो मैं भूल गया हूँ लेकिन जिसके सम्बन्ध मे मुझे इतना याद है कि उसमें प्रयाग के प्राय सभी उठते हुए साहित्यकार सम्मिलित थे और वह नवीन युग का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रथम साहित्यिक सस्था थी। मुझे यह भी याद है कि उस सस्था से प्रेरित होकर ही डा० रामकुमार वर्मा ने बाद में बृहत्त्रयी के समकक्ष वर्मात्रयी की कल्पना की थी। बृहत्त्रयी की कल्पना कुछ प्राध्यापक की श्रेणी के आलोचको ने 'प्रसाद', 'पत' और 'निराला' को युग-प्रवर्त्तक मानकर की थी और यह बृहत्त्रयी की धारणा उन दिना तक व्याप्त हो गयी थी। डा० रामकुमार वर्मा स्वय प्राध्यापक थे और उनका वर्मात्रयी—महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा—की सृष्टि कर डालना स्वय में एक मौलिक काम था। इस वर्मात्रयी को उन्होंने लघुत्रयी का नाम दिया था। मुझे पता नही महादेवीजी को यह लघुत्रयी का शब्द कैसा लगा, लेकिन मुझे इस शब्द पर बहुत बडी आपत्ति थी।

महादेवी वर्मा से निकट और घनिष्ठ सम्पर्क मे आने के मौके मुझे बहुत कम मिले, लेकिन जितना भी मैं समय-समय पर उनके सम्बन्ध मे जान सका हूँ उससे मै इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि श्रीमती वर्मा का जीवन आन्तरिक सघर्षो से सयुक्त जीवन रहा है, उन्हें परिस्थितियो से लडना पडा है, और उन्होने परिस्थितियो पर विजय पायी है। हर जगह उन्हें

विरोध मिला है, लेकिन एक शक्तिशाली और निरन्तर कर्म के मार्ग पर रत महादेवी के व्यक्तित्व ने उस विरोध की उपेक्षा करते हुए सफलता प्राप्त की है। महादेवी वर्मा मे एक शक्तिशाली व्यक्तित्व है, उनके पास प्रखर बुद्धि है, और उनमें बहुत बडी प्रतिभा है। मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगा कि महादेवी वर्मा मे दो प्रकार के व्यक्तित्व है—एक जो जीवन के सघर्षों मे लगातार रत है। और दूसरा जो जीवन की कुरूपताओ से अनायास ही नाता तोडकर असीम करुणा और सौन्दर्य का सृजन करता है। महादेवी वर्मा का नाम मैं एक सफल साहित्यिक साधिका के रूप मे ले सकता हूँ।

प्रगतिशील आलोचको ने जिसे 'पलायनवाद' का नाम दिया है, वह उस युग के दो महान् कवियो में पूर्ण रूप से पाया जाता है, श्री जयशकर प्रसाद में और श्रीमती महादेवी वर्मा में। पर प्राचीन शास्त्रकारो के मत के अनुसार कुछ दिनो पहले तक (अब वह नारा निर्बल होकर शक्तिहीन होने लगा है) जो पलायनवाद कहलाता था, वही वास्तविक कला थी और इसी में रस की सृष्टि थी। जो लोग इस भौतिक जगत् को ही सत्य और नित्य मानते हैं, वे इससे, अपनी परिस्थितियो और सघर्षो से ऊपर उठकर स्वप्न और कल्पना-जगत मे विचरण करने को अपराध समझते हैं। प्रगतिवाद का दृष्टिकोण यथार्थवाद के रूप मे आज की नवीन प्रयोगवादी कविता मे प्रगतिवादी की आस्थाओ के विरोध के रूप में परिणत हो गया है क्योंकि मानव की विकृतियाँ और कुण्ठा भी तो उतने ही बडे सत्य हैं जितने उसके सघर्ष।

श्रीमती महादेवी वर्मा म दूसरो पर छा जानेवाला एक सबल व्यक्तित्व है, और इसी व्यक्तित्व मे उनकी कला की सफलता है। आखिर कला अपने व्यक्तित्व के आरोपण-तत्व से तो युक्त है ही। इसी सबल और अपने को आरोपित करनेवाले व्यक्तित्व के कारण महादेवी वर्मा ने सार्वजनिक जीवन को अपनाया है। उन्होंने दो महत्वपूर्ण सस्थाओ का निर्माण किया—प्रयाग महिला विद्यापीठ और हिन्दी साहित्यकार ससद्। आज के चेतन और विविधता से भरे युग में सस्थाओ में आतरिक सघर्ष अनिवार्य होते है। इसलिए इन सस्थाओ के वर्तमान रूप और उनकी वर्तमान गतिविधि से महादेवी के सार्वजनिक जीवन की सफलता और असफलता पर कुछ कह सकना कठिन है, यह निर्णय तो भविष्य देगा, पर इतना निश्चित है कि महादेवी मे एक सबल प्राण शक्ति है। जिसे वे उचित समझती हैं, उस पर अडकर दूसरो के प्रहार सहन करने की उनमें क्षमता है, जिसे वे अनुचित समझती है, उस पर प्रहार करने की उनमें शक्ति है। यही नहीं, इस सार्वजनिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए वे कभी-कभी नि सकोच समझौता भी कर सकती हैं।

राजनीति और भौतिक सम्पन्नता मे महादेवीजी केवल एक सीमा तक ही आगे बढ पायी, पूर्ण रूप से वे सफल नही हो सकी—इसका एकमात्र कारण है उनका भावना-प्रधान चेतन व्यक्तित्व। महादेवी वर्मा के पास उनकी निजी आस्थाएँ हैं, मान्यताएँ हैं। अपने इस भावनामय व्यक्तित्व और अपनी मान्यताओ तथा आस्थाओ के कारण ही वे साहित्य

जगत में साम्राज्ञी की भाँति स्थित हैं। राजनीति अथवा धन की दुनिया में वे किसी भी हालत में अपना ऊँचा स्थान नहीं बना सकती थीं। बहुत-से आलोचक महादेवी की कविता को उनके व्यक्तिगत जीवन की प्रतिक्रिया कहेंगे, पर मैं तो उनकी कविता तथा उनके व्यक्तिगत् जीवन को एक-दूसरे के पूरक अंग मानता हूँ। उनकी आधारमूल भावना जो परिस्थितियों से जकड़े हुए उनके जीवन के कर्म में अस्पष्ट-सी दिखती है, उनकी कविताओं में स्पष्ट हो जाती है। महादेवी वर्मा का आधारमूल व्यक्तित्व उनकी कविताओं में पाया जाता है,और, महादेवी वर्मा का आधारमूल व्यक्तित्व बहुत अधिक ऊँचा है, उदार है और कल्याण से युक्त है, यह उनकी कविताओं से सिद्ध हो जाता है।

महादेवी वर्मा संस्कृत की विदुषी हैं और इस संस्कृत के ज्ञान के कारण उनकी कविता और भी अधिक सुन्दर बन गयी है। वैसे संस्कृत के ज्ञान के कारण उनकी भाषा और शैली प्रसाद, निराला और कहीं-कहीं पंत की भाषा तथा शैली की ही भाँति दुरूह और अस्पष्ट हो गयी है, पर यह दुरूहता महादेवी के शब्द-संगीत तथा कल्पना की रंगीनी के कारण खटकती नहीं। मैंने ऐसे अनेक पाठकों को देखा है जो महादेवी जी वर्मा की कविता की, बिना उसका अर्थ समझे, पूजा करते है, जो केवल महादेवी के शब्द-संगीत से महादेवी की भावना में बहने लगते है, और यहाँ मैं सचमुच महादेवी की प्रतिमा के आगे झुक जाता हूँ। इससे मुझे कला की चरम उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। दूसरों की बात तो दूर रही, स्वयं मैं महादेवी के शब्द-संगीत और उनकी कल्पना के चित्रों में अपने को कभी-कभी खो देता हूँ।

महादेवी में, कुछ हद तक, एकरसता का दोष आरोपित किया जा सकता है, पर मैं इसे महादेवी का गुण मानता हूँ। जिस रस को उन्होंने प्रतिपादित किया है, उसमें उन्हें सफलता मिली है। और इसीलिए मैं उन्हें यह दोष भी नहीं देता कि उन्होंने बहुत कम कविताएँ लिखीं। अधिक लिखने में वह केवल पुनरावृत्ति ही कर सकती थीं।

महादेवी ने बहुत सुंदर गद्य भी लिखा है जिसमें पुनरावृत्ति के दोष से बच जाती हैं। उन्होंने पृथ्वीसूक्त, ऋग्वेद तथा कालिदास, अश्वघोष आदि का सुंदर अनुवाद किया है जो *अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।*

मेरा ऐसा अनुमान है कि महादेवी वर्मा जीवन के ऐसे अनुभवों के दौर से गुजर रही हैं कि भविष्य में वह कविता की अन्य दिशाओं में अपने को प्रस्फुटित करेंगी।

महादेवी वर्मा : निकट से

श्री इलाचन्द्र जोशी

प्राय सभी प्रतिभाशाली व्यक्तियो के जीवन और व्यक्तित्व के विभिन्न रूपो मे किसी-न किसी हद तक विरोधाभास पाया जाता है। पर कुछ प्रतिभाएँ ऐसी होती हैं जिनके जीवन की मूलगत विकास धारा ही इस विरोधाभास पर निर्भर करती है। उनकी नियति जैसे उनकी प्रकृति के परस्पर विरोधी तत्वो के बीच सुस्पष्ट और गाढ से गाढतर रेखा खीचती हुई, उनके व्यवधान की खाई को उत्तरोत्तर विस्तार देती चलती है।

महादेवी जी के साथ भी नियति जैसे प्रारभ से ही यही खेल खेलती चली गई है। यह विरोधाभास उनके नामकरण के समय से ही जैसे क्रमश उभरता चला गया है। 'महादेवी'—यह नाम प्रत्येक भारतीय के सस्कारगत मन से सहज ही जिस व्यक्तित्व के चित्र को उभारता है वह अन्तर्व्यक्तित्व के उन सान्द्र, सुकुमार और कोमल-कमनीय तत्वो से तनिक भी मेल नही खाता जिनकी आशा एक पूर्णत छायावादिनी कवयित्री से की जानी चाहिए। 'महादेवी' की ध्वनि उस महादेव से हमारे मन का सपर्क स्थापित कर देती है, जो शिवत्व का तत्त्व अपने भीतर सँजोये रहने पर भी, प्रकट मे रुद्र, श्मशानचारी भैक्ष्यचर और शूलधारी है। इसलिए 'महादेवी' शब्द प्रथम प्रतिक्रिया में महिषासुर-मर्दिनी, चण्डी और चामुण्डा के रूप की ही प्रतिकृति को मन में उभारता है। महादेवी जी शायद स्वय इस तत्व को सबसे अधिक महसूस करती है। वह चाहती तो अपना नाम काव्य-जीवन में प्रथम प्रवेश के साथ ही बदल सकती थी। पर उन्होने शायद जान-बूझकर इस नाम को कभी नही बदला—अपनी सूक्ष्म रोमाटिक सवेदना के बावजूद।

इसका कारण क्या हो सकता है? मैं अक्सर इस पर सोचता रहा हूँ—प्राय तीस वर्ष पहले जब एक दिन आपसी बातचीत के दौरान, किसी एक प्रसग मे महादेवी जी स्वय अपने नाम की खिल्ली उडाती हुई मुक्त भाव से हँस पडी थी। यह उस युग की बात है जब हमारे साहित्याकाश मे छायावादी प्रवृत्ति (अर्थात् रोमाटिक सवेदना) सोलहो नही तो कम से कम पन्द्रह कलाओ के साथ चारा ओर अपनी उज्ज्वल छटा बिखेर रही थी। अपने नाम के प्रति उनके आत्मविश्वासपूर्ण आत्म-परिहास ने मेरे मन में यह धारणा बद्धमूल कर दी थी कि उन्होने सब-कुछ सोच-समझकर ही अपना नाम नहीं बदला। इस भावुकता के कारण नही कि वह नाम उनके माता-पिता की इच्छा से रखा गया है, वरन् अपनी स्वतत्र इच्छा से ही उन्होने यह शुभ नाम ज्यो का त्यो स्वीकार करके रहने दिया।

बात सम्वत सन् १९२४ की है। तब स्वर्गीय श्री रामरख सिंह सहगल प्रयाग के अहियापुर मोहल्ले में 'चाँद' को जमाने के प्रारम्भिक प्रयत्नों में जुटे हुए थे। मैं भी अपने आवारागर्दी के चक्करों के बीच एक दिन 'चाँद' के ही सिलसिले में उनके सम्पर्क में आ गया। तब वह 'चाँद' का पूरा सम्पादन-भार मुझे सौंप देने के लिए उत्सुक दिखाई देते थे।

उन्होंने एक दिन दो अप्रकाशित कविताएँ मुझे तभी दिखाई थीं। लेखिका के स्थान पर लिखा था 'महादेवी वर्मा'। सहगल जी ने बताया कि वह एक उदीयमान कवयित्री है, आयु सत्रह-अठारह बरस की है और कविताएँ बहुत अच्छी लिख लेती है।

मैंने दोनों कविताएँ उस समय बड़े ध्यान से पढ़ी थीं, पर अब मुझे न उन कविताओं की कोई पंक्ति याद है और न यह याद है कि ठीक किस विषय पर वे लिखी गयी थीं। पर इतना अवश्य याद है कि तत्कालीन हिन्दी संसार में धीरे-धीरे जमती हुई छायावादी शैली का उन पर निश्चित प्रभाव था। उसमें अन्तर-वेदना के किसी एक पहलू की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत प्रौढ़ रूप में हुई थी।

उस युग में नारियाँ बहुत कम लिखती थीं और नारियों के छद्मनाम से रचना करने वाले पुरुष कवियों की कोई कमी नहीं थी। अतएव अकस्मात् दो सुन्दर काव्य-रचनाएँ पढ़कर मेरे मन में सन्देह हुआ कि इतनी कम आयु में कोई लड़की कैसे ऐसी प्रौढ़ कविताएँ लिख सकती है। और फिर 'महादेवी' नाम ने मेरे मन में एक विरोध-भावना पैदा की। मैंने सोचा कि ऐसी पौराणिक नारी नवीन प्रवृत्तियों को कैसे अपना सकती है!

उसके बाद एक लम्बा अर्सा बीत जाने पर, मैंने पाया कि महादेवी जी की कविताओं की चर्चा हिन्दी जगत में दिन-पर-दिन गंभीर-से गंभीरतर रूप में होती चली जा रही है। मैं भी उदासीन न रह सका। 'नीहार' निकल चुका था। दो तीन बार पूरी पुस्तक पढ़ी। एक कवयित्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की मौलिकता और सृजनात्मक गंभीरता की छाप मन पर पड़ी। 'रश्मि' निकली, और फिर 'नीरजा'। उन्हें भी मैंने देखा। लगा कि हिन्दी की कवयित्री अपने सीमित परिवेश से बहुत दूर पंख पसार चुकी है।

उक्त पुस्तकों के प्रकाशन के समय मैं कलकत्ते में था। सन् १९३६ में मैं जब प्रयाग जाकर बसा, तब 'सान्ध्य-गीत' प्रकाशित हो ही रहा था। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की कई रचनाएँ प्रौढ़ अन्तरानुभूति के उस छोर को छू चुकी थीं, जहाँ सभी अभिव्यंजनाएँ विशुद्ध वाणी-रस में परिणत हो जाती हैं। और उसमें रचयित्री की चित्रकला का जो आकस्मिक परिचय मिला, वह तो अद्भुत था!

तभी पहली बार महादेवी जी के साक्षात् दर्शन मैंने किये। अन्तरलोक के विस्फोटक और विद्रोहमूलक स्वरों के बावजूद, जो सजल, सरस और संवेदनशील कमनीयता उनकी कविता में मैंने पायी थी, उसे ध्यान में रखते हुए उनके व्यक्तित्व का एक विशेष भावात्मक चित्र मैंने अपने मन में बना रखा था। वह उन्हें प्रत्यक्ष देखने पर मोम की तरह पिघलकर

बह गया। उसके स्थान पर, जो वास्तविक रूप मैंने देखा, उससे मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने देखा एक ऐसी सबला और परिपूर्ण रूप से जाग्रत नारी को, जो नारी के युग-युग से अवमानित जीवन के प्रतिशोध की चिनगारियों को अपने अन्तर्व्यक्तित्व में समाहित किये हुए हो। उन भीतरी ज्वालाकणो का सम्मिलित प्रकाश उनके बाहरी व्यक्तित्व को एक अपूर्व तेज से छाये हुए था।

उनके व्यक्तित्व मे मैंने एक आश्चर्यजनक आत्मविश्वास देखा, जो किसी भी परिस्थिति मे उनकी आत्म-निर्भरता को डिगने नही दे सकता था। उनकी प्रत्येक बात मे, प्रत्येक मुद्रा मे एक सहज अधिकार का भाव स्पष्ट हो उठता था। मैंने देखी—एक ऐसी नारी, जो स्वतत्र-चेता थी, जो पाश्चात्य सस्कृति से परिचित होने पर भी भारतीय सस्कृति की परम्परा को पूर्णत आत्मसात् कर चुकी थी। जीवन में पहली बार भारतीय नारीत्व के गौरवानुकूल एक आदर्श प्रतिमा के साक्षात् दर्शन करके मैं एक बिल्कुल ही बदली हुई धारणा लेकर लौट गया।

नारी अबला नही है, उसका जीवन केवल भावना-प्रधान नही है, बौद्धिक क्षेत्र मे भी वह पुरुषो की साधिकार बराबरी कर सकती है, वरन् उससे भी आगे बढ सकती है, जीवन में पहली बार मुझे प्रत्यक्ष रूप से इसका ज्ञान हुआ।

इसके बाद अक्सर महादेवी जी के दर्शन होते रहते थे। सन् १९३७ मे जब मेरा 'विजनवती' नामक कविता सग्रह छप रहा था, तब मैंने 'कवर' के चित्र के लिए महादेवी जी को कष्ट देने का निश्चय किया। उन्होने दो फूलो का एक ऐसा सुन्दर जोडा बना दिया कि सारी पुस्तक मे केवल वही एक चित्र प्रधान शोभा बन कर रह गया।

महादेवी जी के व्यक्तित्व की झलक अत्यत निकट से पाते रहने का सौभाग्य प्राप्त होने पर मैं उनके आगे अधिकाधिक ढीठ होता चला गया और अवसर पाते ही किसी-न-किसी गभीर साहित्यिक, सास्कृतिक अथवा सामाजिक विषय की चर्चा चलाते हुए एक विवाद खडा कर बैठता। और तब जो उद्गार इस घोर भावुक तथापि घोरतर यथार्थ-वादिनी, अतिशय भावना-प्राण तथापि गहन बुद्धिवादिनी कवयित्री के भावोद्दीप्त अतर स निकल पडते थे, वे ज्ञानियों की भी आँखो मे अजन लगाने वाले होते थे।

मैंने देखा कि इस विद्रोहिणी और स्वतत्र-चेता नारी को आत्मरत पुरुष-समाज कभी क्षमा नही करेगा और जीवन भर उसे बाहर से विरोध, द्वद्व और सघर्ष का सामना करना पडेगा।

'साध्य गीत' के बाद 'दीपशिखा' आयी, जिसमें महादेवी की चित्रकला की बारीकियाँ और अधिक निखार पा गयी। उनके गीत दिन-पर-दिन अधिकाधिक लोकप्रिय होते चले गये। 'दीप' के प्रतीक को उन्होने अतर की विविध भावनाओं के साथ सयोजित करके उसे इतने रूपो में सँवारा और सजोया कि सारा साहित्यिक वातावरण प्रकाश के पुलक-बिन्दुओं से जगमगा उठा।

पर महादेवी के जीवन का उद्देश्य केवल जीवन के अधकारमय पथ को आलोकित करना ही नही था। युग-युग से समाज की कठिन लौह-शृखला द्वारा जीवन की काल कोठरी में बँद नारी-समाज के प्रति उनकी जन्मजात सहानुभूति रही है। उन्होने अपने ही पराक्रम से स्वय अपनी शृखला तोडी थी। 'शृखला की कडियाँ' एक-एक करके गिनाकर उन्होने भारतीय नारी को अपनी दयनीय दासता और अवमानना की स्थिति से ऊपर उठने की प्रेरणा दी और आत्मरत पुरुष-समाज को ललकारा कि नारी को कठघरे मे बन्द रखने के अपने तथाकथित अधिकार को सिद्ध करे।

जब 'शृखला की कडियाँ' मे उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा रूप उभर कर सामने आया तब मेरे आगे 'महादेवी' नाम की पूर्ण सार्थकता दीपावली की तरह झिलमिलाते अक्षरो और यथार्थ के ज्वलत प्रतीक के रूप में उभर आयी।

पद्य की ही तरह गद्य के क्षेत्र में भी महादेवी की लेखनी के चमत्कार देखने को मिले। 'दीपशिखा' की भूमिका में उनकी आलोचनात्मक शैली, 'शृखला की कडियाँ' मे ज्वलत विद्रोहमूलक चेतना भरे सामाजिक उद्गार और 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' मे उनके सर्जनात्मक गद्य में घुले-मिले एक नये सवेदनात्मक साहित्यिक रस का परिचय हिन्दी-जगत ने पाया।

बगाल के अकाल के युग मे जब विदेशी शासको के प्रचड दमन-चक्र के आतक से सारा पुरुष-समाज कुठित बैठा हुआ था, तब इस चिर निर्भीक नारी ने 'बग दर्शन' नाम से विद्रोही स्वरो से मुखरित गद्य-पद्यमयी रचनाओ का एक सकलन प्रकाशित किया, जिसकी गूँज दूर-दूर तक सुनायी पडी।

इस प्रकार अल्पप्राण पुरुषो के पौरुष को धिक्कारने वाली एक रहस्यमयी नारी के अक्षय अन्त शक्ति स्रोत से निरतर प्रतिभा के नये-नये चमत्कार अभिव्यक्त होते चले जा रहे थे। केवल साहित्य समाज ही नहीं, उसके बाहर की भी जनता उन चमत्कारो को स्तब्ध दृष्टि से देख रही थी और उत्सुक कानो से उनकी चर्चा सुन रही थी।

सहसा भीतर के प्रचड विस्फोट ने उनके जीवन की धारा को एक नया मोड दे दिया। निराला एक लम्बे अर्से तक कुटिल-कठोर यथार्थ से प्राणपण से जूझते रहने के बाद परास्त हो चुके थे। एक महान् कवि और साहित्य-साधक के जीवन की उस परिणति ने महादेवी के मातृ-हृदय को झकझोर दिया। महादेवी ने साहित्यकार ससद् की योजना बनायी और उनके कर्मठ हाथो से वह जल्दी ही कार्यान्वित भी हो गयी।

साहित्यकार ससद ने निराला की क्या-क्या सेवाएँ प्रारभ से लेकर एक लम्बे अर्से तक की, उनका ठीक-ठीक लेखा जोखा इस लेख म सभव नहीं है। निराला ऐसी स्थिति को पहुँच गये थे कि उनके साक्ष्य का कोई महत्व नही रह गया था। पर व्यक्तिगत रूप से मुझे जो जानकारी है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि अकिंचन, किन्तु अवढरदानी निराला बीच मे काफी दिनो तक आर्थिक दान देने की चिता से मुक्त रहे।

साहित्यकार संसद ने केवल निराला की ही सेवा नहीं की, और भी अनेक साहित्यकारों की गुप्त आर्थिक सहायता की। पर उसमें भी बड़ा काम उसने यह किया कि उसने सार्वजनिक साहित्यिक अनुष्ठानों द्वारा व्यापक रूप से एक नयी साहित्यिक चेतना जगायी। साहित्यकार संसद् के तत्वावधान में कुछ ऐसे साहित्यकारों के अभिनन्दन हुए, जो उसके अधिकारी थे, पर जिन्हें उचित सार्वजनिक मान्यता तब तक मिली नहीं थी। आज तो साहित्यकारों का अभिनन्दन एक मजाक में परिणत हो गया है, पर साहित्यकार संसद ने उसे एक गंभीर गौरवमय रूप प्रदान किया था।

सबसे बड़ा काम, जो संसद ने किया वह यह था कि उसने भारत की विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों को कई बार बुलाकर एक ही मंच पर लाकर एकत्र कर दिया। जिस भावनात्मक एकता पर आज इतना अधिक बल दिया जा रहा है, उसका सूत्रपात पहले-पहल साहित्यकार संसद द्वारा ही हुआ।

पर एक संस्था से एकांतिक लगाव महादेवीजी की असाधारण सर्जनात्मिका प्रतिभा के लिए घातक सिद्ध होने लगा, भले ही एक महान् उद्देश्य उसके पीछे वर्तमान रहा हो। महादेवी जी का गतिशील, तेजस्वी व्यक्तित्व जैसे उस संस्था के मोह से जड़ीभूत होने लगा। सर्जनात्मक रचना-कार्य एक प्रकार से बिल्कुल स्थगित हो गया, ऊपर से दुनिया-भर के झंझट उन्होंने अपने ऊपर मोल ले लिये। तरह-तरह की निर्मूल और हास्यास्पद बातें इस संस्था को लेकर कही जाने लगी। पर महादेवी जी के सहज धैर्य और स्थैर्य की अमीमता देखकर मैं चकित था। वह अपना कर्तव्य-कर्म चुपचाप अपने ही ढंग से करती चली जा रही थी। उनके परम हितैषी भी जब उन पर व्यंग कसने लगे, तब भी वह रंचमात्र विचलित नहीं हुईं।

महादेवी जी के साथ केवल नाम का ही सामंजस्यपूर्ण विरोधाभास नहीं जुड़ा है, वरन् उनके कर्म-क्षेत्र में भी उसकी छाया-रेखाएँ सुस्पष्ट उभर उठी हैं। नियति ने, कर्म क्षेत्र में उतरने की प्रारंभिक अवस्था से ही, उनका संबंध एक महिला महाविद्यालय से जोड़ दिया। यह गठजोड़ा कोई आकस्मिक या अप्रत्याशित घटना नहीं थी। यह गठ-बंधन उनकी प्रतिभा और गौरव के ही अनुरूप और सहज-स्वाभाविक था। इस शिक्षा-संस्था ने देश के उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम की हजारों लाखों लड़कियों को हिन्दी शिक्षा के लिए प्रेरित किया।

पर प्रत्येक संस्था के मांगलिक आदर्शों के पीछे अर्थ (बल्कि अनर्थ) का भूत छिपा रहता है। इस संस्था में भी उस भूत का अदृश्य डेरा था। कुछ ही वर्षों के भीतर उस अदृश्य भूत ने दानवाकार रूप धारण कर लिया और उसके प्रबंधकों के बीच आर्थिक छीना-झपटी के फलस्वरूप आपस में ही विकट कशमकश शुरू हो गयी। महादेवीजी स्वभावत उस धक्कमधक्के की चोट और चपेट से बच न सकी। यदि महादेवी जी से कम साहस और कम आत्म-विश्वास वाली कोई दूसरी महिला उनके स्थान पर होती तो उस गुंडागर्दी से भाग खड़ी होती। पर महादेवी जी अपनी छायावादी अनुभूतियों के बावजूद, उस हंगामे के

बीच चट्टान की तरह अडिग जमी रही और मूलगत सामाजिक और वैधानिक अधिकारो के लिए उन उद्दण्ड पुरुषो से निरतर पूरी शक्ति से जूझती रही जिनका पेशा ही गुडागर्दी था और जो स्वभाव से ही भ्रष्टाचारी थे ।

प्राय पिछले पच्चीस वर्षों से महादेवी जी इस सस्था मे व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्राणपण मे प्रयत्नशील है, पर युग की स्वार्थ-लुब्ध, दुराग्रही और परिग्रही शक्तियाँ उन्हे इस दिशा में तनिक भी सफल नहीं होने देती। यह बात नही है कि महादेवी जी अपना अस्तित्व बनाये रखने के उद्देश्य से इस सस्था से चिपकी हो। वह स्वेच्छा से कभी उसके बधन से मुक्त हो गयी होती। पर उनके स्वभाव मे एक जिद है । अमागलिक, आततायी और अन्यायपूर्ण कुटिल शक्तियो से हार मानकर चुप बैठ जाना उन्होने कभी जाना ही नहीं—फिर चाहे उनसे जूझने मे उन्हे कैसी ही हानि क्यो न उठानी पडे । इसलिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर भी वह वहाँ जमी हुई हैं ।

मैं अक्सर सोचता हूँ कि यह सुदृढ और आन्तरिक कर्तव्यनिष्ठा, युग की उद्धत प्रवृत्तियों से जूझते रहने का यह अविचल धैर्य, सामर्थ्य और लगन—इतनी बडी अन्दरूनी इस्पाती ताक़त की जो प्रकृति-प्रदत्त देन इस महा-कवयित्री को प्राप्त है उसका उपयोग यदि किसी बडे कर्मक्षेत्र मे करने का सुयोग उन्हें मिला होता तो कितनी बडी और सार्थक सामाजिक क्राति, युगान्त की सन्ध्या के इस तूफानी वातावरण मे, दावानल की तरह देश के एक कोने से दूसरे कोने तक न फैल गयी होती—जिससे राष्ट्र की सामूहिक अवचेतना मे इतने युगा से जमा कूडा-कचरा राख होकर, नवीन युग की नयी प्रेरणाओ के लिए रास्ता एकदम साफ हो गया होता ।

पर ऐसा होना नही था । विरोधाभासो से पूर्ण महादेवी जी की नियति ही कुछ ऐसी रही है कि अपने कुसुम कोमल अन्तर की वज्र कठिन शक्ति को उन्हें आजीवन एक शिक्षा सस्था के अधिकारियो और भ्रष्टाचारी जन-नायको से जूझने में ही लगा देना पडा। इससे महादेवी जी के व्यक्तित्व की विशालता मे तनिक भी कमी न आयी—उसका सतुलन बराबर बना रहा। पर हानि हुई देश की और समाज की। यदि राष्ट्र का बहुमुखी विकास स्वाभाविक क्रम से चला होता तो महादेवी जी सहज ही देश के एक बहुत बडे महिला महा-विद्यालय की सर्वाधिकारिणी बन गयी होती, जिसके द्वारा सही अर्थो मे महिला-मगल की अनगिन प्रकाश-धाराएँ अधी गलिया मे भटकती हुई देश की जनता को सही दिशाओं की खोज के लिए आश्चर्यजनक सुविधाएँ प्रदान कर सकती थी।

पर इस बात का रोना आज किसके आगे रोया जाय ? अपनी पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार चलती रहने वाली चट्टानी नियति के आगे इसके लिए सिर पटकना जितना व्यर्थ है, उतना ही निरर्थक है उस कुटिल नियति के सासारिक प्रतिनिधियो को अपनी बात समझा पाना ।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इस बात से महादेवी जी के जन्म-जन्मान्तरीण व्यक्तित्व

के विकास क्रम मे तनिक भी अन्तर नही आया। वरन् इन सभी तुच्छ सघर्षों से उनका व्यक्तित्व निरतर सान पर चढता हुआ, निखरता चला गया है। क्रूर और अधी नियति यदि आगे कभी (इसी जन्म में या अगले जन्म में) उन्हें आदर्श क्षेत्र और उपयुक्त वातावरण प्रदान करने के 'मूड' में होगी तो वह जन-मन का और समाज का सौभाग्य होगा, अन्यथा यह महा-कवयित्री युग-युग से निर्धारित अपने अलक्ष्य और रहस्यमय लक्ष्य की ओर अकेले ही, निर्भीक और निर्भ्रान्ति साहस के साथ, बढती रहेगी।

एक और महत्वपूर्ण रूप है इस आत्म-परिपूर्ण नारी का। सामाजिक विधान से उन्होने पत्नी का पद तो पाया, पर पत्नीत्व के नियमित निर्वाह का सुयोग, सुविधा और प्रवृत्ति अपने अतर के सूनेपन की इस रानी को कभी प्राप्त न हो पायी। फिर भी वह सुयोग्य, सुअभ्यस्त और आदर्श गृहिणी हैं। उनका एक बहुत बडा परिवार है—मनुष्यो, पशुओ और पक्षियो का सयुक्त परिवार। इस विचित्र परिवार की प्रतिदिन की समुचित व्यवस्था का पूरा दायित्व अकेले उन्हीं पर है। और इस दायित्व को जिस सहजता और सुघडपन के साथ वह निभाती चली जाती है, वह अपने में एक स्वतत्र उपलब्धि है। आवश्यकता पडने पर वह अपने सिद्ध हाथो से सुरुचिपूर्ण भोजन भी स्वय बना लेती हैं और परोसती भी हैं। केवल भोजन के लिए ही नही, किसी भी काम के लिए वह किसी दूसरे व्यक्ति पर निर्भर नही करती। सब-कुछ स्वय देखती, परखती और सँजोती हैं। बाहर और भीतर के सघर्षों की तनिक भी आँच उनके इस मागलिक मातृत्व-वाले रूप मे नही आने पाती।

इतना मैं जान गया हूँ कि उनके स्वभाव की कुछ बातें अत्यत रहस्यमय हैं और यह रहस्यमयता अत तक उनके साथ लगी रहेगी। उस रहस्य का पर्दा चीरने के प्रयत्न बड-बडे लोगो ने किये, पर सब फेल कर गये। बडे-बडे कवियो, सिद्धाचार्यो और मनोविज्ञानवेत्ताओ ने उनके स्वभाव की इसी रहस्यमयता के कारण उनके सबध मे तरह-तरह के अनुमान लगाये, जिनके कारण तरह-तरह की गलतफहमियाँ उनके बारे मे जनता मे फैलती रही। पर उनके शात मुखमडल पर कभी क्षण-भर के लिए भी कोई शिकन नही आयी और अपने निर्धारित कर्तव्य-कर्मों में वह उसी सहज धैर्य से, सहज भाव से जुटी रहीं। चारो ओर से विचित्र आक्षेपों के जो तीर समय-समय पर उन पर छोडे जाते रहे, उनके रक्त-रजित घाव उनके मानसिक शरीर पर नव-वसत के पलाश की तरह शोभित होते रहे।

उनकी साहित्य-सर्जना लिखित रूप में यद्यपि प्राय स्थगित सी हो गयी है, पर उनकी वाणी अत्यत विकसित हो गयी है, जिसके माध्यम से साहित्य का सर्जनात्मक कार्य जनता के बीच निरतर होता चला जा रहा है। जीवन और जगत् से सबधित गहनतम विषयो पर जैसा भाषण महादेवी जी देती है, वह विश्व-नारी इतिहास में अभूतपूर्व है। विशुद्ध वाणी का ऐसा विलास मैंने अपने जीवन में नारियो में तो क्या, पुरुषो मे भी, एक रवीन्द्रनाथ को छोडकर, कहीं नहीं सुना।

एक ही समय में इतना अधिक सम्मान और साथ ही इतनी अधिक अवमानना किसी दूसरी इतिहास-प्रसिद्ध नारी ने शायद ही पायी हो। महादेवी जी को आप कुछ कहिए, यह स्वीकार किये बिना आप नही रह सकते कि वह महान कवयित्री है (युग-युग के विश्व-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी), आप उन पर चाहे कैसे ही लाछन क्यो न लगायें, यह समव नही कि उपयुक्त समय पर उनके सम्मान मे आप पीछे हट सकें, युग-युगो के सास्कृतिक तत्वा के रासायनिक मिश्रणो से गढे गये उनके व्यक्तित्व के अतलगत रहस्य का पता लगाने की लाख कोशिशें करें, उनकी रहस्यमयता फिर भी अछूती रहेगी। महादेवी जी सबके साथ हैं, सबके बीच हैं, पर फिर भी हैं चिर-एकाकिनी, चिर-स्वतत्र और चिर-मुक्त। लगता है, युग-युगो तक, जन्म से जन्मान्तर तक यह रहस्यमयी नारी अपने पथ पर अकेले ही निरतर बढती चली जायगी। विश्व उसके पीछे पीछे चले, यह विश्व का सौभाग्य है, न चले तो उसको उसे तनिक भी परवाह नही है।

पर एक दिन विश्व को उसके पीछे चलना ही होगा—आज नही तो कल, कल नही तो परसो।

होली को इस कवयित्री ने जन्म लिया। जैसे यह प्रकृति की योजना के अनुसार ही हुआ। होली के छीटो से यह साहसिनी नारी कभी भयभीत नही हुई। उसके रगा को उसने सहज सवेदना और सहनशीलता के साथ वरण किया है। सहस्रो छीटो के बाद भी उसका आंचल बराबर सर्वसहा माता के हृदय की तरह शुभ्र और निर्मल रहा है। यह कर्मयोगिनी, जिसका अनुभूतिशील हृदय सहस्रो भाव-वेदनाओ के आघात से पीडित और असख्य रगमय रूपो और रसो के स्पर्श से सब समय स्पदित होते रहने पर भी, जीवन की घोर यथार्थता के प्रति कभी उदासीन नही रहा और जन जीवन के प्रति कठोर कर्त्तव्यो से कभी च्युत नही रहा, उसे, उसकी साठवी वर्षगाँठ के पुण्य अवसर पर, मैं श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ।

पर्यवेक्षण और निमन्त्रण

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

नाम के अनुरूप ही माननीया महादेवी जी के बाह्य प्रयास भी महा-महा है, उनके गीतसग्रहो के आकार प्रकार से लेकर विशाल आवास तक।—किन्तु उनकी लिखावट के अक्षर ओसबिन्दुओ से भी छोटे-छोटे है,* मानो बरौनियो की नोक से लिखे गये हो, आत्मा के सूक्ष्म आकार जैसे। ऐसा ही तो मैं भी एक कृशकाय-नन्हा सा जीव हूँ, सर्वथा अरक्षित और अनाथ। पहिले मैं अपने को इतना अकेला और बेचारा नही समझता था। २७ वर्ष पूर्व जब मैं प्रयाग मे नियमित रूप से रहता था तब जीवन के तूफानो मे भी अग जगत से परे अपने-आप मे उज्जीवित रहता था। तब केवल भावना का शिशु था। उस समय मेरी स्वर्गीया बहिन कल्पवती जीवित थी, उसी की ममता के आँचल मे से निर्मम ससार भी सुहावना लगता था। —उन्ही दिनो मैं महादेवी जी के यहाँ प्राय प्रतिदिन जाता रहता था। अन्यान्य परिचित-अपरिचित भी आते जाते रहते थे, उनमें निन्दक भी थे, बैठकी करने वाले भी थे, कामकाजी भी थे। महादेवी जी सबसे मिलती थी, किन्तु अपने सामाजिक सघर्ष मे अकेली थी। उनके लिए मुझमे मार्मिक सवेदना थी, किन्तु उन्हें अपनी भक्ति ही दे पाता था, असासारिक अथवा अव्यावहारिक होने के कारण शक्ति नही दे पाता था। वह छायावाद का युग था। छायावाद के अन्य समीक्षक उनसे दूर थे, मैं ही उनके निकट था। महादेवी जी का मुझ पर विश्वास था। अपनी 'नीरजा' देते हुए उन्होने कहा था, आप ही इसे ठीक से उपस्थित कर सकते है।

प्रयाग के उसी प्रवास-काल मे श्री गगाप्रसाद पाण्डेय से लीडर प्रेस की सीढियो पर अकस्मात परिचय हो गया। वे उस समय क्रिश्चियन कालेज के छात्र थे। वे कोठी स्टेट के गृह-सम्पन्न सुखी प्रजा थे, मैं उत्तर प्रदेश के एक निर्धन ग्रामीण परिवार का विपन्न कुमार था। मेरे और उनके वातावरण और स्वभाव मे पार्थक्य था, किन्तु साहित्य के माध्यम से गगा-यमुना की सगम भूमि प्रयाग मे हम लोगो का सम्मिलन हो गया था। वे मेरी आरम्भिक समीक्षा पुस्तक 'हमारे साहित्य निर्माता' पढ कर मेरी ओर उन्मुख हुए थे। उस समय साहित्यिका से उनके परिचय का क्षेत्र आज-जैसा विस्तृत नही था, अतएव, मुझसे उनका विशेष सम्पर्क हो गया। कविता वे पहिले से ही लिखते थे, बाद मे लेख भी लिखने लगे।

---

* दीपशिखा मे पाठको की सुविधा के लिए उन्होने अपने अक्षर बडे कर दिये हैं।

मुझसे कहते थे, कभी आपका 'बासविल' बनँगा। किन्तु मेरे सामने तो आजीविका की कठिन समस्या थी, साहित्यिक प्रसिद्ध अथवा कीर्ति की लालसा नहीं थी। पाण्डेय जी ने कोठी-नरेश से कुछ सहायता दिलायी थी, मैं आभारी था, किन्तु मुझमें-उनमें इतना स्वभाव-वैषम्य था कि मिलना-जुलना प्रायः विपण्ण हो जाता था। फिर भी भविष्य की शुभाशा से हम लोगों में मित्रता बनी रही।

मुझसे परिचय के थोड़े दिनों बाद ही पाण्डेय जी का महादेवी जी से भी परिचय हो गया। हम लोग देवी जी से मिलने साथ ही जाया करते थे। वहाँ भी पाण्डेय जी मुझ से मतभेद ही प्रकट करते थे। देवी जी को यह अच्छा नहीं लगता था। एक दिन कोठी-नरेश के मँझले भाई कुँवर राघवेन्द्र प्रताप जी से उन्होंने हँसते हुए कहा —ये शान्तिप्रिय को तंग करते हैं। वास्तव में पाण्डेयजी अपने दबंग रियासती स्वभाव से विवश थे, नवयुवक कोठी-नरेश से ऐसे अन्तरंग थे कि उनके सामने भी अनुशासित नहीं रहते थे।

—मेरे लिये दयापूर्ण उलाहना देकर भी देवी जी पाण्डेय जी का नहीं रोक पातीं थीं, क्योंकि पाण्डेय जी के मतभेद में मूलतः मित्रता का ही भाव अंतर्हित रहता था।

प्रयाग में आजीविका का कोई सहारा नहीं मिलने के कारण मैं 'कमला' में काम करने के लिए सन् '३९ में काशी चला आया। साहित्य में प्रगतिवाद का युग आ गया था। 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी' (सन् '३८) से पन्त जी प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हो गये थे। छायावाद-युग में महादेवी जी का सौहार्द मैं पा सका था, पन्त जी उस युग में भी मुझ से अन्यमनस्क रहते थे, जिसके कारण पाण्डेय जी को ऐसा जान पड़ता था कि पन्त जी उपेक्षा करते हैं। बात वस्तुतः यह थी कि 'गुंजन'-काल में पन्त जी अपने-आप से भी अन्यमनस्क हो गये थे, उन्मन-उन्मन रहते थे। जैसे देवी जी सामाजिक शक्ति चाहतीं थीं वैसे ही पन्त जी भी सामाजिक सम्बल चाहते थे। इस दृष्टि से मैं उन लोगों के लिए अनुपयुक्त था। सबकी शक्ति निराला जी बन सकते थे, किन्तु वे विक्षिप्त हो गये थे, अपने-'आप' में टूट गये थे।

स्वयं शोषित निष्पीड़ित और अभावों से आक्रान्त होते हुए भी मुझ में छायावाद का मृदुल काव्य-संस्कार बना हुआ था। फलतः, प्रयाग में लिखी गयी अपनी पुस्तक 'संचारिणी' (सन् १९३९) में पन्त जी की प्रगतिवादी कविता के प्रति मतभेद और महादेवी जी की सांस्कृतिक चेतना के प्रति अपनी भावात्मक आस्था देकर काशी के लिए विदा हुआ था। उसमें मैंने लिखा था—

"पन्त के कवि में पहले उपभोग नहीं था, उत्सर्ग नहीं था, थी एक मुग्धता, एक नयन-सुख।

महादेवी की कविता उत्सर्ग को, निर्वाण का, त्याग को लेकर ही चली, पन्त की काव्य-दिशा (प्रगतिवाद) के अन्तिम छोर पर—मुग्धता और उपभोग्यता की सीमा का

अनिक्रमण कर। इसीलिए जब कि महादेवी के कवि को पीछे लौटने की जरूरत नही पडी, पन्त को आगे बढ कर मुग्धता से उपभोग्यता में आना पडा।

पन्त जी इतने सुकुमार रहे है कि वे सुख-सुषमा को भी भावना-जगत मे ही ग्रहण कर सकते है। भावना का अतिक्रम कर वे उसकी चरम सीमा (कल्पना) पर चले गये। जितना ही आगे गये उतना ही पीछे लौट भी पडे, भावना और कल्पना के बजाय वास्तविकता के स्थूल दर्शन (प्रगतिवाद) म आये। जिस वास्तविकता से विरत होकर कभी वे कल्पनाशील हुए थे, लौट कर उसी वास्तविकता की कल्पनाहीन कुरूपता पर असन्तोषी हो गये।

—यद्यपि प्रयाग के प्रवास काल मे पन्त जी से उदासीन हो गया था, महादेवी जी के प्रति प्रश्नोन्मुख हो गया था, तथापि ये कवि मेरे मन से निर्वासित नही हो गये थे, इनका मोह मुझसे नही छूट सका था। तब तक निरा भावुक ही था, पन्त और महादेवी को रक्त मांस के पार्थिव मनुष्य के रूप मे नही देख सका था, ये मुझे अतीन्द्रिय कवि-आत्मा जान पडते थे।

काशी आने पर मेरे अनुभवो का नया अध्याय आरम्भ हुआ। यहाँ आने के दो एक सप्ताह बाद ही संस्कृति और कला की देवी मेरी बहिन का बड़ी निःसहाय परिस्थिति मे देहावसान हो गया, मानो मेरे लिए छायावाद का भाव-जगत शून्य हो गया। मुझमे युगीन असन्तोष आ गया, मेरा असन्तोष 'युग और साहित्य' (सन् १९४१) मे प्रगतिवादी दृष्टि से व्यक्त हुआ। 'प्रसाद और कामायनी' शीर्षक लेख में सम्पन्न और कुलीनो के साहित्य के सम्बन्ध मे मैंने कहा है—"इस कोटि के कलाप्रेमियो में यदि करुणा है भी तो कल्पना, सौन्दर्य और प्रणय के महोत्सव में बखशिश के रूप म, जिसे करुणा का वास्तविक पात्र शायद ही पा सके।"

प्रगतिवाद की ओर उन्मुख होते हुए भी 'युग और साहित्य' मे मेरा दृष्टिकोण सर्वथा राजनीतिक नही हो गया, युग के साथ साहित्य के सम्पर्क से भाव, भाषा और शैली म संगीत अथवा साहित्यिक लालित्य बना रहा।

'युग और साहित्य' का अन्तिम लेख है—'पन्त और महादेवी'। यह लेख उस पुस्तक मे शायद सर्वोत्तम है। इसमें पन्त और महादेवी के कृतित्व से समरस होकर उनके क्रमिक काव्य विकास को एक लयात्मक प्रवाह में उपस्थित कर सका हूँ।

महादेवी जी प्रगतिवाद के पक्ष मे न उस समय थी, न अब हैं। उसे वे कविता के लिए उपयुक्त नही मानती। अपने काव्य-संग्रह, 'आधुनिक कवि' (सन् १९४०) की भूमिका म उन्होने कहा है—"विचारो के प्रचार और प्रसार के अनेक वैज्ञानिक साधनो से युक्त युग में, गद्य का उत्तरोत्तर परिष्कृत होता चलने वाला रूप रखते हुए हमें अपने केवल बौद्धिक निरूपणो और वाद-विशेष सम्बन्धी सिद्धान्तो के प्रतिपादन की आवश्यकता नही रही। चाणक्य की नीति वीणा पर गायी जा सकती है, परन्तु इस प्रकार वह न नीति की कोटि मे आ सकती है और न गीति की सीमा मे, इसे जान कर ही हम इस बुद्धिवादी युग को कुछ

दे सकगे।" —इस मन्तव्य पर मेरा वक्तव्य यह था—"चाणक्य की नीति भी अन्तरद्रवित होकर काव्य का रस बन सकती है। राष्ट्रीय कविताएँ राजनीतिक भावप्रवणता ही तो हैं।"

जैसा कि महादेवी जी ने कहा है, 'गद्य का उत्तरोत्तर परिष्कृत होता चलने वाला रूप रखते हुए हमें अपने केवल बौद्धिक निरूपणो और वादविशेष-सम्बन्धी सिद्धान्तो के प्रतिपादन की आवश्यकता नही रही', साहित्य से गीति ही नही, कविता भी परित्यक्त होती जा रही थी, प्रगतिवाद मे राजनीति गद्य की ही ओर जा रही थी। पन्त जी ने 'युगवाणी' को गीत-गद्य कहा है, गद्य के साथ गीत के कारण ही वह 'युगवाणी' होते हुए भी काव्य-मनोरम जान पडती थी, अब नयी कविता अथवा अकविता से गीत छूटता जा रहा है, गद्य एकच्छत्र होता जा रहा है। इससे जान पडता है कि जीवन इतना नीरस हो गया है कि युग कविता का नहीं रहा।

उस समय प्रगतिवाद के प्रति मेरा रुझान एक तात्कालिक उफान मात्र था। जीवन मे रसाभाव तो हो गया था, किन्तु पुन रसोद्रेक के लिए प्रगतिवाद म रचनात्मक साधना नही थी। मेरी रसानुरागिनी ग्रामीण आत्मा उस नैसर्गिक साधना की ओर एकोन्मुख हो गयी जिससे जीवन्त कर्म्मयोग से जीवन म पुन स्निग्धता और मधुरता का स्थायी रस-सचार हो सकता था। 'सामयिकी' (सन् १९४४) मे मैं गान्धीवाद से तन्निष्ठ हो गया। 'हिन्दी-साहित्य' शीर्षक विस्तृत लेख की परिसमाप्ति में मैंने गान्धी जी को अपनी श्रद्धाजलि इन शब्दो मे दी—"आज जब कि रुग्ण बापू कारा-मुक्त[1] होकर हमारे बीच म है (परमात्मा नीरोग और दीर्घायु करे), पीडित मानवता अपने ही उद्धार के लिए उसके प्रति शुभकामनापूर्वक प्रणत है—

दुख के दिव्य शिल्प प्रणाम !
इच्छाबद्ध, मुक्त प्रणाम !
नित साकार श्रेय प्रणाम ![2]

.

नानृत जयति सत्य, मा भै, जय ज्ञानज्योति तुमको प्रणाम !"[3]

इन उद्गारो से स्पष्ट हो जाता है कि आस्था की दिशा म पन्त और महादेवी समवेत कण्ठ हैं, अन्तर उनकी स्वरलिपियो (जीवन के रचनात्मक साधनो) मे है, यन्त्र और खादी-जैसा।

१—सन् बयालीस की नजरबंदी से कारामुक्त

२—महादेवी

३—पन्त

खादी केवल वस्त्र नही है। वैज्ञानिक अथवा यान्त्रिक कृत्रिमता के विपरीत यह पृथ्वी के साथ मनुष्य के सवेदनशील सम्बन्ध का सजीव एव स्वाभाविक जीवन-दर्शन है। अपनी नयी पुस्तक 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' (सन् १९६६) मे 'कामायनी के बाद' हिन्दी-काव्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए मैंने महादेवी जी को इन शब्दो मे निमन्त्रित किया है—"हमारी आशाभरी दृष्टि खादी के चन्द्रिकोज्ज्वल परिधान मे श्रीशारदा की भाँति सुशोभिता उन देवी महादेवी जी की ओर चली जाती है जिन्होंने अपने ऊर्ध्व लक्ष्य को पहिचानते रहने के लिए कभी अपने आपसे पूछा था 'रजकणा म खेलती किस विरज विधु की चाँदनी मैं !' महादेवी के गीतो में उसी विरज के लिए विरह-वेदना है। एक ही रस (विप्रलम्भ् शृगार) प्रधान है। किन्तु जिन रजकणा मे खेलती हुई वे विरहिणी चाँदनी हैं क्या उन रजकणो की कथा अपने काव्य मे नही देंगी ? वे वर्तमान दुर्दान्त युग की ओर देखकर कहती हैं 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आगयी परदेशिनी रे !' कामायनी की श्रद्धा भी तो ऐसी ही परदेशिनी थी। क्या महादेवी जी उसी की तरह अपने इस भू-प्रवास को जीवन्त और ज्योतिर्मय नही बना सकेंगी ?

जिस भूलोक मे वे परदेशिनी है उस भूलोक मे उन्होने बहुत कुछ देखा-समझा है। उसके दुख-सुख की कुछ कथा अपने ससमरणो में लिखी है। अब 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' के चित्र तथा अन्यान्य अप्रकाशित चित्र परदेशिनी का युग-निरीक्षण और युगीन समस्याओ में अपना समाधान चाहते हैं।

समय ने स्पष्ट कर दिया है कि युग-पीडित जगत का समाधान ऐहिक योगक्षेम अथवा दहिक क्षुत्क्षाम के कष्ट-निवारण से ही हो सकता है। भावादर्श तो अभीष्ट है, किन्तु उसका आधार ऐहिक-दैहिक ही हो सकता है।

कभी मैं छायावाद का भावक मात्र था, 'पथचिह्न' (सन् '४६) और 'धरातल' (सन् '४८) से उसे मैं प्राकृतिक ग्राम्य साधना के रूप मे भौतिक आधार पर उपस्थित करने लगा, छायावाद भी मेरे लिए देहात्मवाद हो गया। फिर भी आधुनिक यथार्थवादियो से भिन्न मैं प्रकृतिधर्म्मा देहात्मवादी हूँ। अपने नैसर्गिक रहन-सहन और अन्नप्राण एव कृषि-प्रधान ग्रामोद्योगो में क्या गान्धीवाद भी मूलत स्वस्थ देहात्मवाद नही है ?

अपने देहात्मवादी दृष्टिकोण से 'पद्मनाभिका' (सन् '५५) मे मैंने कहा है—'स्थूल रूप में दैहिक क्षुत्क्षाम की समस्या रक्त-मांस के उपार्जन और विसर्जन (आदान प्रदान) की समस्या है। —आहारादि अष्ट प्रवृत्तियाँ पशुओ मे भी हैं, मनुष्यों मे भी है। किन्तु वह कौन-सी विशेषता है जिसने मनुष्य को पशु से उच्च स्थान दे दिया ? वह है उसकी अतीन्द्रिय चेतना। अतीन्द्रिय क्या ? कवि 'नवीन' के शब्दा में 'घोर विषयासक्तिमय है अनासक्तिविधान'। क्षुत्क्षाम से रक्त-मांस के जिस स्वास्थ्य को हम साधते है, उसी स्वास्थ्य का स्वास्थ्य (सूक्ष्म विकास) है अतीन्द्रिय चेतना, जिसे हम सुरुचि, सौन्दर्य, सस्कृति, अध्यात्म इत्यादि के रूप मे पहिचानते आये हैं।'

छायावाद के बाद 'युगवाणी' से सर्वप्रथम पन्त जी का ध्यान रक्त-माँस की ओर गया। उन्होंने कहा—

ईश्वर है यह मांस, पूर्ण यह,
इसका होता नहीं विनाश

... ...

निर्म्मित करो मांस का जीवन,
जीवन-मांस करो निर्म्माण

कलाकारों से उन्होंने अनुरोध किया —

आज अखिल विज्ञान, ज्ञान को
रूप, गन्ध, रस में प्रकटाओ
आत्मा की निसीम मुक्ति को
भव की सीमा में बँधवाओ
जन की रक्त-मांस-इच्छा को
मधुर अन्न-फल में उपजाओ!

—यही इस अकालग्रस्त युग का भी आह्वान है। यह आह्वान कर्म्म की अपेक्षा रखता है, कर्म्म को ही वाणी बना देना चाहता है। सकर्म्मक रूप में यह छायावाद के नीरव भाषण का युग है।

यह सशक्त प्रतिमा

श्री ओंकार शरद

आज से सोलह साल पहले !

उस दिन आरा का रेल्वे स्टेशन गूंज उठा था। प्लेटफार्म, समस्त वातावरण, चतुर्दिक वायुमण्डल मुखरित था। बिहार की जनता उत्साह में डूबी थी। स्टेशन पर तिल धरने को भी जगह न थी।

राजनीतिक नेताओं के स्वागतार्थ इतनी भीड़ जुटती तो अनेक बार देखा है, पर किसी साहित्यकार के स्वागतार्थ इतना बड़ा जनसमूह शायद पहली बार ही जुटा था। आरा में हो रहे बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का उद्घाटन करने महादेवी जी गयी थीं।

हफ्तों पहले से समाचारपत्रों में महादेवी जी के आरा आगमन का प्रचार हो रहा था। उस दिन महादेवी जी के साथ ही मैं आरा गया था। शाम को अँधेरा गिरते गिरते आरा स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। स्टेशन की धुंधली रोशनी, उत्साहपूर्ण वातावरण और अपार जनसमूह। गाड़ी ठीक से रुकी भी न थी कि लोग इधर-उधर भागकर डिब्बों में महादेवी जी को खोजने लगे। कुछ लोग फुसफुसाकर एक दूसरे से पूछते—"कहाँ हैं, महादेवी जी ? नहीं आईं क्या ? नहीं आयेंगी तो सम्मेलन बेकार हो जायगा।"

तभी महादेवी जी एक डिब्बे से उतरीं। जनता में आशा व उल्लास के साथ-साथ जैसे तेजी की एक लहर दौड़ गई। मानो उस धुंधले प्रकाश में एकाएक कोई रोशनी कौंधी हो और सारी दिशाएँ हँस उठी हों। महादेवी जी को लोगों ने फूलों से, मालाओं से ढँक दिया। उनकी स्वाभाविक हँसी अमृत की वर्षा करने लगी। लोगों के कंठ से एकाएक, एक साथ फूट पड़ा—"महादेवी जी—जिन्दाबाद !"

सम्भवतः यह पहला ही अवसर था जब जनता ने अनुभव किया था कि साहित्यकार की जैजैकार, उसका सम्मान, जनता की अपनी जैजैकार व सम्मान है। फिर बिहार की साहित्यानुरागी जनता का क्या कहना ! साहित्यकारों को सम्मान देने में बिहारी जनता का कोई सानी नहीं।

मैंने यहीं नहीं, और भी कई अवसरों पर अनुभव किया है कि महादेवी जी जब कभी जनता के बीच होती है तो उनके बड़े भव्य दर्शन होते हैं। जैसे कोई स्नेह का समुद्र अपने में समेटे अमृत-वर्षा करता चले। या गंगा को अपने में समा लेने के लिए समुद्र की लहरें उठ उठें।

उसी सम्मेलन मे एक अप्रिय घटना घटी। और तब मैने देखा कि महादेवी जी सचमुच कितनी सरल, क्षमाशील, गभीर और महान है। किसी अप्रिय बात को शोभनीय बना देना तो कोई उनसे सीखे।

बात यो हुई। स्टेशन पर ही पता चल गया कि सम्मेलन के जिस उद्घाटन के लिए महादेवी जी यहाँ पधारी है, वह उद्घाटन समारोह तो दोपहर को दो बजे ही भारत सरकार के मत्री (तत्कालीन) श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी द्वारा सम्पन्न कराया जा चुका है। सूचना देने वाले से मैंने पूछा—"और महादेवी जी ?"

वह सकपकाया फिर बोला, "समय तो दो बजे का ही निश्चित था न! आप लोग तो अब साढे पांच बजे आये!"

मैं चुप रह गया। उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे, मेरे अनन्य श्री रामवृक्ष बेनीपुरी। मुझे लगा कि बेनीपुरी की जानकारी मे भी ऐसा अनर्थ कैसे समव हुआ? घोषणा की गई थी कि सम्मेलन का उद्घाटन करेंगी महादेवी जी और किया मुशी जी ने। मैं बेनीपुरी को खोजने लगा।

कुछ आवेश, कुछ आक्रोश और जाने कैसी घुटन से मैं बडी उलझन मे पड गया। महादेवी जी ने मुझे देखा तो मेरी परेशानी व मन स्थिति वे समझ गयी। पास बुलाकर हँसती हुई बोली, "तेरा मुँह क्यो फूल गया?"

मुझे अपना क्रोध व्यक्त करने का अवसर मिला, बोला, "जब मुशी जी को ही उद्घाटन करना था तो आप को क्यो बुलाया?"

मेरा प्रश्न सुनकर वे तनिक भी गभीर न हुईं। अजीब बात है! बल्कि मुक्त अट्टहास कर उठी। लगा जैसे मैंने कोई बडी मूर्खतापूर्ण बात कही है। मेरा समस्त आक्रोश जैसे बालू की दीवाल की तरह ढहता जा रहा है। यह गुबार बेकार है। वे बोली, "उद्घाटन का ठीका तो मैंने नही ले रखा! तू क्यो इतना बिगड रहा है। उनकी जैसी भी व्यवस्था रही हो, उन्होने किया। मुझे आना था सो मैं आ गयी।"

"सो सब ठीक है। आप इसे चाहे उनकी व्यवस्था या छोटी बात मानें पर मैं नही मानता। मैं अभी बेनीपुरी जी से पूछता हूँ!"

अपने ही बेटे को जैसे माँ पुचकारे, समझावे। वे बोली, "तू तो बडा जिद्दी है, झगडालू भी। देख, कही किसी से झगडा न कर बैठना। मैं तो तेरे ऐसे क्रोधी-स्वभाव से परिचित ही न थी। इसी डर से तो मैं बसत (भाई गगाप्रसाद पाण्डेय) को नही लायी।"

तब तक बेनीपुरी जी आ गए। और मैं उनसे उलझने लगा। तब उन्होने स्थिति बतलाई कि जाने कैसे प्रबधकों को यह सूचना मिली कि महादेवी जी नही आ रही हैं, इसी-लिए मुशी जी को बुला लिया गया। फिर तो बाद मे सब पता लग गया कि किसने, किसे, किस प्रकार, क्या सूचना दी। महादेवी जी ने तब जरा डाँट मिश्रित स्वर में मुझे आज्ञा दी—"अब इस बारे मे तुम कोई बात किसी से मत करना।"

मैं खामोश। मुँह सी लिया। क्रोध पी गया और सोचने लगा कि महादेवी जी के

स्थान पर इस समय कोई और होता तो जाने क्या मानता इस घटना को। पर यह महादेवी जी के हृदय की विशालता ही थी कि उन्होंने इतनी बडी बात को भी कुछ न माना और सीधे सभास्थल पर जाकर मच पर पहुँची और सीधे-सीधे विलम्ब से पहुचने के लिए क्षमा मांगी और उत्सव को आशीर्वाद देकर अमर बना दिया।

यह महादेवी जी का स्वभाव ही है कि कोई भी साहित्यिक आयोजन हो, उनका आशीर्वाद अवश्य मिलेगा। हर साहित्यिक उत्सव उनका अपना काम होता है।

यह है महादेवी जी का एक रूप। अब एक और तस्वीर देखिए। करणा की तस्वीर।

इससे भी बहुत पहले, १९४८ की बात है।

एक सुबह अखबार मे पढा कि हिन्दी-कोकिला, सुभद्राकुमारी चौहान की मोटर-दुर्घटना मे मृत्यु हो गयी। समस्त हिन्दी ससार पर सियापा छा गया। हर साहित्यिक का मन रोने-रोने को हो गया।

प० इलाचन्द्र जोशी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित 'सगम' मे मैं उनका सहयोगी था। 'सगम' मे एक विशेष लेख के साथ छपने के लिए सुभद्रा जी के चित्र की खोज होने लगी। मैं चित्र मांगने महादेवी जी के पास पहुँचा। उस दिन महादेवी जी को देखते ही मेरी आत्मा कांप उठी। उनकी आँखें बरस रही थी। आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थी। चेहरा फूल सा आया था। उनके पास केवल एक चित्र था। काफी पुराना। हिन्दी की दोनो महान् कवयित्रियां, सुभद्रा जी और महादेवी जी साथ-साथ बैठी थी।

मुझे चित्र देते समय महादेवी जी रो पडी, बोली, "देखो, सम्हालना। खोए नही।" फिर जैसे अपने से ही बुदबुदा कर बोली, "जीवन भर बेचारी सघर्षो में पिसी। अभी ही तो कुछ सम्हल पायी थी चिन्ता से, कि बेचारी चली गई।"

किसी मे क्या इतनी करुणा होगी जितनी महादेवी जी में मैंने उस दिन देखी। सचमुच लगा था जैसे उस दिन महादेवी जी की छाया खो गई थी।

यह तो रही, महादेवी जी के स्नेह की बात, सुभद्रा जी के प्रति। लेकिन मैंने देखा है कि जब भी कभी किसी साहित्यिक के यहां कोई विपत्ति आयी कि लगता है जैसे वह विपत्ति महादेवी जी पर ही आ गयी हो।

मुझे याद है। उन दिनो महादेवी जी अस्वस्थ थी। जब सुभद्रा जी की अस्थियां प्रयाग आयी थी, सगम मे प्रवाह के लिए तो स्टेशन से सगम तक, पांच मील से अधिक ही पैदल चलकर महादेवी जी ने अपने हाथो ही राख गगा मे प्रवाहित की थी।

कुछ इसी तरह का दृश्य उस दिन भी उपस्थित हो गया था जब पटना से शिव-पूजन जी की अस्थियाँ लेकर प्रवाह के लिए उनके पुत्र पधारे। सारा प्रबध अपने ऊपर स्वत ही उठा लिया महादेवी जी ने और सगम मे राख प्रवाहित कर के उनके पुत्र आनद व मगल से बोली, "देखो, कोई चिन्ता न करना। मैं हूँ, लिखते रहना। कोई भी जरूरत हो तो सूचना देना। शिव जी तो 'शिव' थे। तुम सबो को यों ही छोड कर चले गये।"

यह सब देख कर कभी-कभी लगता है जैसे सबो के दुख-दर्द का सारा ठीका ले रखा है महादेवी जी ने !

हां, साहित्य सेवियो के परिवार के सिवा उनका अपना और है ही कौन !

महादेवी जी का अपना कहा जाने वाला कोई परिवार या कुटुम्ब नही है। लेकिन जिन्हे महादेवी जी ने अपना सगा माना आज उनमें से अनेक उन्हें अकेला छोड कर चले गए हैं। महादेवी जी की करुणा की सीमा नही। सुभद्रा जी को बहन माना था। वे भी चली गयी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को अपना बडा—दद्दा—माना था, वे भी चले गए। और छ साल हुए, अनोखी बहिन का वह अनोखा भाई भी चला गया। वह निराला भाई। महादेवी जी के बन्धु महाप्राण निराला। वाह ! क्या दृश्य होता था जब हर साल नया कुरता पहन कर सिर पर पगड बांध कर निराला जी बहन महादेवी से राखी बंधवाने आया करते थे और अपनी समस्त विपन्नता व निर्धनता के बावजूद बहन के हाथ मे कुछ रखना न भूलते थे। तब निराला जी एक अपूर्व गौरव से फूल उठते थे और भाई की स्थिति से परिचिता बहन कितना सकुचा जाती थी। ऐसा भाई, ऐसी बहिन !

और निराला जी को खोकर उस दिन महादेवी जी स्तब्ध रह गई थी। जैसे पाषाण प्रतिमा, स्पदनहीन, जडवत्। ऐसे वज्रपात के लिए महादेवी जी तैयार न थी। उनकी ऐसी दशा देख कर लोगो ने उस दिन उन्हे बुलवाने की कितनी चेष्टा की थी कि कुछ बोल कर वे अपना जी हलका कर ले, पर महादेवी जी की वाणी जैसे जम गई थी। हाय ! दिल पर पत्थर रखकर, गगा किनारे बांध पर बेबस खडी, भाई की जलती चिता को कितनी करुण, कितनी बेबस, कितनी निरीह आंखो से वे देख रही थी। शायद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर पीडा आंखो के आंसू भी सुखा देती है ! क्या महादेवी जी की उस मूर्ति का चित्रण शब्दो मे किया जा सकता है ?

. साहित्य के जिस मदिर का निर्माण महादेवी जी करना चाहती थी, उसका कँगूरा ही उस दिन टूट गया था।

आज लगता है महादेवी जी अकेली खडी हैं। साहित्य धारा के बीच सरस्वती की प्रतिमा सी।

आज साठ के पास पहुँच कर भी महादेवी जी हिन्दी पर हो रहे हर प्रकार के सरकारी व गैरसरकारी प्रहारो को प्रस्तर मूर्ति सी सहती हैं। उनके कदम कही भी नहीं डगमगाते। क्या हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के लिए महादेवी जी की यह दृढ़ता ही एक बडा आश्वासन नही है ?

'तुम्हारी 'जिज्जी' बड़ी हठी हैं'

श्री गोपीकृष्ण गोपेश

'तुम्हारी 'जिज्जी' बड़ी हठी है। किसी का कोई परामर्श नहीं मानती उनका जीवन हम सब लोगों के लिए बहुत मूल्यवान है परन्तु, कोई वश नहीं चलता,...एक बार मोजेइक-फर्श पर गिर पड़ी एक बार दाँत टूट गया अब कुत्ते ने काट खाया है...'

यह बात मुझसे अभी उस दिन कही हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्य-साधक और यशस्वी आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने।

मैं दक्षिण-भारत के लम्बे किताब-महली दौरे से लौटा ही लौटा था खासी परेशानी हुई शाम को रिक्शा पकड़ा और अशोक-नगर पहुँचा कि 'जिज्जी' को यह क्या हुआ . वैसे भी वे एक अर्से से अस्वस्थ हैं

बँगले के अंदर पहुँचा और कमरे में 'विराजा' कि मेरे आने की सूचना पाकर 'जिज्जी' आई कोई पाँच मिनट में ही वैसे ही मुस्कान लिये होठों पर हाँ, दाहिने हाथ में पट्टी साफ नजर आई।

'जिज्जी' ने सदा की तरह हँसते हुये पूछा, 'तुम इतने दिनों से कहाँ थे, आखिर? मैं तो समझी कि तुम कहीं बाहर चले गये, किसी दूसरी नौकरी पर!' मैंने कहा—'यदि ऐसा होता तो आपको मालूम कैसे नहीं होता! मैं तो दौरे पर गया था और मैंने आनंद (गुजरात) से आपको पत्र भी लिखा था कि इस राखी पर प्रयाग में नहीं रहूँगा तो कलाई सूनी ही रहेगी सो, रहे, मगर मेरे कॉफी के दस रुपये सुरक्षित रखियेगा।'

महादेवी जी बोलीं—'नहीं, तुम्हारा कोई पत्र मुझे नहीं मिला (फिर, जरा जोर से हँसकर) वैसे मेरे पत्र तो गायब होते ही रहते हैं (फिर साथ के भाई देवेन्द्र मिश्र की ओर मुड़ी .) देखते हैं, कितना दुष्ट है ये दूसरे भाई राखी बँधवाते हैं तो बहिन को रुपये देते हैं, मगर यह उल्टे मुझसे रुपये लेता है' ..

अब मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—'लेकिन, यह क्या तोता पाल लिया आपने? शांतिप्रिय जी से आज ही मालूम हुआ कि आपको कुत्ते ने काट खाया है '

जिज्जी मुस्कराईं—'कुत्ते ने नहीं, कुतिया ने! बड़ी अलसेशियन कुतिया कजली से छोटी कुतिया चीना भिड़ [illegible] निकालने लगी चीना. जरा सोचो कि दुर्बल सबल पर आक्रमण करे [illegible] की नई पीढ़ी [illegible] इतनी छोटी तो है, मगर

इतने बडे से लड पडी। फिर क्या था, बडी ने पकड लिया उधर मैंने आव देखा, न ताव . मीना के जबडे मे अपना पूरा हाथ डाल दिया फिर तो उसके मुँह के दांत जो छूटे तो मेरे हाथ मे जा जमे और एक दांत नस को भेदता हुआ पार हो गया। हाथ से खून का फव्वारा फूट निकला। चीना ने जो देखा तो एकदम सन्न रह गयी और खूब रोई पास आकर कू-कू करने लगी मुझे इससे कष्ट हुआ और काफी कष्ट हुआ एक तो रक्तचाप का ही कष्ट रहता है कभी-कभी २००-२१० तक पहुँच जाता है अब यह हो गया तो क्या कहे, जो हो गया, सो हो गया (इस बीच मैं महादेवी जी के वाक्य नोट करने लगा तो जरा झटके से बोली–) मगर, यह क्या कर रहे हो तुम ?' . मैंने जवाब दिया—'मैं गुप्तचर हूँ, सरकार ने नियुक्त किया है ' 'जिज्जी' ने ठहाका लगाया—'तुम्हे पन्त जी' (श्री सुमित्रानदन जी पत) ने नियुक्त किया होगा सरकार कहाँ नियुक्त करने जायेगी ऐसे आदमी को ! ऐसा भी गुप्तचर होता है कोई जो आकर बता भी दे कि मैं गुप्तचर हूँ !'..

और, फिर तमाम दूसरी चर्चाएँ होती रही कि इसी बीच बदस्तूर चाय भी आई और गुलाब जामुनें, नमकीन, केले और सेब भी और, 'जिज्जी' ने उसी पट्टी बँधे हाथ से प्लेट मे सारा कुछ रक्खा और हम सब को दिया..

बीच मे दक्षिण के सुप्रसिद्ध हिंदी विद्वान, केन्द्रीय हिंदी-निदेशालय के निदेशक प्रोफेसर चद्रहासन जी के प्रयाग आने और उनसे आकर मिलने की चर्चा चलाते हुए जिज्जी बोलीं— 'चद्रहासन जी खुद ही दौडते है, वरना तो काम बारह साल मे भी न हो फिर भी काम नहीं होता बेचारे हिंदी का झडा उठाये घूमते है हम तो झडा उठाकर भी नहीं घूम पाते हम तो अपनी ही हीन-भावना से ग्रस्त हैं..

और, इस तरह डेढ-पौने दो घटे गुजर गये तो मुझे लगा कि ऐसी हालत मे भी बहुत कष्ट दिया 'जिज्जी' को मैंने

मैंने बहुत भारी मन से विदा ली तो महादेवीजी हर दिन की तरह आज भी अपनी सीढिया तक पहुँचाने आई .

सोचता रहा मैं—नया नया नया नया पुराना पुराना वाह रे हमारा नया और वाह रे इन सब का पुराना !

और, इसके थोडे दिनों बाद ही कानपुर के अग्रजवर प्रोफेसर डॉ० श्रीनारायण जी अग्निहोत्री के साथ खडवा के नवोदित 'नये कवि' श्री श्रीकात जोशी प्रयाग आये . आये 'श्री माखनलाल चतुर्वेदी अभिनदन-ग्रथ' के सिलसिले मे 'किताब-महल' से बातें करने . मगर, दोनो बधुओ ने ही, समय कम होने पर भी, श्रीमती महादेवी वर्मा और प्रोफेसर फिराक से मिलने की उत्कट इच्छा प्रकट की..

सो, दूसरे दिन सुबह हम सब जिज्जी के यहाँ जा पहुँचे ४-५ आदमी . जिज्जी आई अतिथियो से परिचय मैंने कराया और कहा कि यह हैं नये-कवि श्री श्रीकात जोशी आप

इनसे परिचित अवश्य ही होंगी वडा नया और वडा दमदार लिखते हैं। जिज्जी ने हँसी से खिलते हुये कहा—'हाँ, यह भी तो नये हैं। नये तो हम सब पुरानों को बेहोश करने की तरकीब ढूँढते फिरते हैं, मगर, किसी मॉरफिया और किसी अनेस्थीसिया से हमारा होश नहीं जाता ये लोग चाहते हैं कि हम सभी पुराने किसी मंच पर खड़े होकर हार मान ले मगर, हमारे मानने से तो हार हो नहीं जाती हार तो युग मानेगा और, मजा देखो कि ये नये लडते भी पुरानों से ही हैं, और अपने को मनवाना भी उन्हीं से चाहते हैं चाहते हैं कि पुराने कहें कि यह सूझ हमारी नहीं है खैर, भाई, यह भी हमसे कहला लो, सीधे से तो कही। मगर, नहीं, ये लोग यहाँ चुटकी काटेंगे, वहाँ पिन चुभोयेंगे बस, ये तो यह चाहते हैं कि बडा चैन से बैठ न पाये। (और, फिर और जोर से हँसकर) ये ढग कलाकार के बनाये फिरते हैं इनका रोब जमे और चाहे न जमे हम कहते हैं—अच्छा, ठीक है, आप रोब जमाइये, लेकिन दूसरो पर जमाइये। परन्तु, ये रोब हम पर ही जमाते हैं, क्योंकि इनका रोब हम पर ही जम सकता है।'

और, हास से सारा कक्ष गूँज गया इसी बीच श्रीकांत जी ने 'दादा' यानी माखनलाल जी चतुर्वेदी का मोह 'जिज्जी' को दिया और अभिनंदन ग्रंथ के लिये लेख की माँग क्या की, तकाजा किया। जिज्जी ने कहा—'हमारा तो ऐसा है कि हाथ मे कारीगर के जैसे औजार न हो आप ही बतलाइये कि मेरे हाथ म कलम न हो तो मैं क्या करूँ! सो, मेरे हाथ की हालत तो आप देख ही रहे हैं अभी कलम पकड नहीं सकती। दूसरे, हम चाहते हैं कि अच्छा दे, और अच्छा इकट्ठा करना पडेगा, खोजना पडेगा वैसे तो हम दुनियाँ भर मे बोलते फिरते हैं, मगर भुलक्कड आदमी हैं, सब कुछ भूल जाते हैं यानी, याद भर से काम नहीं चलेगा जरा हाथ ठीक हो जाये, लेख मैं भेज दूँगी या इस, गोपेश से कह जाओ तो यह तो मुझसे वसूल ही लेगा!

और, इसके साथ ही जाने कैसे और कहाँ से साहित्यकारों को मिलनेवाले विशेष पुरस्कारो पर बात आ गई। महादेवी जी जरा गम्भीर होते हुये बोली—'इन पुरस्कारों से हम साहित्यकारों के स्वाभिमान को बहुत आघात पहुँचता है वैसे भी कौन-सा बडा आत्म-सम्मान है हम सब मे! जिस युग मे कोई पुरस्कार नहीं, दड मिलता था, उस समय कुछ लगता था, मगर, अब तो हम बेचते हैं, उससे सम्मान नहीं होता। साहित्य से समझौता और आजीविका चाहिये तो, कुछ होता जाता नहीं आज हमारा सिपाही इस तरह तनकर खडा होता है, इसलिए कि उसने इतना बडा मूल्य दिया है, उसके कितने ही साथी मर चुके हैं आंधी-अंधड पत्तियों का सच्चा इम्तहान लेते हैं जिस पत्ती मे ऊपर ठहरने की ताब नहीं होती, वह नीचे गिर जाती है।'

इस पर हमम से किसी ने युग की और युग की अपनी सीमाओ की दोहाई दी तो 'जिज्जी' ने बात जैसे कि आसान कर दी—'बात यह है कि जो कुछ बहुत समय से नहीं मिला है, आज उसी का प्रश्न है। चुनाव के टिकिट को ही लो—इस टिकिट के लिये लोग कितना

लड रहे हैं ! हमारे यहाँ अभाव बहुत है चिनगारियाँ बुझी नही हैं, सुलग रही हैं जीवन की साधारण सुविधाएँ नही मिलती, इसीलिये हर ओर यह अपाधापी है, यह बेईमानी है लोग मेरे पास आते है कि बहिन जी, आप 'सर्टिफाई' कर दीजिये कि हम 'पुलिटिकल-सफरर हैं—कभी अण्डरग्राउड थे।' मैं कहती हूँ—'भाई, तुम कहाँ थे ? किस ग्राउड के अन्दर थे ?' सामने का व्यक्ति घबडा जाता है—'बहिन जी, था तो सचमुच कही नही, पर, आप दस्तखत कर दीजिये।' अब आप क्या कीजियेगा, सम्मान-आदर की प्रतियोगिता है, उसके लिये लडाई है। दूसरी ओर, किसी ज्ञानी, किसी कलाकार, किसी साहित्यकार को सम्मान देने को आप तैयार नही निवृत्ति प्रवृत्ति के बाद आये तभी स्थायी होती है भीतर से अस्वीकार जिनके आये, ऐसे तो कम ही होते है।'

अब डॉक्टर श्रीनारायण जी अग्निहोत्री ने अपनी ओर से बात का समर्थन करते हुए विषय को थोडा मोड दिया तो महादेवी जी बोलीं—'जलते हुये स्फुलिंग पर खोल ओढा दीजिये, बुझ जायेगा खोल सोने का हो तो भी नीचे का दिया बुझ जायेगा हाँ, हीरा जरूर नही जलता '

ठीक इसी समय भाई श्रीकात द्वारा न्यौते फोटोग्राफर महोदय ने जालीवाला, स्प्रिंगदार दरवाजा खोला तो बात का तार सहसा ही टूटा। मैंने जिज्जी को श्रीकात भाई की पूरी योजना बताई कि आपके साथ हम सबका 'फोटू' होना है एक यहाँ कमरे में और दूसरा बाहर सो, 'फोटू' हुये .

खैर, तो, हम घूम फिरकर फिर कमरे मे आ-बैठे और इसके साथ ही (११ बजे के बाद भी) न सिर्फ चाय आई, बल्कि अच्छा खासा नाश्ता भी आया मैं कहता हूँ कि नाश्ता आ गया तो अच्छा ही हुआ, वरना अपनी तो हालत अवतर हो जाती, क्योकि बावन दड की एकादशी तीन बजे टूटती सचमुच खाना उस दिन करीब तीन बजे ही नसीब हुआ

मगर, इसमे कुछ नहीं यह तो हल्की फुल्की एक हँसी की बात रही वैसे उस 'नशिस्त' के क्या कहने हैं ! जिज्जी ने जाने कितने विषय छेडे .. डॉक्टर श्रीनारायण जी अग्निहोत्री के शब्दो मे 'बडी बहिन के घर छुट-भइयों की भीड लगी' तो जाने कितना स्नेह, कितने रूपों मे मिला हम सबको ! इसी सिलसिले में घूमते-फिरते चर्चा विधान-सभा की सदस्यता की चली। जिज्जी बोलीं—"मैंने विधान-सभा की सदस्यता का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कह दिया—आपको विदूषक चाहिये, कवि नही। मैं ऐसी मृत्यु का आलिंगन नही करना चाहती ! मुझे तो राज्य की धारासभा का अनुभव था न ! मैं जिन दिनों सदस्य थी, देखती थी कि लोग दस्तखत कर देते है, और बस ! उधर अधिवेशन हो रहा है, और इधर कुछ लोग धूप सेंक रहे हैं, और कुछ तेल की मालिश करा रहे हैं। इस पर मैं उन्हे टोकती तो पीछे लोग आपस मे कहते —'ओ महादेवी हैं न, इलाहाबाद से एक ईमानदारन आती हैं !' सचमुच लोग मुझे बडी गालियाँ देते !. एक मिनिस्टर साहब एक दिन बोले—'बहिन जी, आप बोलती अच्छा है, पर हमारे पल्ले कुछ नहीं पडता !' मैंने उत्तर दिया—'मैं अब तक विद्वत्समाज मे

बोलती रही हूँ, मैं क्या करूँ।'. जवाब में वे बोले—'आप हमारी पार्टी में आ जाइये।'. मैंने विनम्रता से कहा—'हम आप की पार्टी में आ जायेंगे, तो हमारे पास कहने को क्या रह जायेगा। .मगर, इसके दूसरे छोर पर हमारे 'दद्दा' (श्री मैथिलीशरण गुप्त) थे कि हम तो बोलते ही नहीं। मैं जवाब देती थी—'वह भी बुरी बात है। बोलने के लिए ही तो आपको वेतन मिलता है। हाँ, साहित्य को राजनीति में नहीं लाना चाहिये। हमारी तो जीवन-नीति है। हमारा पक्ष तो सत्य का पक्ष है, कहीं भी हो।'

इसके साथ ही न जाने कैसे मैंने जिज्जी को 'ब्रज-साहित्य-मंडल' के विशेष अधिवेशन और उसके तत्वावधान में होनेवाले कवि-सम्मेलन की याद दिलाई और साथ के सभी मित्रों को पूरी दास्तान सुना गया। हुआ यह था कि तब श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'चातक' ने जाने कैसे 'निराला जी' को और 'जिज्जी' को मैनपुरी जाने पर राजी कर लिया था। और, जब इतना हो गया, तो हम सब किस खेत की मूली रह गये। हम भी साथ ही चल दिये। फिर तो मैनपुरी में भाई-बहिन के उस अन्यतम जोड़े का जो स्वागत हुआ, वह कल्पना की ही बात है।

वहाँ निरालाजी और महादेवी जी राजा-साहब मैनपुरी के किले में टिकाये गये। दूसरे दिन राजा-साहब ने अधिवेशन के अध्यक्ष गवर्नर, श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी को दोपहर को दावत पर बुलाया, तो 'मुंशी जी' स्वयं निराला जी से मिलने उनके पास गये। यही नहीं, उन्होंने अपने ए० डी० सी० से जीने के पास कहा—'आप यहीं रहें इस समय गवर्नर मुंशी नहीं, प्रत्युत साहित्य का विद्यार्थी, उपन्यास-लेखक मुंशी महाकवि निराला से मिलने जा रहा है। .

जिज्जी ने कहा—'मुंशी जी अपने कार्य-काल में हम सबसे मिलना-जुलना बहुत चाहते थे, पर प्राय यह सम्भव हो नहीं पाता था, और कभी-कभी तो कष्टकर स्थिति भी पैदा हो जाती थी। एक बार ताकुला में साहित्यकारों का सम्मेलन हुआ तो मैंने मुंशी जी को भी निमंत्रित किया, पर यह नहीं चाहा कि हमारे साहित्यकार गवर्नर के चारों ओर के प्रभा-मंडल से दब जायें। मैंने उनसे कहा—'देखिये, हम अपने साहित्यकार-बन्धु मुंशी को निमंत्रित कर रहे हैं, गवर्नर-मुंशी को नहीं।'. उन्होंने उत्तर दिया—'मैं तो फिलहाल गवर्नर-मुंशी के रूप में ही आ सकता हूँ।' और, वे नहीं आये। बाद में उन्होंने साहित्यकारों को अपने यहाँ निमंत्रित किया तो मैं नहीं गई कि साहित्यकार-मुंशी तो मेरे अग्रज-बंधु हैं, पर राज्यपाल-मुंशी से मेरा क्या सम्बन्ध।'

मैंने कहा—'इस तरह के समझौते करती आप तो दिल्ली कभी की पहुँच गई होतीं। मैंने सुना था कि उस समय के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और पंडित जवाहरलाल जी बहुत चाहते थे कि आप पहुँच जायें राज्य-सभा में।'

'जिज्जी' ने बात का समर्थन किया—'हाँ, मुझ पर बहुत जोर डाला गया उस समय। दोनों ही मुझे बहुत मानते थे। राजेन्द्र बाबू तो सभी हिंदी वालों को बहुत ममता देते थे।

मेरा तो उनसे पारिवारिक सम्बन्ध था—बहुत पहले से था। राजेन्द्र बाबू जैसा व्यक्ति क्या कोई होगा! वे राष्ट्रपति हो गये, मगर न वे बदले और न (उनकी पत्नी) 'अउआ' (दादी) बदली। राजेन्द्र बाबू की बहिन तो अक्सर ही उनसे कहा करती—'एक जवाहिरलाल हैं कि अपनी बहिनी का ऐसा रक्खे है, और एक तू हौ कि अपनी बहिनी का ऐसे रक्से हो!' यही नहीं, राजेन्द्र बाबू का तो यह था कि (उनके सुपुत्र) मृत्युंजय बाबू या धनंजय बाबू कभी राष्ट्रपति-भवन में जाकर काफी दिन ठहर जाते तो वे उनसे कहते—'राष्ट्रपती हम हई कि तू अहा जाओ हिआं स!' और, 'अउआ' राष्ट्रपति-भवन मे रहीं, मगर उन्होंने समझा अपने को कभी कुछ नही। उनकी सादगी और सहजता ज्यो की त्यों बनी रही। एक बार मैं प्रयाग से दिल्ली जाने को हुई तो उनका आदेश मिला कि तुम आ रही हो तो बारह सूप लेती आना। . भला मै क्या करती! आदेश का पालन तो करना ही था। सो, बारह सूप खरिदवा मँगाये। आप कल्पना कीजिये कि फर्स्ट-क्लास का डिब्बा है और उसमे बारह सूप नीचे-ऊपर गँजे हैं! फिर, दिल्ली पहुँची तो राष्ट्रपति-भवन की गाडी मे सूप लादे गये। मैं सोचती रही राष्ट्रपति-भवन का यह ड्राइवर और यह दूसरे कर्मचारी क्या समझते होगे कि कैसा मेहमान आया है, जो इतने सूप लाया है! पर, राष्ट्रपति-भवन मे 'अउआ' के सामने सूप आये तो बहुत ही गद्गद् हुईं। कहने लगी—'चलो, तुम ले आईं, अच्छा किया यहाँ कोई सूप ला ही नही देता।'. सचमुच उनका अपना जीवन वैसे ही बीत गया, कुछ पता ही नही चला।

और उनके पति यानी राजेन्द्र बाबू का यह था कि अपनी सारी पोतियों को पढने के लिये वे मेरे यहाँ भेजते थे, और उनसे पैसे पैसे का हिसाब रखवाते थे। बच्चियों को साबुन आदि तक खरीदने की इजाजत नही थी कि खद्दर इस्तेमाल करो और कपडे अपने हाथ से धोकर पहनो। . राजेन्द्रबाबू मुझसे इस सम्बन्ध मे अक्सर ही कहते—'मैं हमेशा तो राष्ट्रपति रहूँगा नही यह राष्ट्रपति-भवन मेरा नही है दिल्ली भी मेरी नही है परिवार के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा ऐसे होनी चाहिये कि उन्हे बाद मे कष्ट न हो! मैं राष्ट्रपति नही रहूँगा तो यह बच्चियाँ कहाँ जायेंगी? इसलिए इन्हे अपने यहाँ रखिये और उसी तरह रखिये।'

इस पर हम सबके मन कही श्रद्धा से झुक गये और क्षण-दो क्षण सन्नाटा रहा कि मैंने मौन काटा—'जिज्जी, दिल्ली के तो आपके और भी लतीफे हैं।' और, मैंने साथ के लोगो स कहा—'जिन दिनो मैं दिल्ली मे था, 'जिज्जी' का अभिनन्दन वहाँ हुआ। उसी दौर मे श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा के यहाँ 'जिज्जी' के सम्मान मे एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। मैं बच्चन जी के साथ वहाँ जाने के लोभ मे १३, विलिंगटन-क्रेसेंट पहुँचा तो, ब्राह्मण-आदमी, खाने की मेज पर भी जा बैठा। मगर, बच्चन जी ने सभी खानेवालो से जल्दी खाना खत्म कर दिया और 'त्रिमूर्ति' जाने क्यो टेलीफोन किया तो मालूम हुआ कि पंडितजी खाना खाकर, किसी से बिना कुछ कहे-सुने, मोटर पर सवार होकर कहीं चले गये बच्चन जी मुझसे बोले—'सम्मेलन महादेवी जी के सम्मान मे है, और 'पंडित जी' उन्हे बडा स्नेह करते हैं। मेरा ख्याल है कि वे सम्मेलन मे ही गये हैं। तुम जल्दी खाना खत्म करो, उठो।'. मैं

हडबडाकर उठा, और हम मोटर से तारकेश्वरी जी के यहाँ पहुँचे तो देखा कि पंडित जी मंच पर विराजित है और उनसे आग्रह किया जा रहा है कि आप महादेवीजी को आशीर्वाद दें। पंडित जी कुछ देर तक तो आग्रहकर्ता से बहस करते रहे, मगर फिर उठे। उठे तो सामने के अर्द्धचंद्राकार माइक को कुछ देर तक दोनो हाथो से थामे चुपचाप खडे रहे कि सामने के १०-१२ हजार आदमी एकदम सन्न! फिर, पंडितजी खुलकर मुस्कराये और मुखर हुये—'मैं महादेवी जी को देखने, उनको मिलने यहाँ आया (इसी के साथ वे जरा झुके और उनकी नजर 'जिज्जी' पर टिक गई–) मै देखता हूँ कि महादेवी जी अभी जोरो पर हैं!'. इसके साथ ही ठहाको से पडाल को गूँजा कि बस! दूसरी ओर जवाहरलालजी खुद भी हँसते हुये कुछ पल उसी तरह तिरछी मुद्रा मे खड रहे और फिर एकदम पास की मसनद पर बैठ गये।

जिज्जी बोलीं—'उनका बडा स्नेह था मुझ पर। मैं कृष्णा (श्रीमती कृष्णा हथी सिंह)' के साथ पढती थी, अक्सर ही उनके यहाँ जाती थी, और पंडित जी का बडा रोब मानती थी। उस समय इन्दिरा जी पांच-छ वर्ष की थीं। उन्ही दिनो एक बार कृष्णा से मिलने गई तो अपना बस्ता ही छोड दिया और वापिस चल पडी। लेकिन, जरा देर मे पीछे से आवाज दी किसी ने। मुडी तो देखा कि जवाहर-भाई बस्ता लटकाये चले आ रहे है। जान निकल गई! जवाहर-भाई ने पास आकर बस्ता मेरे हाथो मे थमाया और झिडका—'तुम बस्ता इस तरह फेंकती फिरती हो लिखो-पढोगी क्या!' और, यह मोह उनका सदा ही बना रहा। जब मिलते कुछ-न-कुछ कहते अवश्य। एक बार बोले—'तुम क्या बकवास लिखती हो मेरी समझ मे कुछ नही आता!' मैंने हँसकर उत्तर दिया—'आप किस भारतीय भाषा का क्या समझते है, जो आपको मेरा लिखा समझ मे नहीं आता!' और, इसके साथ ही जिज्जी गम्भीर हो गईं—'सुन्दर कल्पनायें थी उनकी, पर धरती पर नही उतरी वैसे, सुन्दरतम स्वप्न भी धरती पर उतरते-उतरते अपने बहुत से रग खो देता है मगर जवाहरलाल जी ने तो जैसे अपने सपनो को धरती पर उतारा ही नही उतारने का प्रयत्न करते तो साथी उन्हे बहुत मिल जाते! कुछ दिल्ली का ही दुर्भाग्य है आभिजात्य-भावना जवाहरलालजी के भीतर तक थी वैसी ही 'डिगनिटी' भी थी पर, हमारे यहाँ 'डिगनिटी' शान-शौक मे है और 'पंडित जी' से सबने यही लिया है सूर्य से प्रकाश लिया है सबने, और अब वही प्रकाश का अधिकार सब लिये घूमते हैं। और, फिर नेहरूजी की बाते करते-करते महादेवीजी आर्द्र-मन से कमलाजी की चर्चा करने लगी—'बडी महान थी वे साधारण घर से आई थी नेहरूजी के परिवार के ठाट-बाट ने उनकी ओर हमेशा हीन भाव से देखा व कही अन्दर ही अन्दर घुटती रही और पति के पीछे-पीछे चलती रही होते हाते जीवन से बडी वितृष्णा हो गई उन्हे और, जान-बूझकर अपने को बहुत थका डाला उन्होंने उस परिवार मे रहकर भी वे गरीबों के बच्चो को गोद मे लिये घुमती और उनके लिए अपनी जेब से दवायें मँगवाती उन्हे समझने का पंडितजी को अवकाश ही कभी नही मिला वे या तो जेल मे रहते या—

बाहर रहने पर भी--अपने कामो मे उलझे और लोगो से घिरे रहते. और, इसी मे कमला जी चली गई और उनके चले जाने के बाद नेहरूजी ने उन्हे समझा फिर, उनकी स्मृति के अपने मन से कभी हटा नही पाये कही अन्तरतम मे बहुत ही सँजोकर रक्खा उन्होने उसे और, उनकी इस यादगार को जो रूप दिया, वह सचमुच ही कमला जी के योग्य था 'कमला-नेहरू-अस्पताल' से बडा ताजमहल कमला जी के लिये और कौन दूसरा बन सकता था . '

और, मैने 'जिज्जी' को एकदम हिलते देखा तो बात बदलने की कोशिश की मगर, असफल रहा फिर जाने कहाँ से विद्यार्थी-आन्दोलन बीच मे आ गया। महादेवी जी बोली--'विद्यार्थी बुरे-भले जैसे भी है, हैं मगर, हम चुनौती देते है तो वे हमारा अपमान नही करेंगे ? उनके शिक्षक हमे नही समझते, पर वे हमे समझते है लेकिन, रोना तो यह है कि हम आज के विद्यार्थी को कोई नैतिक-बल नही द पाते हम साहित्यकार भी उसे कुछ नही दे पाते साहित्य मे भी प्राण देनेवाले नही रहे अब इतनी सारी चीजें होती हैं, मगर लेखनी से नया जीवन देनेवाला आज कहाँ है ? हम आपस मे जूझते है हिंदू-मुस्लिम-लडाई जैसी हो रही है जीवन कितना ही दुरूह क्यो न हो गया हो, मगर हमे आपस की लडाई से अवकाश नही है बैठे-ठाले का विरोध है देवरानी-जेठानी के बीच की-सी छोटी-छोटी छोटी बातें पर्वताकार हो रही हैं जब साहित्यकार की भूमिका ही समाप्त हो जायेगी तो साहित्यकार कैसे नही समाप्त हो जायेगा ? तुम हमारी बात करो तो अकेले हमारे कहने से क्या होगा ! हम बहुत-सी बाते कहना चाहते हैं, कहते हैं मगर, इस कलियुग मे सख्या की शक्ति हमम नही हो पाती बहुत से काम रह जाते है हमसे ज्यादा सगठित-वर्ग दूसरे हैं हमारा सत्य अन्दर से आता है, उसम किसी का सहयोग नहीं चाहिये, पर हम सामाजिक प्राणी भी तो है और, साहित्यकार है कि आज वह भी अकेला पड गया है साहित्यकारो को रेडियो ले गया या सरकार ले गई हमारा क्षेत्र खाली हो गया 'पत जी' तक रेडियो का विरोध नही कर सके अब तो हिंदी की जगह अग्रेजी ही नही उर्दू भी आती है, और कोई विरोध नही है ! हम कोई समस्या हल नही कर पा रहे है कहते हैं--'आनेवाला युग इन्हे हल करेगा।' तो, आयेगा वह युग भी आयेगा, पर हमारे भरोसे नही आयेगा, और, आयेगा भिक्षुक बनकर नही, हमारा उत्तराधिकारी बनकर। फिर उत्तराधिकारी कहेगा--'तुमने हमे क्या दिया ?' और, यह भी हो सकता है कि आनेवाला युग का उत्तराधिकारी ही दूसरा हो !'

इसके बाद हममे से किसी मे भी आगे सहने की शक्ति न रही। मैंने बहुत ही युक्ति स जैसे-तैसे प्रसग बदला, और हम सबने 'जिज्जी' स विदा ली।

और, अब जब जल्दी ही उनका जन्म-दिवस पड रहा है, मैं 'जिज्जी'--महादेवी जी--से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि वे अपनी लेखनी उठायें, युग के प्राणो मे गहराई तक भिदा विष खीचें और उसे अपने अन्तर के अमृत-रस स सीचें लेखनी के सच्चे विद्रोह का जहर अमृत ही होता है शायद !

❧❧❧

मौसी महादेवी

सुश्री प्रीति अदावल

'यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं' कबीर का यह दोहा मुझे जब भी याद आता है यही विचार आता है कि शायद कबीरदास को भी मेरी तरह जीवन में सबसे अधिक आनन्द अपनी मौसी के ही घर मिला होगा। मेरे लिए मौसी केवल 'मौसी' ही नहीं है, माँ से भी अधिक है। भावनाओं का जैसा तादात्म्य मेरे और मौसी के बीच है, मेरे और मामी (माँ) के बीच न कभी रहा, न अब हो सकने की आशा है। हम लोगों की एक ही सगी मौसी हैं, सौभाग्य से वह रहीं भी हम लोगों के पास ही, कुछ दिन तो एक ही घर में, और फिर एक ही नगर में। बराबर ही हम लोग उनके घर जाते रहे और वह हमारे घर आती रहीं। मौसी के घर जाने के अवसर हम सभी भाई-बहिन खोजते ही रहते थे और उन्हें अपने घर बुलाने का सदा उत्सुक रहते थे, विशेषकर अपने जन्मदिन पर। हममें से प्रत्येक अपने जन्म-दिन की याद मौसी को दिलाना नहीं भूलता था क्योंकि उनसे हमें एक अच्छे उपहार की आशा रहती थी। अब हम लोग बड़े हो गये हैं तो हमारे बच्चे उसी उत्साह से अपनी बड़ी नानी को अपने जन्मदिन का निमन्त्रण देते हैं और उनके घर जाने की जिद् करते रहते हैं। जीवन में जो भी कुछ बच्चों के आनन्द का कारण हो सकता है वह सब हमें, और अब हमारे बच्चों को, मौसी के घर में एक साथ मिल जाता है—खाने की रुचिकर चीजें, पहनने के सुन्दर कपड़े, खेलने के लिए कुत्ते, बिल्ली, खरगोश और सुन्दर सुरम्य स्थलों की मनोरंजक पिकनिकें और यात्रायें। मौसी को कुछ घन्टे पहले सूचना मिल जानी चाहिए फिर हमारे वहाँ पहुँचने पर कभी ऐसा नहीं होता कि बच्चों के मन के खाद्य-पदार्थ न मिलें, दोसा भी बन जाता है, रसगुल्ले भी मँगा लिये जाते हैं और गर्मी के दिन हों तो बड़ा सा तरबूज भी रसूलाबाद से आ जाता है। और मौसी इतने उत्साह से खिलाती हैं कि हम लोग सदा ही अधिक खा जाते हैं।

अब लगभग आधी यात्रा तय कर लेने पर मुड़ कर देखती हूँ तो लगता है जिन्दगी की इस राह में जो भी रस मिला है, उसका अधिकांश श्रेय मौसी को ही है। शायद दो-ढाई साल की थी तो मौसी ही मेरे लिए फर का कोट लाई थीं जिसे मामी ने अभी तक रख छोड़ा है, उनकी पहली बिटिया को बहिन का उपहार। दस-ग्यारह वर्ष की हुई तो मौसी के घर जाने को मचलने लगी थी। एक बार जिद् करके वहीं रह गई तो दूसरे दिन मौसी ने ही मुझे स्कूल भेजा था। कपड़ों की समस्या थी, मौसी ने अपनी एक हल्की सी साड़ी जैसे तैसे लपेट

दी थी। बहुत गौरव का भाव लिये मैं साड़ी पहनकर स्कूल गई थी। अभी तक याद है कि अध्यापिकायें हँस रही थीं और सहेलियाँ ईर्ष्या के मारे कुढ़ी जा रही थीं।

बहुत दिन पहले की एक दुपहरी भी ऐसे ही स्मृतिपटल पर अमिट हो गई है। हम सब घर के बाहर खेल रहे थे कि फाटक पर मौसी का ताँगा दिखा। उसके घोड़े और ताँगे वाले को हम सब खूब पहचानते थे। "मौसी आईं" "मौसी आईं" कहते हम सब दौड़े और मौसी जब उतरी तो भगतिन (उनकी बुढ़िया नौकरानी) एक बड़े से झावे को ढँके हुए उतरी, भीतर से चूं चूं। हमारी उत्सुकता की सीमा नहीं, पिटारे में है क्या? घर के भीतर ढक्कन उठाया गया और कई जोड़ी उत्सुक आँखों ने देखे पाँच छोटे-छोटे झबरे सुन्दर पिल्ले—मौसी की पेकिनीज फ्लोरा की प्रथम सन्तानें। मुझे अभी तक यह सोचकर बुरा लगता है कि मैं तब कोई पिल्ला नहीं पाल सकी। मुझे जितना कुत्ते-बिल्ली का शौक है, बाबूजी को उतनी ही उनसे विरक्ति है और यहीं से मेरे और मौसी के बीच भाव-तादात्म्य की जो कड़ी जुड़ना शुरू हुई तो इतने वर्षों में दृढ़ से दृढ़तर ही होती गई। पशुओं का, विशेषकर कुत्तों का यह प्रेम मेरे नाना की देन है, मौसी और छोटे मामा को, फिर मुझे और मेरे नन्हे भान्जे-भतीजों को। उन पाँच पिल्लों में से दो नाना के घर पले थे, साइरस और सीजर। सीजर अचानक मोटर से कुचलकर मर गया तो नाना बेहद दुखी हुए थे, मैं खूब रोई थी और छोटे मामा ने इंग्लैंड से उसका एक चित्र एन्लार्ज करके मुझे भेजा था सहानुभूति में। साइरस अपने बुढ़ापे में मौसी के ही पास आ गया था—बिल्कुल ही अशक्त और अन्धा होकर। एक दिन वह खो गया तो मौसी ने अखबारों में उसे खोजने वाले के लिए इनाम घोषित किया था और उसका पूरा विवरण दिया था। मिल तो वह दूसरे दिन गया किन्तु लोग हँसे भी खूब कि अन्धे बूढ़े कुत्ते के लिए ऐसी परेशानी। सच ही मौसी के मन की बात सामान्य लोग नहीं समझ सकते, पशु को केवल उपयोगितावादी दृष्टि से पालना मेरे मातुलपक्ष के लिए असम्भव रहा है और मौसी तथा मेरे लिए तो बिल्कुल ही कल्पनातीत है। हृदय की इस दुर्बलता में मौसी की साझी-दार मैं ही हूँ। एक दूसरे के दुख-सुख हम दोनों ही बँटाते रहते हैं। मौसी के ही अल्सेशियन जोड़े का एक पिल्ला मेरे पास था—टार्ज़न। ऐसा सुन्दर, बुद्धिमान और अच्छे स्वभाव का कुत्ता शायद ही कोई दूसरा हुआ हो, मेरा तो प्राण ही था वह। उससे मैं हँसी में कहा करती थी, "तेरी नानी तुझे मुझसे भी ज्यादा प्यार करती है।" पहले मौसी की फ्लोरा उनके साथ नैनीताल, काश्मीर आदि घूमी, फिर और कुत्ते और फिर मेरे साथ जाने लगा टार्ज़न। रायगढ़ में मौसी और मैं दोनों टार्ज़न को देख-देखकर प्रसन्न हुआ करते थे। फिर जब वह बीमार पड़ा तो उसकी सेवा-चिकित्सा में मौसी ने मेरी सहायता की, नहीं रहा तो मेरा शोक बँटाया। पन्तजी और मौसी दोनों ही ने मुझे बड़ी सान्त्वना दी। जिसने इस व्यथा को अनुभव नहीं किया वह इसे बँटायेगा क्या, मौसी ही इसे समझ पाती हैं। अपने पाले हुए अच्छी जाति के कुत्तों के लिए ही नहीं मौसी का मन पशुमात्र के प्रति इतना करुणाशील है कि वे सड़क के दीन-हीन कुत्ते के लिए भी उतनी ही द्रवित होती हैं जितनी अपने बादल, कजरी, मीना आदि

के लिए। कई बार म्यूनिस्पैलिटी की कुत्ता पकड़ने वाली गाडी से उन्होंने रुपये देकर कुत्ते छुड़ाये और पाले हैं। राह चलते किसी छोटे बिल्ली या कुत्ते के बच्चे को उठा लाना और उसके लिए घर खोजना मेरी भी आदत है। मौसी और मैं मिलने पर अपने पालतू पशुओं की ही बातें करते हैं, मैं उनके घर जाकर पहले बारी-बारी से सभी कुत्तों को प्यार करती हूँ फिर मौसी के पास बैठती हूँ। अब तो हमारे भी आगे की पीढी इसमें सहभागी होने लगी है, कीर्ति का बेटा तोषी मौसी से मिलते ही कुत्ते के पिल्ले की माँग करता है, नवीन का बेटा दादी के घर इसीलिए जाना चाहता है कि वहाँ ढेर सारे कुत्ते-बिल्ली है।

पशुप्रेम के बाद मेरे और मौसी के बीच तादात्म्य की दूसरी कडी है प्रकृति-प्रेम। बच्चे तो और भी हैं, मेरे भाई-बहिन है, मामा की सन्तानें है, किन्तु इनमें सबसे अधिक मैं ही मौसी के निकट हूँ। मौसी बताती हैं कि जब मैंने जन्म लिया था तो भाभी बहुत बीमार थीं, दूध न मिलने के कारण मैं रात-रातभर रोती रहती थी और मौसी मुझे टहलाकर चुप कराया करती थी। हो सकता है कि शैशव से ही मौसी का अधिक सामीप्य और लाड़-दुलार पाकर मैं उनकी बेटी अधिक हुई, अपनी माँ की कम। छुट्टियों में अभी भी मौसी के साथ रामगढ में बिताना अधिक पसन्द करती हूँ, अनेक बार मसूरी, शिमला आदि नये स्थलों पर माता-पिता के साथ रहने का लोभ छोड़कर मैं अकेली मौसी के साथ रामगढ गई हूँ। छुटपन से लेकर अभी तक जब भी चुनाव का प्रश्न आया है मैंने मौसी का साथ ही चुना है। मौसी को सदा से गंगा किनारे रहना अच्छा लगता था, पहले झूँसी के खँडहरों में एक कमरा मिल गया था, फिर अरैल गाँव में एक कच्चा घर रहने को ले लिया था। इन दोनों ही स्थानों पर मौसी के साथ हमारे परिवार ने अनेक पिकनिकें की थीं। छोटे मामा को, नाना को और हमारे बाबूजी को भी इसका बहुत शौक है। जब भी वे लोग आते थे, हम सब बहुत ही उल्लास के साथ घूमने की योजनाएँ बनाया करते थे। प्रबन्ध सब मौसी करती थीं, खाना भाभी और मौसी मिलकर बनाती थीं और हम सब छोटे लोग दौड़भाग मचाया करते थे। हास-परिहास, आनन्द-आमोद का ऐसा वातावरण बन जाता था कि लौटने का मन ही नहीं करता था। हमारे बाबूजी और मौसी में बहुत ही मजेदार मजाक होते रहते है। बाबूजी हमारे नाना के घर की दृष्टि से थोड़े देहाती ढंग से पले हैं और आधुनिकता को अभी भी पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाते हैं, आर्यसमाजी संस्कारों के कारण थोड़े कट्टर भी है। इसी कारण उनको मौसी गँवार कहती थीं और उनके गँवारपन की बड़ी हँसी उड़ाती थीं। बाबूजी ने उनके इस परिहास को इतना मान दिया कि जब उन्होंने दो-तीन कहानियाँ लिखीं तो अपना उपनाम 'गँवार' ही रक्खा। ये कहानियाँ 'सरस्वती' में लगभग तीस वर्ष पहले प्रकाशित हुई होंगी, आज तो बाबूजी के बारे में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि वे कहानी भी लिखते थे। कुत्ता के प्रति प्रेम, कवि स्वभाव के लिये बाबूजी भी मौसी का मजाक बनाने से नहीं चूकते। हँसी में बाबूजी मौसी को 'बड़ी सरकार' कहते हैं और भाभी को 'छोटी सरकार'। रामगढ में दो-तीन बार गर्मी भर मौसी के साथ हम लोग सपरिवार रहे हैं, उन दिनों बाबूजी-मौसी की जो

पहले की बात है, रामगढ में घर के सामने ही एक बीजू खूबानी का पेड उग आया और काफी बडा हो गया। मैं पहुँची तो शेर सिंह ने कहा कि इसे छाँट देना चाहिए, इससे धूप भी रुकती है और मकान की नीव भी कमजोर होती है। मैंने मौसी से कहा तो वह सहमत नही हुई, "इतना अच्छा पेड है, कैसी बढिया छाया देता है, इसे मत काटो।" मैं चुप रह गई और एक बार उनकी अनुपस्थिति में उसे छँटवा दिया। वह ऐसी बागवानी करती हैं कि यदि मैं ऐसा न करूँ तो उनका उपवन उपवन न रहकर वन हो जाये, जो बीज जहाँ उग आये वहीं रहने दिया जाये, पेडो को लताये छा ले, जगली घासफूस सारे मे भर जाये। ऐसी ही एक और बात मे भी मेरा मौसी से मतभेद हो जाता है, वह है अपने पालतू पशुओ की सख्या के सम्बन्ध मे। मैं परिवार को सीमित रखने मे विश्वास करती हूँ, दो से तीसरा कुत्ता लेते समय हिचकती हूँ। इसके विपरीत मौसी को जहाँ कोई सुन्दर कुत्ता दिखा और उसे पा सकी तो अवश्य ले लेती हैं, अपने घर मे बच्चे हो तो उन्हे दूसरो को देने का मन उनका नही होता। परिणाम यह है कि उनके पास इस समय छ कुत्ते हैं, तीन बिल्लियाँ हैं और लगभग सौ खरगोश हैं। तोते, कबूतर आदि भी है। इस प्राणिसमूह की देखरेख, पालन-पोषण एक समस्या ही है, इस कारण और भी कि सबको अलग रखना पडता है। एक कुत्ती की दूसरी से लडाई है, और बिल्लियो की कुत्तो से भी लडाई है, तोतो, खरगोशो आदि से भी। एक को बन्द करके दूसरो को खोला जाता है। अभी कुछ दिन पहले इसी कारण मौसी के दाहिने हाथ मे काफी चोट लग गई थी, कजली और मीना साथ ही खुल गईं। कजली मीना को मार ही डालती कि मौसी ने दोना को अलग करने के लिए अपना हाथ कजली के मुँह मे ही डाल दिया। कई दिन दर्द और बुखार के कारण परेशान रही पर मीना को बचा लिया। कहती है कि "सिद्ध हो गया कि मैं मीना को कितना प्यार करती हूँ।" जैसे हममे से किसी ने कभी सन्देह किया हो कि वह अपने पालतुओ को प्यार नही करती। ऐसी ही स्थिति मे मैं मौसी से कहती हूँ कि परिवार नियोजन सीखना चाहिए।

छोटी बातो में मतभेद कितने ही हो मौसी और मेरे बीच जो मौलिक तादात्म्य है वह आश्चर्य की बात है। मुझे सदा उनके साथ रहना अच्छा लगता है और वह भी शायद मेरा साथ पसन्द करती हैं। झूँसी, अरैल, रसूलाबाद, रामगढ सभी स्थानो पर उनके एकान्त-वास में मैं साथी रही हूँ। जब कभी मौसी ऐसा कोई प्रोग्राम बनाती हैं मुझे अवश्य बुलवा लेती है। इस बार मैं जब बद्री-केदार की यात्रा पर गई तो मौसी ने भी साथ चलना चाहा था किन्तु बाद म अपने शरीर की असमर्थता से विवश होकर उन्होंने विचार बदल दिया। मुझे सारे रास्ते उनका अभाव खटकता रहा, वह होती तो उनके माध्यम स हम सभी कितना अधिक आनन्द पाते। साहित्यकार ससद में मौसी के साथ बिताये कितने ही दिनो की स्मृतियाँ मन मे अमिट हो गई हैं।

मेरे और मौसी के स्वभाव की समानता के कारण आलोचना भी हम दोनो की साथ ही होती है। हमारे बाबूजी प्राय कह देते हैं कि मुझमे अमुक बुराई मौसी के प्रभाव से है,

पैसे रुपये-पैसे के सम्बन्ध में असावधानी और फिजूलखर्ची। धन को सम्हाल कर रखना और हिसाब लगाकर खर्च करना मौसी के स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध है। हँसी-हँसी में बाबूजी मौसी से कह देते हैं, 'प्रीति ने यह बात आपसे ली है।'' मैं भी कह देती हूँ कि 'जो कुछ मैंने मौसी से पाया है वह वास्तव में बुराई नहीं है, अच्छाई ही है।'

ऐसा लगता है कि विवाह और गृहस्थ जीवन के प्रति विरक्ति भी मैंने मौसी के प्रभाव से ही पाई है। 'शृंखला की कड़ियाँ' में व्यक्त उनके विचार मैं प्रायः ही सुनती रही हूँ और सहमत होती रही हूँ। धीरे-धीरे न जाने कब और कैसे मेरे मन में यह धारणा जम गई कि मुझे विवाह नहीं करना है, मैं स्वयं नहीं जानती। किन्तु जब मैंने यह विचार व्यक्त किया तो विरोध भी बहुत हुआ। उस संघर्ष में भी मुझे मौसी ने ही सहारा दिया, यदि उनका भरोसा न होता तो शायद मैं सामाजिक दबाव के वश में आ गई होती। जीवन में जब भी कठिनाई सामने आई, मेरा विरोध हुआ, मैंने मौसी का ही सहारा खोजा और पाया। आज जब उन संघर्ष के दिनों की याद आती है तो मौसी के प्रति मन कृतज्ञता से भर उठता है। पर कृतज्ञता की बात भी व्यर्थ है—मैंने जो कुछ पाया है वह मेरा अधिकार है क्योंकि मैं उनकी ही बेटी हूँ, उनकी बहिन की बाद में। स्वभाव में, विचारों में, रुचियों में, यहाँ तक कि अस्वस्थता में भी मैं मौसी की ही बेटी हूँ, फिर मुझे उनसे समर्थन और प्रोत्साहन क्यों न मिलता? प्रभु से इतनी ही प्रार्थना है कि यह सहारा, यह छत्रछाया सदा बनी रहे।

महादेवीजी : एक व्यक्तित्व

सुश्री शांति जोशी

महादेवीजी के लिए जीवन अपने हँसमुख सलोने रूप मे वेदना को चिपटाए आगे बढता है। सलिला का एक रूप उसका कलकल नाद है तो दूसरा, उसी का अनन्य किंतु अधिक गहन, अतर की व्यथा है। प्रकाश फैलाते हुए सबसे वे मिल लेती हैं, हँसी का उन्मुक्त स्रोत फूट पडता है। पर फिर, थोडी ही देर में जीवन के दुखद प्रसगो को छेड देती है। कभी हँसकर, कभी अश्रुपूरित नयनो से कथा-प्रवाह मे वह जाती है। भारतीय समाज के नारी-जीवन की आँसूभरी कहानी अपनी असहायता को लपेटे वृहत् उपन्यास के पात्र-पात्री बन बोलने लगती है। परिवेश और स्वभावगत सीमाओं से बँधे शरद के नारी-पात्र जीवित हो उठते है। कहानी का क्रम टूटने का नाम ही नही लेता कि इलाहाबाद के कोने-कोने मे घटित कहानियाँ, अनेक सभ्रान्त चिर-परिचितो का जीवन, दुश्चरित्रता और उत्पीडन का प्रतीक मात्र बन जाता है। महादेवीजी की व्यापक सम्वेदना दूसरो के दुख से द्रवित हो उन्हे दुख मुक्त करने के लिए व्याकुल हो जाती है। कितनी ही दुखिया नारियो के घर, उनके पतियो की उपेक्षाभरी दृष्टि की उपेक्षा कर, वे गई। किंतु व्यक्ति-विशेप के चाहने या करने से ही तो किसी की स्थिति सुधर नही जाती, उसके लिए सामाजिक सगठन, प्रबुद्ध सामाजिक चेतना की आवश्यकता है। फिर भी वे जितना भरसक कर सकती है वह उन्होने परिवार, मित्र तथा साहित्य समाज की स्त्रियो के लिए किया।

महादेवीजी का जितना अधिक अपना घर इलाहाबाद है, उतना ही रामगढ भी है, जहाँ उनका एक छोटा सा बँगला है तथा सेबो का बगीचा है। रामगढ के तृण तरु, पशु-पक्षी, झरने, पहाडी मार्ग एव वनानी, कमलापति बाबा, बद्री भाई, हरदत्त चाचा, चपा, चपा के माता-पिता, खेती—ये सब उनके अपने हैं। अक्सर वे कमलापति बाबा, बद्री भाई, रामगढ के अन्य लोगो तथा उनके स्नेह-व्यवहार की बाते करती हैं। चपा के पिताजी की बीमारी उन्हें व्यथित करती है, चपा की माँ की असह्य दरिद्रावस्था जो वहाँ की सर्वहारा वर्ग का सामान्य भाग्य है, घण्टो तक उनकी बातो का विषय बन जाती है। वे विस्तार से सुनाती हैं कि कैसे चपा की माँ एक कटोरे चावल में पतीली भर पानी डाल कर आठ बच्चो को एक-एक कटोरा चावल का पानी पिला, दिन-रात अथक परिश्रम करती हुई हँसती रहती है। पहाडी रात के स्पदनरहित अधकार में जगल में जाकर काम करना, लकडी बटोरना, भूखे बच्चो की माँ के लिए ही सभव है। महादेवीजी की अबला की दुखगाथा अनत होने लगती

है। एक के बाद एक अबला के आंसुओं की कडियां जुडती जाती है। जीवन मात्र सिसकियां भरता प्रवाह! ऐसे में महादेवीजी स्वय, उनका सफल यशस्वी जीवन खो जाता है। कितने कुछ दु ख हैं उनके मन मे, उनमे यदि व्यक्तिगत सुख-दुख हैं भी तो रूप नही ले पाते।

सभ्य-सुसस्कृत लोग, उनका पारिवारिक जीवन, समाजसेवी, राजनैतिक नेता, धनाढ्यक उच्चकुल के लोग, उनकी कुटिल प्रवृत्तियां, थोथी बातें—ये सब वे समस्याएँ है जो महादेवी जी के सामाजिक बोध को कुरेदती रहती हैं और वे हँसी के आवरण में उदासीन स्वर में कहती हैं—'लेखको की सुनता ही कौन है जो हम कुछ कर सकें।' उनका अविचलित स्पष्टवादी व्यक्तित्व उन अवसरो को छोडता नही है जिनमें वे निर्भीकता पूर्वक सच्चाई को सामने रख देती है। प्रयाग में ऐसे कई अवसर आए है जब उन्होंने भाषण के मध्य चतुर लोगो के मन के चोर को पकड कर रख दिया। उनके भाषणो में काव्य-माधुर्य के सहज प्रवाह के साथ एक न एक खरी बात अवश्य होती है। कैसे वे 'आतरिक चोर' को जान लेती है, आश्चर्य होता है, और उससे भी अधिक, जिस स्पष्टता और दबगपन के साथ वे वास्तविक तथ्य का, बिना भाव-परिवर्तन के, हँसते हुए उद्घाटन कर देती हैं।

रामगढ के घर से, सभी अर्थों मे, महादेवी जी का इलाहाबाद का घर बडा है। वहाँ न केवल भाई-भावज, बहन-बहनोई, भान्जी-भान्जा, भतीजा-भतीजी, नाती आदि है वरन् लेखको, काव्य-प्रेमियो, मित्र-बधुओ के व्यापक परिवार के साथ विद्यापीठ की लडकियो-अध्यापिकाओ, और इनसे भी अधिक निकट, अधिक प्रिय, कुत्ते, बिल्ली, गिलहरी, तोता, खरगोश और मोर का स्नेहपूर्ण सानिध्य है। पशु-पक्षी परिवार के कारण उनका घर का जीवन पर्याप्त व्यस्त रहता है। उनकी मझले आकार की चारपाई पर उनकी दो अत्यत लाडली कुत्तियो—श्वेता और मीना—का ही अधिकार रहता है। वे एक किनारे पर, किसी भाँति जगह निकालकर दबी पडी रहती है। फिर बिल्ली और कुत्तियों के बच्चे देने के दिन! उनके लिए अपने दो कमरो में से एक कमरे में सब प्रकार की व्यवस्था कर देती है, छोटे नवजात बच्चो को समय से अमूल दूध देना, बिस्कुट खिलाना पर्याप्त समय लेता है। जहाँ परिवार बडा होता है वहाँ कोई न कोई बीमार भी अवश्य पडा रहता है। जानवरो के डाक्टर के पास किसी न किसी दुलारे पशु को वे प्राय ही भेजती रहती हैं। आवश्यकता प्रतीत होने पर डाक्टर घर आता है, इन्जेक्शन दवाई आदि दे जाता है। विटामिन और टॉनिक पालतू पशुओं को मिलते रहते हैं। यह सब काम ही तो है, घर का काम।

प्रत्येक सुदर वस्तु के प्रति महादेवीजी के मन में आकर्षण है, उसे प्राप्त करने की सहज लालसा! उनकी अल्मारी मे अनेक छोटी चीजें, गुडियो का सामान—बर्तन, खिलौने आदि मिल जाएँगे। यह वह सामान है जिसके लिए दो तीन साल की बालिका मचल उठती हैं अथवा जिसे वह सहेज कर रखती है। अक्सर छोटे बच्चो के जन्म-दिवस के अवसर पर वे अपनी अल्मारी का ताला खोलती हैं, दो-तीन खिलौने निकालती है, फिर जल्दी से वहीं रख, ताला लगा देती है और बहुत सतोष के साथ कहती है—उपहार की वस्तु बाजार से लाऊँगी।

फाफामऊ में शिवरात्रि के अवसर पर जो गाँववालों का मेला लगता है, उसकी हर चीज के प्रति महादेवीजी के मन में न केवल आकर्षण ही रहता है वरन उन्हें खरीद एवं प्राप्त कर लेने का उत्साह भी। विभिन्न आकारों के घड़े, अचार डालने के चिकने घड़े, लोगों का चिलमों की माला बना कर गले में डाल लेना या साइकिल में लटका लेना—सब उन्हें सहज प्रसन्नता से भर देते हैं। वे हँसते हँसते दुहरी हो जाती हैं—देखो वह आदमी चिलमों की माला कैसे पहने है? इक्केवाला कितने सारे घड़े ले जा रहा है? उपयोगी-अनुपयोगी सभी वस्तुओं के प्रति उनके मन में सहज आकर्षण है और वे उन्हें बहुमूल्य निधि की भाँति सम्हाल कर रखती हैं। उन्हें टूटी हुई सुई फेंकने में भी दुःख होता है। उनका कमरा एवं अल्मारी और तहखाना छोटे अजायबघर के रूप में शोभा बढ़ा सकते हैं। छोटी शीशियाँ, डिब्बे, खिलौने, माला, सीपियाँ, चमकीले पत्थर, शंख, मूर्तियाँ, पेन, पर्स, कैलेन्डर, चाकू, दीवाली के अवसर पर मिलने वाले मिट्टी के खिलौने—विशेष रूप से गणेश-लक्ष्मी—और मिट्टी के बर्तन आदि न जाने कितना सामान उनके अजायबघर में है जो किसी भी अबोध बच्चे की कौतूहल भरी आँखों को मोह सकता है।

भोजन बनाने और खिलाने का भी महादेवी जी को बहुत शौक है। लोगों को आमंत्रित करने के साथ ही वे स्वयं कटरा या चौक जाकर तरकारी तथा अन्य आवश्यक सामान उत्साह के साथ खरीदती हैं। इच्छा होने पर दिसम्बर की ठिठुरती रात के साढ़े आठ बजे वे एक पैकेट पापड़ खरीदने नुमाइश जा सकती हैं। किस मौसम में किस खाने की विशेषता है, यह न केवल उनके ध्यान में रहता है वरन् उसी के अनुसार खाना बनवाती एवं बनाती हैं। दीवाली में सूरन की तरकारी, मकरसंक्रांति को तिल का लड्डू, होली में गुझियाँ एवं प्रत्येक त्योहार में बनने वाले व्यंजन उनके यहाँ अवश्य तैयार मिलेंगे। इनके अतिरिक्त मुरब्बा, अचार, शरबत, स्क्वॉश, पापड़, पेठा आदि भी वे मनोयोग पूर्वक बनाती हैं। आँवले का मुरब्बा और दही-बड़ा सम्भवतः उनका-सा कम ही लोग बना पाते हों। नए-नए भोजन बनाने का उन्हें शौक है। कोई नयी चीज कहीं खाई, तो वे घर जाकर उसे अवश्य बनाएँगी।

सभी त्योहारों को महादेवी जी उत्साह और उत्फुल्लता के साथ मनाती हैं। दशहरे में रामदल एवं अष्टमी का मेला देखना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। दीवाली में धनतेरस के अवसर पर बर्तन तथा गणेश और लक्ष्मी की मूर्ति अनेक दूकानों की छानबीन करने के बाद ही वे लेती हैं। होली का उनके जीवन में विशेष महत्व है, वह उनके जन्म दिन के नवीन उल्लास और उमंग को लपेटे आती है। होलिकादहन वे विधिवत् मनाती हैं, अकसर दावत भी देती हैं क्योंकि इसी दिन उन्होंने माँ पृथ्वी को सर्वप्रथम देखा था। जन्मदिन की इस तिथि से लेकर अंग्रेजी कैलेन्डर के चौबीस मार्च के दिन तक उनके घर उत्सव का वातावरण रहता है। नित्य दही बड़े और गुझियाँ बनती हैं। इस बीच किसी दिन, किसी समय उनके घर पहुँच जाइए, दही-बड़ा तथा गरम गुझियाँ खाने को अवश्य मिलेंगी और गरम गुझियाँ मुँह में डालने के साथ ही मन मनाने लगता है कि यह दिन अनंत बन जाए।

रामगढ़ में अपने लाडले कुत्तों के साथ १६३६
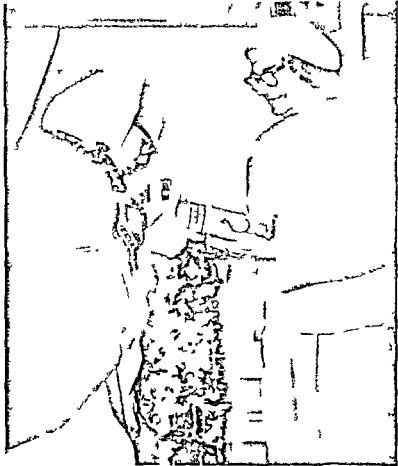
अभिन दन ग्र थ भेंट करते हुए पन्तजी

आचाय क्षितिमोहन सेन और निराला जी के साथ
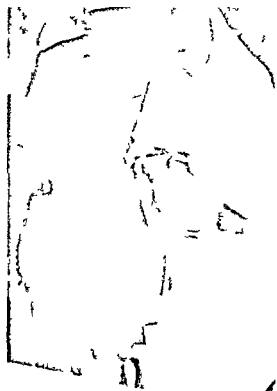
१६४५
साहित्यकार संसद भवन के उदघाटन समारोह मे
राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी के साथ

साहित्य अकादमी की

साहित्यकार ससद भवन मे माखनलालजी के सा

सुभद्राजी के साथ

पिताजी, छोटी बहन और भाई के साथ

चतुर्थ भाग : काव्य
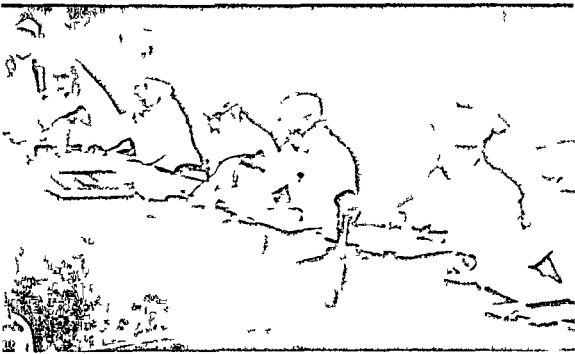
क्षणभगुर, सब कुछ अस्थिर और फिर भी कितना सरस, कितना मनोहर, कितना काम्य ! महादेवी विराट्-विश्व में व्याप्त इस क्षणिक-उल्लास-वेदना की महिमा की गायिका हैं। जिसे दुनिया वेदना कहती है, वह एक अपूर्व उल्लास है। मिट-मिटकर बनने का उल्लास, झर-झरकर पूर्ण होने का आनन्द, जल-जलकर आलोकित होने की व्याकुल लालसा। महादेवी अहैतुक प्रपत्ति की उज्ज्वल दीपशिखा हैं —'लय बनी मृदुवर्तिका हर स्वर जला बन लौ सजीली !"

मध्यकाल के काव्य-प्रेमियों ने कालिदास को 'दीपशिखा' कालिदास कहकर अपनी श्रद्धा निवेदित की थी। इसका आधार था 'रघुवश' के एक श्लोक मे 'दीपशिखा' उपमान का मार्मिक प्रयोग। इन्दुमती-स्वयवर के प्रसग मे उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि इन्दुमती चलती फिरती (सचारिणी) दीपशिखा के समान थी। जिस प्रकार रात के घने अधकार से आच्छन्न राजमार्ग पर सचारिणी दीपशिखा (मशाल) जिस भवन के सामने पहुँच जाती है वही उद्भासित हो उठता है और फिर जब आगे बढ जाती है तो फीका पड जाता है, उसी प्रकार इन्दुमती जिस राजा के पास पहुँची वही खिल उठा और जब उसे छोडकर आगे बढ गई तो उसका चेहरा फीका पड गया—विवर्ण हो गया ! कालिदास उपमाओं के बादशाह हैं। उन्होंने न जाने कितनी अनूठी उपमाओं का विधान किया है। उन सब में से सिर्फ इसी को चुनकर उनके विरुद के रूप में क्या जोडा गया, यह कहना कठिन है पर इसमें कोई सदेह नही कि यह उपमा मनोहर है और कदाचित् उपमान रूप में दीपशिखा का ऐसा सुदर प्रयोग सस्कृत-साहित्य में दुर्लभ है। इसी तौल पर भारवि और माघ को उनकी मार्मिक उपमाओं के आधार पर 'छत्र भारवि' और 'घण्टा माघ' कहा गया है, पर कालिदास की उपमा की तुलना में इन दो कवियों की तुलनाएँ फीकी ही हैं। जो हो, कालिदास का यह विरुद मनमोहक होने पर भी उनके व्यक्तित्व को या काव्यार्थ के समग्र रूप को नही व्यक्त करता। वस्तुत 'दीपशिखा' के साथ किसी कवि के नाम को जोडना ही तो वह 'महादेवी वर्मा' ही हो सकती है। 'दीपशिखा' उनका बहुत प्रिय बिंब है। इसका प्रयोग उनकी कविता में अनेक बार हुआ है। सर्वत्र वह एक ही भाव के गाढ-सप्रेषण के लिये नही आया पर मुख्य रूप से स्वय जलकर प्रकाश देने की महिमा उसमें व्यक्त हुई है। कई बार उत्तम-पुरुष में दीपशिखा रूप मे अपना तदात्म्यीकरण किया गया है या उसके 'स्नेह'-सबल ज्वलन-धर्म और प्रकाशदान के द्वारा परतत्त्व के प्रति आत्मसमर्पण के साथ कवि के साधर्म्य की ओर इगित है। इस बिंब के कुछ अन्य रूपों और क्रियाओं की ओर भी सकेत है, पर कम।

महादेवी के गीत प्राय उत्तम-पुरुष की उक्तियाँ है। इस 'मैं' का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। महादेवी गम्भीर अनुभूतियों को व्यक्त करते समय इस 'सर्वनाम' का व्यवहार करती हैं। 'मैं' 'तुम' आदि सर्वनाम व्याकरण के सर्वादि-गण में पठित होने के कारण ही सर्वनाम नही है। वे वस्तुत 'सर्व नाम' है। कोई भी इनका प्रयोग कर सकता है और उस प्रयोग के समय उत्तम-पुरुष में उसका, मध्यम पुरुष मे श्रोता का और प्रथम (अन्य) पुरुष मे

उद्दिष्ट का वाचक होगा। राम द्वारा प्रयुक्त 'मैं' का अर्थ राम है, श्याम द्वारा प्रयुक्त 'मैं' का अर्थ श्याम है—'मैं' संदर्भ-भेद से सबका नाम है—सर्वनाम है। भाषा के उपरले स्तर में संदर्भ-भेद से उसके वाच्यार्थ अलग-अलग है। पर थोड़ी गहराई में जाने पर संदर्भ क्षीण से क्षीणतर होता जाता है। सभी कवि कहलाने वाले प्राणी समान भाव से जीवन की गहराई मे नही उतर पाते पर थोडा-बहुत सभी उतरते हैं। 'मैं' का विस्तार अनुभूति की गहराई के अनुपात में होता है। अनुभूति व्यक्ति-सत्य का बाहरी रूप है जो अन्तरतर के अतल गाम्भीर्य से उच्छ्वसित भाव या सत्ता के, बाह्य यथार्थ के स्पर्श से व्यक्त होती है। व्यक्त होने के कारण ही वह व्यक्ति-सत्य है। ज्यों-ज्यों गहराई में पहुँचना सहज होता जाता है—क्रमशः इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि के आवरणों को भेदकर जीवन के अन्तरतर के स्तर तक पहुँचता जाता है त्यों-त्यों 'मैं' सही अर्थों में सर्वनाम होता जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है (कम से कम भारतीय दर्शन में) कि व्यक्ति के उपरले स्तर का रूप, अव्यक्ति के रूप मे अनुभूत होता है और जीवात्मा, विश्वात्मा के साथ एकमेक हो जाता है। ऐसा ही विश्व-कवि कह सकता है कि—'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय.!' स्पष्ट ही, कवि कहे या माने जाने वाले सभी लोग इतनी गहराई मे नहीं उतर पाते पर जितनी ही अधिक गहराई में उतरते हैं उतना उनका 'मैं' सर्वनामता धर्म को आत्मसात् कर जाता है। जो लोग कवि द्वारा प्रयुक्त 'मैं' शब्द को बाह्य-यथार्थ से सदा अभिन्न समझते रहने का प्रयास करते रहते हैं वे कविता को 'अखबारी बयान' से अधिक महत्व नहीं देते। कवि का 'मैं' बाह्य पदार्थ के संदर्भ-सीमित अर्थ से अधिक को व्यक्त करता है। वह 'बहुनामता' से 'सर्वनामता' की ओर बढ़ने के किसी विशेष स्तर की सूचना देता है। महादेवी के 'मैं' को इसी आलोक में देखना चाहिए। यह सही है कि बाह्य-यथार्थ के साथ शब्द के योग की कसौटी समाज-चित्त है जिसकी स्वीकृति ही भाषा को सार्थक बनाती है और जिसकी स्वीकृति के बिना वह पागल का प्रलाप कही जाती है। पर यह और भी सत्य है कि भाषा सम्पूर्ण भाव-राशि को व्यक्त करने में असमर्थ होती है और उसको अधिकाधिक समर्थ बनाने की योग्यता मनुष्य के संवेदनशील चित्त में है। कवि निरन्तर नव-नव भावाभिव्यक्ति के लिये भाषा को समर्थ बनाता रहता है और इस प्रक्रिया को सामाजिक-चित्त की स्वीकृति भी प्राप्त हुई रहती है। शब्द की विभिन्न वृत्तियां वस्तुतः इस प्रक्रिया की ऐसी स्वीकृति के नामान्तर हैं। अभिधा द्वारा व्यक्त अर्थ केवल संदर्भ-सीमित ही नही होता 'सामान्य' भी होता है। किन्तु कविता के पाठक को अधिक सावधान रहना चाहिए। वह सामान्य अर्थों को व्यक्त करने वाले शब्दों के सहारे ही असामान्य अर्थ पाया करता है। असामान्य अर्थ अर्थात् कवि की विशिष्ट अनुभूति।

महादेवी 'मैं' द्वारा उस अद्भुत वेदना को अभिव्यक्त करती हैं जो नश्वर को चरितार्थ करती है और असीम को सार्थकता देती है। चाहती तो और किसी सर्वनाम या प्रतीक द्वारा वे यह कार्य कर सकती थीं, नहीं करतीं इसका कारण अनुभूति के बाह्य-यथार्थ का क्षणिक-उत्तेजन हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। परन्तु वे जीवन के अतल-गाम्भीर्य में

अनुभव करती है कि शून्य के बिना सत्ता का, अन्धकार के बिना प्रकाश का, अभाव के बिना भाव का, सीमा के बिना असीम का कोई अर्थ नहीं है। परन्तु सत्ता के आते ही शून्य मर जाता है, प्रकाश के मिलते ही अन्धकार दूर हो जाता है, असीम की गाढ-अनुभूति सीमा का लोप कर देती है। कितनी विषम स्थिति है! मिलन की व्याकुलता की परिणति है सीमा का लोप! इस अनादि वेदना से सारा विश्व मनोहर हो उठा है। 'मैं' द्वारा वे किसी बाह्य-यथार्थ के सदर्भ-सीमित अर्थ को नहीं व्यक्त करतीं। विश्व के सारे पदार्थों के मिट-मिटकर सार्थक बनने की अनुभूति को, 'मैं-पन' की भाषा देती हैं, 'सखि, मैं कण-कण पहिचान चली!' जो भी चाहे इस मिट-मिटकर, जल-जल कर, सार्थक बनने की अनुभूति को अपने 'मैं' द्वारा अनुभव कर सकता है। कोई भी अनुभव कर सकता है कि 'इस असीम का सुदर मदिर मेरा लघुतम जीवन रे!' यह सभव होता है उस छदोधारा के द्वारा जो अतल गाम्भीर्य से निकलती है और सारी सृष्टि में व्याप्त उस मूल छदोधारा के अनुकूल होकर बहती रहती है जिससे विराट विश्व रूप लेता है। छन्द केवल पिंगल-विधान नहीं है। सृष्टि में व्याप्त छन्दोधारा के अनुकूल या समान धर्मा पिण्ड स्थित स्पन्दन का नामान्तर है। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में है। हमारी नाडियों का स्पन्दन उसका अत्यन्त स्थूल रूप है। उस विराट छन्दोधारा के प्रतिकूल जाने वाली गति विक्रिया है, असुन्दर है, अशोभन है—अवनिर्मल मानस का विकार है। उसकी मूल धारा भोग की ओर नहीं है, निरन्तर मिट-मिट कर अपने को दीपवर्तिका के समान आत्मदान करने की ओर है। इसी में उसकी सार्थकता है—'प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं!'

प्रकृति के साथ ऐसी एकरूपता कदाचित् हिन्दी के किसी अन्य कवि द्वारा अभिव्यक्त नहीं हुई। यहाँ प्रकृति मानव-चित्त से पृथक् कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो दूर से देखी जाय या जिससे भय पाया जाय या जिसे विजय करने का उल्लास दिखाया जाय। यह असीम अस्तित्व के प्रति वैसी ही प्रतीक्षाकातरा प्रेम-परवशा पीडा का परिदृश्यमान रूप है जिसे मनुष्य का चित्त निरन्तर अनुभव कर रहा है—'जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल, देखोगे तब देव अमरता खेलेगी मिटने का खेल!'

वैदिक ऋषि ने इस समस्त विश्व को 'देवता का काव्य' कहा था—'पश्य देवस्य काव्यम्।' उसके लिये मानव का आन्तर सत्य और बाह्य-यथार्थ एक ही मूल वस्तु के दो पहलू है। दोनो को प्रकाशित करने वाला और फिर भी दोनो मे रमा हुआ जो शान्त-शिव-अद्वैत-तत्त्व है, वही रस है। स्वय 'रस' होकर भी वह रस का आकाक्षी है। यह तत्त्व महादेवी के गीतो मे बहुत ही महनीय होकर प्रकाशित हुआ है। भारतीय साहित्य मे दीपक या दीपशिखा कई प्रकार से परम-सत्य को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से व्यवहृत हुआ है। समाधिस्थ शिव को कालिदासने 'निवात-निष्कम्प' दीपशिखा से तुलनीय कहा था। बौद्ध-शास्त्रो मे जीवन-प्रवाह को दीपशिखा से तुलनीय समझा गया है। सामने पडी हुई वस्तु भी जब दृष्टि-गोचर नही होती तो दीपक उसे उद्भासित करता है। इसलिये उसमे ज्ञापकत्व धर्म का आरोप किया

गया है। परन्तु कदाचित् उसके शलभ को आकृष्ट करनेवाले रूप का उल्लेख नही मिलता। यह कदाचित् फारसी-संस्कृति के सम्पर्क से काव्य का प्रमुख बिंब बना है। कबीरदास ने दीपक को ज्ञापक रूप मे भी देखा था और शलमाकर्षक रूप मे भी। पहले अर्थ मे वह ज्ञान का प्रतीक है और दूसरे रूप मे माया का। महादेवी के गीतो मे ये रूप मिलते हैं, पुराने भी और नये भी, लेकिन सबसे विलक्षण। यहाँ दीपक समर्पण का प्रतीक है, आत्मदान का द्योतक है। जलते रहकर प्रिय के पथ को उद्भासित करने के उल्लास का सूचक है। वह 'शापमय वर' है। जिसे वेदना कहा गया है वह महान् के प्रति अहैतुक आत्मदान का उल्लास है, जिसे मिटना कहा गया है वह सीमा की महिमा का उद्घोष है। महादेवी मे पुरातन काव्य-लक्ष्मी नये रूप मे प्रकट हुई है, भक्ति और प्रपत्ति को नई भाषा मिली है और विरह और अकेलेपन को नये अर्थ का गौरव मिला है। अति परिचित होकर भी अपूर्व है यह दीपशिखा।

महादेवी वर्मा

प्रो० चन्द्रहासन

वियोगी होगा पहिला कवि, आह से उपजा होगा गान,
उमड कर आँखो से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान !

—'पत'

वास्तव मे महादेवी जी की कविता उनकी आँखो से उमड कर अनजान ही वही है। कविवर पत जी की ये पक्तियाँ उनके काव्य पर जितने पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है, उतनी शायद ही किसी पर हो। उनके काव्य मे वियोग सहस्रधा मुखरित हो उठा है।

उनके काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है—वेदना, दुख, विरह अथवा करुणा। वेदना एव करुणा मे हृदय को द्रवीभूत करने की जो शक्ति है, वह अन्य किसी भावना मे नहीं। तभी तो आदिकवि का हृदय द्रवीभूत हो 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्व' मे बह गया। इसी शक्ति से प्रेरित हो कर भवभूति को कहना पडा 'एको रस. करुण एव'। यह करुणा की धारा इतनी व्यापक एव स्निग्ध है कि चिरकाल से ही जीवन को रसमग्न करती रही है। यह सार्वदेशिक एव सार्वकालीन है। पाश्चात्य कवि शेली (Shelley) भी इसी के उपासक थे।

महादेवी जी को भी इस अनन्त व्यापिनी शक्ति से स्नेह है। वे समस्त जीवन को ही विरह का रूप समझती है। वे कहती हैं—

> विरह का जलजात जीवन
>
> विरह का जलजात
>
> वेदना मे जन्म करुणा मे मिला आवास
>
> जीवन ....

परतु जब वे अपनी प्यासी आँखों से सदा ही आँसू मे सागर भरने को कहती हैं तब यह प्रश्न उठता है कि यह चिर पीडा क्यो ? परतु उत्तर भी साथ ही साथ है—

> है पीडा की सीमा यह
>
> दुख का चिर सुख हो जाना।

उर्दू कवि गालिब ने भी यही भाव व्यक्त किए है—

हशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना।
दर्द का हद में गुजरना है दवा हो जाना॥

पर जैसे महादेवी जी अपनी पीडा मे चिर नवीन और सबसे पृथक है, वैसे ही अपने प्रेम मे भी। उनका प्यार एक अनोखे ससार की कल्पना करता है—

चाहता है यह पागल प्यार
अनोखा एक नया ससार।

पीडा के पश्चात् महादेवी के काव्य की मुख्य धारा है—रहस्यवाद। उनका रहस्यवाद संतो और भक्तो का नही। कबीर के रहस्यवाद मे ज्ञान-पक्ष प्रधान और कला-पक्ष गौण है। मीरा के भी गिरधर नागर सगुण तो अवश्य थे, परतु उनमे ईश्वरत्व का अश भी कम नहीं था। परतु महादेवी जी का 'चिर सुन्दर' खोजने पर हमे जीवन मे भी मिल सकता है। इनके काव्य में हमे सूर की तन्मयता और मीरा की भाव-विह्वलता के दर्शन होते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि इनका धरातल कुछ नीचे अवश्य है, पर भाव-भूमि एक ही है। साथ ही साथ महादेवी मे हम जायसी का सूफीमत भी यथेष्ट मात्रा मे पाते हैं। सूफी कवियो का परमेश्वर ब्रह्म हो कर भी प्रेम-स्वरूप था। वही बात महादेवी मे भी है।

महादेवी का काव्य शृखला-बद्ध प्रबध-काव्य नही। वह छोटी-छोटी गीतियो का समूह है। आज का युग व्यक्ति-प्रधान है और गीति-काव्य व्यक्ति-प्रधान काव्य। गीति-काव्य की तीन-चार प्रमुख विशेषताएँ है। वह सभी हमे महादेवी के काव्य मे प्राप्त हैं। उनमे अनुभूति की तीव्रता है, रूप की सक्षिप्तता है, किसी एक विशिष्ट भावना का चित्र है, लय है, गति है, और है सगीत।

रहस्यात्मक और करुणात्मक गीतो के अतिरिक्त सामाजिक अनुभूति भी उनके काव्य में पर्याप्त मात्रा मे है। उन्होने जर्जरित भारत के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त की है। वे कहती हैं—

कह दे मां क्या देखूं।
देखूं खिलती कलियां या,
प्यासे सूखे अधरो को।
तेरी चिर यौवन सुषमा,
या जर्जर जीवन देखूं।

महादेवी जी की भाषा परिष्कृत, प्रौढ, श्रुतिमधुर, ललित एव सस्कृत-शब्दावली से गौरवान्वित है। पत को छोड कर शायद ही कोई कवि इनकी जैसी सरस एवं लालित्यपूर्ण भाषा लिखता हो।

महादेवी को हम केवल कवि रूप मे ही नही पाते अपितु वह एक चित्रकार और अच्छी संगीतज्ञ भी है। आश्चर्य होता है प्रयाग की त्रिवेणी के समान इस ललित कला की त्रिवेणी को देख कर।

फिर सुश्री वर्मा केवल एक श्रेष्ठ कवि ही नही, एक सफल वक्ता तथा गद्य-लेखिका भी है। उनके परिष्कृत, प्रौढ एव परिमार्जित गद्य के दर्शन हमे 'अतीत के चलचित्र', शृंखला की कड़ियाँ, स्मृति की रेखाएँ, और विवेचनात्मक गद्य मे होते हैं। ये ग्रथ महादेवी जी को समझने में यथेष्ट रूप से हमारे सहायक है।

परतु वे कवि रूप मे ही हमारे सामने अधिक आई हैं और आधुनिक युग के वर्तमान कवियो मे वे श्रेष्ठ पद की अधिकारिणी है।
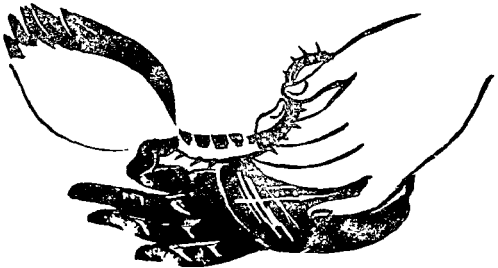
महादेवी का छायावाद

श्री यशपाल

हिन्दी कविता मे महादेवी नाम को छायावाद से पृथक कर देना सम्भवत उतना ही कठिन है जितना धूप मे शरीर को छाया से। कुछ वर्ष पूर्व सामयिक परिस्थितियो और भावनाओ के कारण हिन्दी कविता क्षेत्र मे छायावाद के प्रति असतोष का ववडर उठ खडा हुआ था। उस ववडर की कुछ स्मृति, उसका प्रभाव अनुभव करने वाला म शेष होगी। वह ववडर तो उड गया परन्तु अपने साथ छायावाद की देन को नही उडा ले गया। कुछ समय के लिये उस क्षुब्ध वातावरण मे छायावाद को समृद्ध और सप्राण बनाने वाले अनेक समर्थ कवियो ने सामयिक पुकार के तोष के लिये, छायावाद की परिधि के बाहर भी अपने रचना सामर्थ्य का परिचय देने का यत्न किया था। परन्तु छायावाद के मदिर की महादेवी ने छायावाद के अन्त पुर की परिधि लाँघने की उत्तेजना अनुभव न की। महादेवी जी ने क्षोभ म असतोष की उस भावना का उपेक्षापूर्ण मौन मे तिरस्कार भी नही किया। उन्होने अपने उद्‌गार और अभिव्यक्ति के प्रति अविचलित आत्मतोष और धैर्य से अपने छायावाद की अन्त प्रेरणा और दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण का यत्न अवश्य किया।

हिन्दी कविता मे छायावाद के प्रति असतोष-भावना के कारण क्या थे? सभवत परिवर्तन और प्रगति की सामयिक उग्र भावना के उस सक्षिप्त ज्वार के समय उग्र प्रगति-कामियो को छायावादी कविता की प्रवृत्तिया और अभिव्यक्तियो म उग्र प्रगति और परिवर्तन के लिये आवश्यक असतोष और व्यग्रता की भावना और अभिव्यक्ति नही मिल रही थी। उस समय सार्वजनिक भावना कुछ ऐसी उद्वलित हो गयी थी कि लोग युद्धदेहि की ललकार ही सुनना चाहते थे। प्रगति के प्रेरक साहित्यालोचको को अपनी व्यग्रता के कारण हिन्दी छायावादी कविता मे प्रगति की बाधक या विरोधी अनेक प्रवृत्तियाँ उदाहरणत यथावत से सतोष और उसका समर्थन, आत्मताप की निष्क्रियता, इह जीवन से परागमुख अध्यात्म-लीनता और लौकिक सघर्ष से पलायनवाद की प्रवृत्तियाँ दिखायी दे रही थी। यह ता है कि हिन्दी छायावादी कविता मे अवाछनीय परिस्थितियो के परिवर्तन और प्रगति के लिये असतोष की हुकार नही थी परन्तु क्या उस कविता मे विशेष कर महादेवी की कविताओ मे, हमे यथार्थ की उपेक्षा, विकासोन्मुख जागरूकता की अवहेलना, सतोष की प्रवचनाजन्य निष्क्रियता की सराहना और इहलोक परागमुख आत्मलीनता की प्रेरणा मिलती है?

महादेवी ने छायावाद से अपने लगाव के सबध मे आत्म-निवेदन में कहा है—"मनुष्य

का निरंतर परिष्कृत होता चलने वाला यह मानसिक जगत वस्तु जगत के संघर्ष से प्रभावित होता है, उससे संकेतों में अपनी अभिव्यक्ति चाहता है। परन्तु उसके बंधनों को पूर्णत: स्वीकार नहीं करना चाहता। अत: जो कुछ प्रत्यक्ष है उतना ही मनुष्य नहीं कहा जा सकता। उसके साथ-साथ उसका जितना विस्तृत और गतिशील अप्रत्यक्ष जीवन है, उसे भी समझना होगा, प्रत्यक्ष जगत में उसका मूल्यांकन करना होगा। अन्यथा मनुष्य के संबंध में हमारा सारा ज्ञान अपूर्ण और समाधान अधूरे रहेंगे।" महादेवी जी ने मानव को या उसके मानसिक जगत को भौतिक जगत से पृथक किसी अनन्त पूर्ण चेतन का अंश नहीं, स्थूल वस्तु जगत का अंश और उससे प्रभावित उत्तरोत्तर विकसित माना है। वे मानव की चरम परिणति की कल्पना किसी लोकोत्तर पूर्ण शाश्वत लक्ष्य में समाविष्ट हो जाना नहीं अपितु मानव के निरंतर परिष्कृत होते चलने वाले (विकासशील) मानसिक जगत की परिणति और समाधान अभी जो कुछ उसके लिये अगम्य और अप्रत्यक्ष हैं उसे भी प्राप्य और प्रत्यक्ष बना सकने में समझती हैं। 'जगन्मिथ्या' के काल्पनिक ज्ञान द्वारा लोक-संघर्ष से निर्लिप्ति में नहीं। ऐसे दृष्टिकोण को इहलोक के संघर्ष से विरत, अयथार्थवादी या पलायनवादी कैसे मान लिया जा सकता है।

महादेवी जी की कविता के दृष्टिकोण को स्थूल जगत से संबद्ध और इहलोकपरक बताने के लिये किसी जोर-जबर व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। कवयित्री के अपने स्पष्ट शब्द हैं—"ज्ञान क्षेत्र के 'तत्त्वमसि', 'सर्वखल्वमिदं ब्रह्म', 'सोऽहम्' आदि ने उस युग के चिंतन को कितनी विविधता दी है, यह कहना व्यर्थ होगा। तत्त्व चिंतन के इतने विकास ने मनुष्य को एक ओर व्यावहारिक जगत के प्रति वीतराग बना कर निष्क्रियता बढ़ायी और दूसरी ओर अनधिकारियों द्वारा प्रयोग रूप सिद्धान्तों को सस्ता बन जाने दिया, जिसमें रूढ़िवाद की सृष्टि संभव हो सकी". कवयित्री के यह शब्द स्पष्ट कर देते हैं कि वह मानव का लक्ष्य जीवन का निर्माण मानती हैं या जीवन से निर्वाण।

महादेवी से यह शिकायत तो हो सकती है कि उन्होंने व्यवस्था और सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के लिये सामूहिक संघर्ष की प्रेरणा नहीं दी परन्तु उनसे जीवन से उपराम शान्ति या नियति से संतोष के सुझाव की शिकायत नहीं हो सकती। महादेवी ने तुमुल संघर्ष के लिये भेरीनाद जरूर नहीं किया परन्तु अपनी वंशी से मानव को चेतना और सतत सक्रियता का मधुर उद्बोधन अवश्य दिया है। उनकी अत्यंत आत्मरति की कल्पनायें भी जीवन-संगीत की ध्वनि से गुंजरित हैं—"सिखाने जीवन का संगीत तभी तुम आये इस पार।" उनके स्वप्न भी काल्पनिक चिर सुख के नहीं, लौकिक जीवन के हैं—

स्वप्न लोक के फूलों में कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण!

आकर तब अज्ञात देश से
जाने किस की मृदु झंकार
गा जाती है करुण स्वरों में
कितना पागल है संसार ।

निर्माण के प्रयत्नों में विफलता भी कवयित्री को हतोत्साह नहीं करती—

"स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक प्रसार।
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण,
बीज करता असख्य निर्माण।
सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान ।
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में ही पूर्ति विकास ।

महादेवी जी ने अपने दृष्टिकोण के परिचय में स्वीकार किया है कि वे सत्य को लक्ष्य मानती हैं। उनका सत्य प्रत्यक्ष जगत का जीवन से परखा जा सकने वाला, अनुभवगम्य सत्य है, परन्तु इस सत्य की प्राप्ति का साधन वे अपनी साधना में बनाना चाहती हैं सौन्दर्य को। वाङ्मय में सौन्दर्य के साधना सूक्ष्मता और सांकेतिकता। महादेवी सूक्ष्म संकेत के अवलम्ब की उपेक्षा कभी कर नही सकी। इसीलिये उनकी जीवन के निर्माण, परिष्कार और प्रगति की प्रेरणा भी सूक्ष्म संकेतों और प्रतीकों द्वारा वाणी पाती है। यदि उनकी कुछ कविताओं को आध्यात्मिक व्यंजना या अभिव्यक्ति इश्क हकीकी मानने का ही आग्रह हो तो वहाँ भी अतिप्रत्यक्षता या स्थूलता नही आ सकी, वे संकेता की परिधि से बाहर नही निकली। उदाहरणार्थ—

मिलन वेला में अलस तू
सो गयी कुछ जाग कर जब
फिर गया, वह स्वप्न में !
आ रही प्रतिध्वनि वही फिर
नींद का उपहार ले !
चल सजनि दीपक बार ले !

महादेवी जी को आध्यात्मिक प्रेम या भगवत मिलन को भी सूक्ष्म संकेता में आगे स्थूल प्रतीकों में उपस्थित करना स्वीकार नहीं। मीरा की भाँति उन्हें आध्यात्मिक प्रेम और परमात्मा और आत्मा के मिलन में भी, 'आधी रात में प्रेम नदी तीर दर्शन', कुसुम्बी साड़ी, सेज

और रमण की स्थूलता सह्य नही। जब सेज के प्रतीक का लोभ दुर्दम ही हो गया तो—

अब आओ पलको मे
स्वप्नो से सेज बिछाऊँ।

फूल तक की स्थूलता और बोझ स्वीकार न हुआ। उनकी अपनी विशेषता ही सूक्ष्म साकेतिकता है। प्रसग चाहे निर्माण के सघर्ष का हो या अध्यात्म रति का। उन्हे न भूषण की ललकार, न मीरा के स्पष्ट रति-प्रतीक स्वीकार हैं।

महादेवी जी की एक प्रसिद्ध कविता उनकी मौन निर्माण और मूक सघर्षपरक अभिव्यक्ति और प्रवृत्ति को स्पष्ट कर देती है—

पथ रहने दो अपरिचित,
प्राण रहने दो अकेला,
और होगे चरण हारे
और है जो लौटते दे शूल को सकल्प सारे।
दुख व्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद
बाँध देंगे अक ससृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।

जिन प्राणो को अपरिचित पथ म अकेले होने का भय नही, जो प्राण निर्माण के उन्माद मे दुख और शूलो से परास्त न होकर अनन्त यात्रा का व्रत लिये हैं, जो पद शूल, दुख, निराशा के तिमिर को स्वर्ण वेला मे परिवर्तित करने का सकल्प लिये हैं, उन्हे काल्पनिक आत्मरति मे डूबे या पलायनवादी नही माना जा सकता। ऐसे सघर्ष-व्रती में आत्मरति की गुजाइश कहाँ! इन स्वरो मे, या इस छायावाद मे जीवन-सघर्ष के लिये युद्धदेहि का भेरीनाद न हो परन्तु मानव की सचेत जिजीविषा की वशीध्वनि अवश्य है।

महादेवी जी की रहस्य-दृष्टि

डॉ० भगीरथ मिश्र

काव्य के अन्तर्गत गहरी अनुभूति के क्षणों में प्राय रहस्य-दृष्टि प्रकट होती है। रहस्य-भावना विशेष रूप से अखण्ड सत्य को साकार करने की भावना है। अखण्ड सत्य का साक्षात्कार करना रहस्योपासना है और उसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति रहस्यवादी कविता बन जाती है। प्रसाद जी के अनुसार काव्य की मुख्य धारा रहस्यवाद है। प्राय इसका प्रधान रूप अलौकिक आलम्बन के प्रति भावात्मक सम्बन्ध की विवृत्ति मे देखा जाता है, परन्तु इस भावना की मुख्यता के साथ काव्य में इसके अन्य रूप भी परिलक्षित होते है, जहाँ जीवन और जगत को देखने का दृष्टिकोण बदल जाता है। जीवन, जगत और परमचेतन के बीच शाश्वत और अखण्ड सम्बन्धो की अनुभूति और साक्षात्कार रहस्य-दृष्टि है। कवि इसी दृष्टि को लेकर व्यापक सत्य को पकडने का प्रयत्न करता है।

इस प्रकार रहस्यवाद की मूल भावना ब्रह्म और जीव या परमात्मा-आत्मा के घनिष्ठ सम्बन्ध की अनुभूति है। इसके कई रूप हो सकते है। ब्रह्म, जीव और जगत इन तीन के पारस्परिक भावात्मक सम्बन्ध जितने भी प्रकार स अभिव्यक्त किये जा सकें, रहस्य-दृष्टि को उतने ही प्रकारो मे हम प्राप्त कर सकते है। क्योंकि इन सम्बन्धो का अनुभव करने वाला जीव है, अत प्राय उसी पक्ष से इनकी अभिव्यक्ति हुई है। इस पक्ष का सबस उच्च रूप अद्वैत या 'अह—ब्रह्मास्मि' की अनुभूति के प्रकाशन मे देखा जाता है। यह अनुभूति ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति है और रहस्यानुभूति की चरमसीमा है। ब्रह्म के साथ अपना तादात्म्य करना जिस प्रकार हो सकता है उसी प्रकार अपने म ब्रह्म को देखना भी सभव है और इसी प्रकार जगत मे ब्रह्म को देखने की स्थिति है। इन दोनो की स्थितियो का एक समन्वित रूप हो सकता है जिसके अन्तर्गत अपने को ब्रह्म रूप अनुभव करना और फिर उस रूप से अपने को जगत मे परिव्याप्त देखने की स्थिति है। इसका एक प्रमुख उदाहरण श्रीमद्-भागवद्गीता मे मिलता है जिसमे ब्रह्म अपने को 'इदम्' अर्थात् जगत् मे प्रतिबिम्बित या प्रतिक्षेपित रूप मे प्रकट करता है। यह स्थिति अत्यन्त उच्च और अत्यन्त व्यापक तथा दुर्लभ स्थिति है।

'अह' का ब्रह्म से सम्बन्ध एकत्व मे भी प्रकट होता है जो अभेद रूप है तथा तद्रूपत्व मे भी प्रकट हो सकता है जो विविध सम्बन्धो का रूप है। अभेदत्व ज्ञानी की अनुभूति है और विविध सम्बन्धानुभूति भक्त की। ब्रह्म के साथ विविध सम्बन्धों की अनुभूति ही भक्ति-भावना की विभिन्न धाराओ मे प्रस्फुटित हुई है, जिनमे दास्य, सख्य, वात्सल्य, दाम्पत्य की

भावनायें प्रधान हैं। ज्ञानी कबीर की अद्वैत-भावना के अतिरिक्त भक्त कबीर के ब्रह्म के साथ दाम्पत्य भावना की अनुभूति कम महत्व की नहीं। उन्होंने अपने को अनेक स्थलों पर ब्रह्म राम की पत्नी के रूप में प्रकट किया है। उनके विचार से पति राम को पाने के लिए लौकिक दृष्टि से मरण वास्तव में विवाह है। इसीलिए वे कहते है —

कब मरिहौ कब पाइहौं पूरन परमानन्द।

दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि सम्बन्धों की अभिव्यक्ति सगुणोपासकों के द्वारा अधिक हुई है। सूर, तुलसी आदि इस प्रसग मे उल्लेख्य है। मीरां का दाम्पत्य भाव कबीर के समान निर्गुण के प्रति न होकर सगुण कृष्ण के प्रति था। ये सब सम्बन्ध अहं और ब्रह्म के सम्बन्ध हैं जिनकी अनेक प्रकार की विवृत्ति रहस्यवाद के अन्तर्गत आती है।

महादेवी जी की रहस्यानुभूति मे यह प्रथम प्रकार की रहस्य-दृष्टि विविध-रूपो मे मिलती है। इस स्थिति के अन्तर्गत अभेद की भावना तो नही दिखलाई देती, पर दाम्पत्य और प्रिय-प्रेयसी के सम्बन्धो का अतिशय विस्तार इनके गीतो मे प्रकट हुआ है। मूलत ये अपने को ब्रह्म की माया या शक्ति के रूप म अनुभव करती है और ऐसी दशा मे प्रेयसी और प्रियतम का सम्बन्ध भी एक प्रकार से भ्रम है। उन्होने स्पष्ट किया है —

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया मे रहस्यमय!
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या?
तुम मुझमे प्रिय फिर परिचय क्या!!

इस कथन से स्पष्ट है कि वे परम चेतन की अनुभूति अपने मे करती है और सारी सृष्टि के क्रिया-कलाप मे वे उसका सहयोग देती है। पर यह अनुभूति सर्वत्र नही है।

अधिक व्यापक रहस्यानुभूति उनके प्रिय और प्रेयसि या दाम्पत्य-सम्बन्ध की मिलती है। यह सम्बन्ध उनका उस अमर और चिरन्तन से है जो सर्वत्र व्याप्त है। इसीलिए वे अपने को भी चिर सुहागमयी अनुभव करती है। उनकी यह अनुभूति मीरां की अनुभूति से काफी मेल खाती है। वे कहती हैं —

प्रिय चिरन्तन है सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मै।

और इसी प्रकार —

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी,
प्रिय के असीम अनुराग भरी

पालूँ जग का अभिशाप कहाँ,
प्रति रोमों में पुलकें लहरीं,
जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर
प्रिय के संदेशों के वाहक
मैं सुख दुख भेटूँगी भुजभर ॥

दाम्पत्य या प्रिय-प्रेयसि के मूल सम्बन्धो की अनुभूतियाँ कभी मिलन-सुख में और कभी विरह-दुख में प्रकट हुई हैं। रहस्य-भावना के अन्तर्गत मिलन की अनुभूतियाँ क्षणिक और विरह की अनुभूतियाँ अधिक व्यापक होती हैं और विरह की स्थिति में ही द्वैतत्व का अधिक अनुभव भी होता है। इसीलिए उनके अनेक गीतो में इस सम्बन्ध की सुखद-अनुभूतियों के साथ-साथ विरह की वेदना फूटी पड़ती है। उदाहरण के लिए उनका एक निम्नलिखि गीत है :—

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

मेरी आँखों में ढलकर
छवि उसकी मोती बन आई;
उसके घन-प्यालों में है
विद्युत सी मेरी परछाँई;
नभ में उसके दीप, स्नेह
जलता है पर मेरा उनमें;
मेरे हैं यह प्राण, कहानी
पर उसकी हर कम्पन में,
यहाँ स्वप्न की हाट वहाँ अलि, छाया का मेला सा है।

उसकी स्मित लुटती रहती
कलियों में मेरे मधुवन की;
उसकी मधुशाला में विकती
मादकता मेरे मन की;
मेरा दुख का राज्य मधुर
उसकी सुधि के पल रखवाले,
उसका सुख का कोष, वेदना
के मैंने ताले डाले;
वह सौरभ का सिन्धु मधुर जीवन मधु की वेला सा है।

मुझे न जाना अलि ! उसने
जाना इन आँखों का पानी;
मैंने देखा उसे नहीं
पद ध्वनि है केवल पहचानी,
मेरे मानस में उसकी स्मृति
भी तो विस्मृति बन आती,
उसके नीरव मन्दिर में
काया भी छाया हो जाती,
क्यों यह निर्मम खेल सजनि ! उसने मुझसे खेला सा है।

अपनी इस अनुभूति के साथ वे सहज पुजारिन के रूप में रहना चाहती हैं और इनका यह रूप कबीर की सहज समाधि के रूप में है जैसा कि कबीर ने अपनी सहज समाधि के वर्णन में कहा है —

जहँ जहँ डोलौं सो पँकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत पूजौं और न देवा॥
कहौं सो नाव सुनौं सो सुमिरन खांव पिऔ सो पूजा।
गिरह उजार एक सो लेखौ, भाव न राखौ दूजा॥

इसी प्रकार की भावनाओं से युक्त महादेवी जी का नीचे लिखा पद है —

क्या पूजा क्या अर्चन रे
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
पद रज धोने को उमडे आते लोचन में जल कण रे।
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीडा का चन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बने उडते जाते है, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे।

उपर्युक्त गीत में जीवन की समर्पित भावनाओं का स्वरूप स्पष्ट होता है जिसके अन्तर्गत जीवन के सभी क्रिया-कलाप अपने लिए न होकर आराध्य या प्रिय के लिए होते हैं। पूजा की इस अनुभूति के साथ महादेवी जी के गीतों में वह स्थिति भी प्रकट हुई है जिसमें वे अपने को उस परम चेतन की क्रिया-कलाप के रूप में देखती हैं। वे जड और चेतन दोनो ही तत्वो में अपनी परिव्याप्ति अनुभव करती है और इस दृष्टि से अव्यक्त की समग्र

अभिव्यक्ति के साथ उनका तादात्म्य है। उनके एक गीत 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' में यह भाव पूर्णत दृष्टिगोचर होता है। इस गीत की नीचे लिखी पंक्तियाँ इस भावना को विशेष रूप से व्यक्त करने वाली है —

नाश भी हूँ मैं अनत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार की आघात भी झकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

इस प्रकार अह और ब्रह्म के सम्बन्ध की जो स्थितियाँ है उनमे माधुर्य भाव का ही विस्तार देखने को मिलता है।

दूसरी स्थिति ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध की अनुभूति है। इस सम्बन्धानुभूति के दो पक्ष हैं, एक, जगत के पदार्थों या प्रकृति म ब्रह्म की परिव्याप्ति का अनुभव। यह अनुभव उसके विराट स्वरूप, रूप दर्शन गुणो का प्रभाव आदि म देखा जा सकता है। दूसरा पक्ष है जिसमें जगत की वस्तुएँ या प्रकृति स्वय चेतन रूप मे प्रकट होती है और वह स्वय ब्रह्म से मिलने के लिए आतुर है। हिन्दी साहित्य के प्राचीन काव्यो म इन दोनो स्थितियो का बडा मार्मिक उद्घाटन हुआ है। तुलसी और सूर के विराट-वर्णन इसी पक्ष के अन्तर्गत हैं। रामचरितमानस मे मन्दोदरी द्वारा जो कहा गया है —

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अग अग विश्रामा॥
भृकटि विलास भयकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥

आदि म जो विराट का वर्णन हुआ है वह इसी प्रकार का है। सूरसागर मे—

हरि जू की आरती बनी,
कच्छप अध आसन अनूप अति बाती सहस फनी।

वाले पद मे विराट-वर्णन भी इसी दृष्टिकोण से किया गया है। सत कवि नामदेव भी इसी भावना से भरे हुए कहते हैं —

कहा लै आरती दास करै
सात समुद्र जाके चरन निवासा कहा भया जल कुभ भरै।
कोटि भानु जाके नख की शोभा कहा भयो कर दीप धरै॥

इस भावना का दूसरा स्वरूप वहाँ मिलता है जहाँ उस परमब्रह्म के प्रभाव से ससार की अनेक वस्तुएँ और जीव प्रभावित और द्योतित दिखलायी देने हैं। इस प्रकार की भावना जायसी की रहस्योक्तियों म विशेष रूप से लक्षित होती है। उन्होंने कहा है —

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥

इसी प्रकार जायसी उसके प्रभाव से सभी पदार्थों को विद्ध रूप मे वर्णित करते हैं। वे कहते हैं —

इन बानन अस को जो न मारा। बेधि रहा सिगरो ससारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। ते सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि वहि राखी। साखी ठाढ देहिं सब साखी॥

इस स्थिति का दूसरा पक्ष वह है जिसमे प्रकृति चेतन रूप है और वह ब्रह्म से मिलने का प्रयत्न करती है। प्रकृति की वस्तुएँ अभिसार करती है और दर्शन के लिए उद्यत एव प्रयत्नशील है। हिन्दी काव्य की पुरानी रहस्यवादी परम्परा मे इस स्थिति का सुन्दर वर्णन मिलता है। जायसी ने पद्मावत मे लिखा है —

पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तइस लोटि भुइँ रहा॥
अगिनि उठी जारि बुझी निआना। धुआँ उठा उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा उठि पायनि छुआ। बहुरा आई रोई मुँह चुआ॥

रहस्यदृष्टि के इस पक्ष मे प्रकृति जड नहीं वरन् चेतन है और वह माया रूप भी नही है। जिस प्रकार से चेतन जीव परम चेतन मे समाविष्ट होने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार की भावना जड पदार्थों मे भी परिव्याप्त है। यह बात इस दृष्टिकोण द्वारा प्रकट होती है। प्रसाद की कामायनी मे भी रहस्यभावना के इस दृष्टिकोण का सकेत मिलता है। उन्होंने लिखा है —

सब कहते है खोलो खोलो, छवि देखूँगा जीवन धन की॥
आवरण स्वयं बनते जाते है भीड लग रही दर्शन की॥

महादेवी जी के गीतो म इस द्वितीय स्थिति की रहस्यभावना भी मिलती है। इस स्थिति के दो पक्षो मे द्वितीय पक्ष का विवरण विशेष रूप से प्राप्त होता है। प्रथम पक्ष को स्पष्ट करने वाले गीत कम है और जो दो एक गीत है वे प्रकृति की विराट कल्पना प्रस्तुत करते है, परमब्रह्म की नही। फिर भी इन गीतो को उसी कोटि मे रक्खा जा सकता है जिस कोटि मे तुलसी और सूर का विराट-वर्णन है। इन भक्त कवियो के विराट-वर्णन के समान ही इनका निम्नलिखित एक गीत द्रष्टव्य है —

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा सुन्दर नर्तन।

आलोक तिमिर सित-असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मजीर,
उडता झझा मे अलक जाल,
मेघो मे मुखरित किकिन स्वर ।
रवि-शशि तेरे अवतस लोल,
सीमन्त जटित तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्रधनुष,
हिमकण बन झरते स्वेद निकर ।
युग है पलको का उन्मीलन,
स्पन्दन मे अगणित लय जीवन
तेरी श्वासो मे नाच नाच
उठता बेसुध जग सचराचर ।
हे सृष्टि-प्रलय के आलिंगन,
सीमा असीम के मूक मिलन,
कहता है तुझको कौन घोर,
तू चिर रहस्यमयि कोमल
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।

इस पद मे प्रकृति या परब्रह्म की शक्ति के विराट स्वरूप का चित्रण हुआ है ।

इस स्थिति का दूसरा पक्ष महादेवी जी के गीतो मे बडी विशदतापूर्वक चित्रित है जिसके अन्तर्गत प्रकृति स्वय चेतन रूप मे दिखलाई गई है और वह प्रिय से मिलने के लिए स्वत प्रयत्नशील है । महादेवी जी के अनेक गीतो मे यह दृष्टिकोण परिव्याप्त है । प्रकृति के अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप प्रिय के मिलन की आतुर प्रतीक्षा मे है और वह उससे मिलने के लिए लालायित है । इस प्रकार का भाव प्रकट करने वाले एक गीत की कुछ पक्तियाँ निम्नलिखित है —

पिक की मधुमय वशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली
अरुण सजल पाटल बरसाता
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अक धर, दर्पण सा सर
आँज रही निशि दृग इदीवर
जीवन जल कण से निर्मित सा
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा

सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिरनूतन सकरुण पुलकित सा,
तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर-धर
आज नयन आते क्यों भर-भर।

इस पद मे प्रकृति के उल्लास और सजीव शृगार के वर्णन द्वारा यह कल्पना की गई है कि प्रिय आने वाले हैं और प्रकृति उनसे मिलने के लिए अपना सजाव-शृगार कर रही है। कवयित्री ने यह भी चित्रित किया है कि वह आकर मिलता है और प्रकृति के विभिन्न तत्वों को नवजीवन और उल्लास प्रदान करता है। उसका यह मिलन उसकी मुस्कान या उसकी मधुर शब्दावली के रूप मे है जैसा कि नीचे के छन्द से प्रकट है —

जाने किसकी स्मित रुम झूम,
जाती कलियो को चूम चूम,
उनके लघु उर मे जग, अलसित
सौरभ-शिशु चल देता विस्मित,
हौले मृदु पद से डोल डोल,
मृदु पखुरियो के द्वार खोल,
कुम्हला जाती कलिका अजान
वह सुरभित करता विश्व धूम।

इन वर्णनो से यह स्पष्ट है कि उस परम चेतन का जगत या प्रकृति से भी भावात्मक सम्बन्ध है पर उस सम्बन्ध का अनुभव करना सबके लिए सम्भव नही। इस सम्बन्ध का दर्शन वही कर सकता है जो रहस्यवादी दृष्टि से सम्पन्न हो।

इस रहस्यानुभूति की तीसरी स्थिति वह है जिसमे अह और इद का सम्बन्ध व्यक्त होता है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे इस स्थिति सम्बन्धी भावना की विवृतियाँ अधिक नही। प्राय जो इस अनुभूति की द्योतक रचनाएँ है वे किसी सन्दर्भ मे सुख-दुख से प्रभावित प्रकृति के रूप है जिनमे रहस्य की दृष्टि बहुत क्षीण है और वह स्वरूप प्राय लौकिक भावनाओ के उद्दीपन रूप मे अधिक स्पष्ट हुआ। सूर का पद 'लखियत कालिन्दी अतिकारी। मनहु वियोग श्याम सुन्दर के भई विरह जुर जारी॥' जैसी उक्तियाँ उद्दीपनात्मक हैं और आलकारिक रूप मे ही अधिक प्रकट हुई है। परन्तु महादेवी जी के गीतो मे इस स्थिति का बडा विशद चित्रण है जिसमे प्रकृति और व्यक्ति एक ही प्रकार की भावनाओ से सम्पन्न है और एक दूसरे के भावो से आप्लुत। इस स्थिति के वर्णन मे कही प्रकृति भावमयी रूप मे चित्रित की गई है, कही वह स्वय कोई सन्देश देती है, कही दुखद परिस्थिति मे सान्त्वना प्रकट करती है और इस प्रकार से वह रहस्य-साधिका के लिए सखी का काम करती है।

इन विविध भावनाओं को व्यक्त करने वाले अनेक गीत उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। वसन्त रजनी का इस प्रकार का एक चित्र नीचे लिखी पंक्तियों में देखा जा सकता है :—

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि
मलयानिल का चल दुकूल अलि
चिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी।
सकुचती आ वसन्त रजनी।
सिहर सिहर उठता सरिता उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधाभर,
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी।
सिहरती आ वसन्ती रजनी।

इन पंक्तियों में साधिका ने वसन्त रजनी का आवाहन किया है और उसके विविध भाव सकुल रूप को स्मरण कर तदनुरूप अपनी अनुभूतियों के साथ तादात्म्य स्थापित किया है।

इसी स्थिति का एक रूप ऐसा भी मिलता है जिसमें कवयित्री ने संसार को उदास और दुखित देखकर प्रकृति से उसे दुलराने और बहलाने की प्रार्थना की है। यह उसके वात्सल्य भाव को जगाने का उपक्रम है। इस भाव को व्यक्त करने वाला निम्नलिखित पद दृष्टव्य है —

इन स्निग्ध लटों से छा देता
पुलकित अंकों में भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल,
दुलरा देना बहला देना,
यह तेरा शिशु जग है उदास,
रूपसि तेरा घन-केश-पाश।

महादेवी जी की रचनाओं में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें प्रकृति को सन्देश और संकेत देने वाली सखी के रूप में देखा गया है। प्रिय से मिलन की प्रतीक्षा में आतुर व्यक्ति के लिए प्रकृति के क्रिया-कलाप वास्तव में कुछ न कुछ संकेत करते ही हैं। इसीलिए वे कभी उमड़े हुए बादलों से और मुस्कराने वाले आकाश से पूछती हैं कि तुम क्या प्रिय के आगमन

का सन्देश लाये हो। उनके निम्नलिखित पद में कितनी उत्सुकता और विषादपूर्ण विस्मय भरा हुआ है जब वे कहती हैं :—

लाये कौन सन्देश नये घन।
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय मे उसके
उमडे री पलकों के सावन
लाये कौन सन्देश नये घन।

सुख दुख से भर
आया लघु उर
मोती से उजले जल कण से
छाये मेरे विस्मित लोचन।
लाये कौन सन्देश नये घन।

यह विस्मय की स्थिति बहुविध सुखद एव रोमहर्षक अनुभूतियो मे परिणत हो जाती है जब उन्हे मुस्कराता हुआ आकाश प्रिय का सन्देश देने वाला दिखलाई देता है वे इन अनुभूतियो से भरी पूछ उठती है —

मुस्काता संकेत भरा नभ,
अलि क्या प्रिय आने वाले है।

और इसके साथ ही वे जो अनुभव करती है कि वह बडा आह्लादमय है, उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन,
रोम रोम मे होता री सखि एक नया उर-का-सा स्पन्दन।
पुलको से भर फूल बन गए
जितने प्राणो के छाले है!
अलि क्या प्रिय आने वाले है?

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महादेवी जी के लिए प्रकृति सजीव, चेतन, सवेदनशील और सचेष्ट है। वह चेतन व्यक्तित्व से भावात्मक सम्बन्धो मे ओत-प्रोत है। वह सुख मे सुखी और दुख मे दुखी है और प्राणों को अनेक प्रकार के सकेत देती रहती है। यह सब 'अह' और 'इद' के भावात्मक सम्बन्ध की रहस्य-दृष्टि है।

✓ पूर्वोक्त विवेचन से यह भलीभाँति स्पष्ट होता है कि महादेवी जी की रचनाओं में रहस्यानुभूति की अहं, इदं और ब्रह्म से सम्बन्धित तीनों स्थितियाँ बड़े सहज भाव से चित्रित हुई हैं और इन सब के परिणाम स्वरूप उनके जीवन में एक करुणापूर्ण भावना का संस्कार जागृत हुआ है। यद्यपि गहरी रहस्यानुभूतियों से युक्त महादेवी जी के मन में स्थूल एवं जडताग्रस्त संसार के लिए जो प्रतिक्रिया है वह अजनबीपन की है जिससे युक्त होकर ही उन्होंने कहा है—"अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गयी परदेशिनी री"। परन्तु इस संसार के जीवन को प्रधानतया दुःख और जडता से युक्त मानकर उन्होंने वेदना का मार्ग अपनाया। इस मार्ग पर चलते हुए उन्होंने परम्चेतन प्रिय की खोज को ही मुख्य ध्येय के रूप में स्वीकार किया। इसीलिए उन्होंने कहा है :—

वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँख मिचौनी यह अपनी
जीवन में खोज तुम्हारी है,
मिटना ही तुमको छू पाना।

और इस दृष्टिकोण से युक्त उन्होंने प्रिय की अनुभूति को ही दुःखानुभूति के रूप में देखा। इसीलिए वे कहती हैं :—

तुम दुख बन इस पथ से आना,
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना।

इस दुःख के आधार को लेकर वे विरह में चिर होना चाहती हैं। यही दुःख की भावना संसार के साथ उनकी एकात्मकता को विकसित करती है और वे सभी को यह सन्देश देना चाहती हैं कि वे अपने आस-पास व्यापक संसार के दुःख का अनुभव करें। उनका कथन है :—

मेरे हँसते अधर नहीं;
जग की आँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलियाँ देखो।

उनका यह सन्देश संसार के लिए ही नहीं वरन् अपने प्रिय के लिए भी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके दृष्टिकोण से जीवन का शाश्वत रूप दुःखात्मक है क्योंकि यह मूलतः प्रिय विछोह की स्थिति है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग की। ऐसी दशा

में हँसी और सुख क्षणभंगुर है। दुख की भावना से भरी आकाश में उमड़ कर बरसने और मिट जाने वाली बदली उनके जीवन की प्रतीक है। जैसा कि उनके गीत से स्पष्ट है —

मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय मेरा इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

इस प्रकार यह बात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि महादेवी जी ने जीवन और जगत को अखण्ड रूप में देखा है और उनकी दृष्टि में ये दोनों उस परम चेतन के क्रिया-कलाप के अंश हैं और रहस्यद्रष्टा को इस क्रिया-कलाप में अपना सहयोग देना आवश्यक होता है। इस सहयोग का दायित्व तभी पूरा हो सकता है जब कि व्यक्ति अपनी अतिशय संवेदना और करुणापूर्ण भावना को विकसित करके जीवन और जगत को देख सके। महादेवी जी इसी दृष्टि से ओत-प्रोत हैं।

महादेवी का काव्य

डॉ० इन्द्रनाथ मदान

महादेवी के काव्य का सतुलित मूल्याकन जितना अपेक्षित है उतना ही यह उपेक्षित रहा है । इसका कारण समझ म नही आ रहा है । इनके काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे अनेक असगत धारणाएँ भी रूढ हो चुकी है, अनेक भ्रान्तियाँ भी फैल चुकी है। इसके आशिक मूल्याकन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि इसका विवेचन आरोपित धारणाओ का शिकार रहा है। आलोचको ने इनकी रचनाओ से गुजरने की बजाय या इसकी राह से गुजरने की बजाय इस पर अपनी राह को लादना आवश्यक समझा है । जिससे किसी भी काव्य का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नही हो सकता । महादेवी के काव्य के बारे में इन प्रश्नो का उठाना असगत न होगा । क्या यह छायावादी बोध से अनुप्राणित है या रहस्यात्मक छायावादी बोध से या रहस्यावादी बोध से । एक के अनुसार यह छायावादी बोध से रिक्त है और दूसरे के अनुसार यह इससे स्पन्दित है और तीसरे के अनुसार इस मे दोनो की मिलावट है और इसलिए इस में रहस्यवादात्मक छायावादी बोध है। इस तरह का मूल्याकन अराजकता तथा सकुलता की स्थिति को ही गहरा सकता है । इस स्थिति के मूल में महादेवी की काव्य शैली है जो प्रतीकात्मक है । जब तक इनके प्रतीको को एकत्रित नही किया जाता और गीतो के सन्दर्भ मे इनका विश्लेषण नहीं हो पाता, तब तक इनके काव्य का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट करना कठिन है । इन प्रतीको के आधार पर यह कहना सगत होगा कि महादेवी की अनुभूति लौकिक है या अलौकिक, इन के प्रेम का स्वरूप लौकिक है या अलौकिक । इनके इने गिने प्रतीको तथा पक्तियो से यह अनुमान लगाना कठिन है कि इनसे आध्यात्मिक ध्वनि निकलती है या सामाजिक चेतना का भान होता है । इनके गीतो में असीम-ससीम की बात बार बार कही गई है, चित्र और रेखाक्रम, सगीत और स्वरसगम, दर्पण टूटने के सकेत भी दिए गए हैं, इन के प्रिय का तम में आना माना है और इसलिए वह क्षण भर के लिए आकाश की दीपावलियो को बुझ जाने के लिए भी कहती है। शुक और पिंजर, बीन और रागिनी आदि प्रतीक विधान भी इनके गीतो मे उपलब्ध है । इसलिए आलोचको को इन में आत्मा और परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध का भान होने लगता है और वे महादेवी के काव्य को रहस्यवादी होने की सज्ञा दे डालते है । इसके विपरीत यह भी कहा गया है कि बुद्धिवाद के इस युग में एक बुद्धिजीवी के लिए रहस्यानुभूति पाना असभव है । यह मध्यकालीन युग में सभव था । महादेवी के काव्य में अज्ञात प्रिय के प्रति निवेदन एक

स्वकीया का है और इस में काम का स्पन्दन है। पहला मूल्यांकन सौष्ठववादी आलोचना-पद्धति का परिणाम है और दूसरा मनोवैज्ञानिक आलोचना-पद्धति का और दोनों आरोपित होने का आभास देते हैं।

महादेवी के गीति-काव्य की राह से गुजरने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके पहले गीतों में बिम्बों का अधिकांश है और बाद के गीतों में प्रतीकों तथा रूपकों का। इनका चिन्तन जिस अनुपात में गहराने लगता है उसी अनुपात में प्रतीकों का अधिक प्रयोग होने लगता है जो सृजन-प्रक्रिया की दृष्टि से स्वाभाविक है। इनका चिन्तन तथा प्रतीक-विधान परम्परा से जुड़ा होकर उस से कटा हुआ है, परम्परा की नयी व्याख्या करता है, छायावादी युग बोध के साँचे में ढलने लगता है। छायावाद में अन्य कवियों ने भी वेदान्त या अद्वैतवाद का आश्रय लिया है और इसकी छायावादी व्याख्या की है। अन्य चिन्तकों ने भी वेदान्त तथा अद्वैतवाद को युग-बोध के साँचे में ढाला है। वह चाहे रामकृष्ण परमहंस हों या विवेकानन्द या अरविन्द घोष और हिन्दी के कवियों में वह निराला हों या पन्त। जयशंकर प्रसाद तक ने समरसता सिद्धान्त को युग-बोध के साँचे में ढाल कर इसकी व्याख्या की है। पूंजीवादी संस्कृति के व्यक्तिवाद को परम्परा से जोड़ने की कोशिश है और आधुनिकता की प्रक्रिया में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। इसलिए छायावादी कवि संत या भक्त की तरह अपने अस्तित्व को खोना नहीं चाहता, आत्मा परमात्मा में लीन होने से कतराता या परहेज करता है। यदि महादेवी की अनुभूति की अभिव्यक्ति कबीर से विभिन्न होने का आभास देने लगती है तो यह असंगत नहीं है। यह क्या है और कैसे है—इसका मूल्यांकन अभी नहीं हो पाया है। इस सम्बन्ध में एक और प्रश्न को भी उठाया जा सकता है। क्या महादेवी का व्यक्तित्व विभाजित है जो इनकी गद्य-रचनाओं में सामाजिक चेतना को आत्मसात किए हुए है और काव्य-रचनाओं में पलटा खाकर असामाजिक या आध्यात्मिक रूप धारण कर लेता है। क्या इनका व्यक्तित्व अद्वैतवाद और बौद्ध मत के परस्पर विरोधी तत्वों से निर्मित है? क्या महादेवी की सृजन-प्रक्रिया इन विपरीत स्थितियों में तनाव में गतिशील है? यदि इनका व्यक्तित्व खण्डित नहीं है तो इनके काव्य में प्रतीक-विधान का विश्लेषण इनके गद्य के संदर्भ में अपेक्षित हो जाता है। इसी संदर्भ में इनके 'दुखवाद' या 'पीडावाद' के स्वरूप को भी स्पष्ट किया जा सकता है। इनकी कविता का मूल्यांकन अब रूढ़ होने का आभास दे रहा है और इस रूढ़िगत मूल्यांकन से छुटकारा पाना इसलिए आवश्यक हो गया है कि युग-बोध बदल चुका है और इसके बदलने पर हर कृति या हर साहित्यकार को फिर से आँकने की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। महादेवी का काव्य भी इसका अपवाद किस तरह हो सकता है!

महादेवी की कविता की राह से गुजरने पर यह लगता है कि इनके गीतों में भी आधुनिकता की प्रक्रिया कभी गतिशील तो कभी स्थितिशील। जब यह गतिशील है तो यह आधुनिकता से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है और जब यह स्थितिशील

है तो यह मध्यकालीनता से जुडने लगती है। आधुनिकता भी कृति नही बना सकती। इसके आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन करना भी असगत है, परन्तु इससे अवगत होने पर इनके प्रतीक-विधान का युगीन स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। इनका काव्य एक ओर पलायन का सूचक है तो दूसरी ओर जीवन से जूझने का। वह जब विरह में चिर रहने की बात कहती है तो वह वस्तु स्थिति को झेलने का सकेत देती हैं। इनकी रचनाओं में 'कौन' उस जिज्ञासा को अभिव्यक्ति देता है जो युग चेतना का परिणाम है, यह 'कौन' प्रश्न चिह्न की निरन्तरता को सूचित करता है जो आधुनिकता की चुनौती की देन है। यह ब्रह्मविद्या को पाने के लिए नही है जिसे नचिकेता के प्रश्नो में आँका जा सकता है। महादेवी उत्तर की बजाय प्रश्न को अधिक महत्व देती हैं, इनका प्रश्न उत्तर से बडा है, इनकी समस्या समाधान से अधिक व्यापक है। वह प्रसाद की तरह समस्या को उठाकर समाधान देने से परहेज करती हैं। इसलिए इनके गीता में असगतियाँ तथा विसगतियाँ हैं, मिलन तथा विरह है, अस्तित्व को खोने तथा पाने की बात है। क्या असीम तथा ससीम मुक्ति तथा बन्धन के सकेत देते हैं, भारतीय नारी की सामाजिक मुक्ति या बन्धन को ध्वनित करते है या आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को—इस विषय म अन्तिम मत देना इसलिए कठिन है कि इनके प्रतीक-विधान का अभी तक विश्लेषण नही हो पाया है। महादेवी ने बहुत कम गीता की रचना की है। कुल मिला कर इनकी सख्या २३६ बनती है। एक एक गीत सश्लिष्ट रचना है। इनमें बहुत कम गीत हैं जिन में कलात्मक रचाव को ठेस लगी हो या आन्तरिक सगति टूटी हो। यह महादेवी की कविता की असाधारण उपलब्धि है। इसकी अवहेलना शायद इसलिए हो गई है कि गीत कहानी की तरह छोटा होने के कारण उपेक्षित रहा है। इनका गीति-काव्य इसलिए भी उपेक्षित रहा है कि यह नारी की देन है। महादेवी की यह भी एक विशेषता है कि सृजन प्रक्रिया के अवरुद्ध होने पर इन्होने 'दीप शिखा' के बाद काव्य रचना को विदा देना उचित समझा है। यह इसलिए भी सगत है कि आठ यामो के बाद, 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक समस्त जीवन के आँकने तथा चित्रित करने के बाद शेष क्या रह जाता है जिसे कहा जाए। इस तरह महादेवी दोहराने-तिहराने से बच निकली है। इनके गीति-काव्य का मूल्यांकन करने के लिए कुछ प्रश्ना को उठाने की कोशिश की है। प्रश्न मेरे हैं, उत्तर आपके होंगे, समस्याएँ मेरी हैं, समाधान आप ही दे सकते हैं।

महादेवी जी और मेरी आलोचना

डॉ० रामविलास शर्मा

कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के सम्मान में संस्मरण-ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे है, यह हिन्दी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। अब प्रसाद जी नही है, निराला जी नही है, हिन्दी काव्य के छायावादी कर्णधारो मे पन्त जी और महादेवी जी हमारे बीच म हैं, यह हमारा सौभाग्य है। पन्त जी द्वारा महादेवी जी का अभिनन्दन नारी मात्र के प्रति उनकी सहज मैत्री-भावना के अतिरिक्त छायावादी कवियो के परस्पर स्नेह-सबध का परिचायक भी है।

प्रसाद जी और महादेवी जी छायावाद के दो ऐसे सूत्रधार रहे है जो वाद विवाद की उलझनो से अलग रहे। इस कारण निराला जी से दोनो का स्नेह-सम्बन्ध बना रहा। निराला और पन्त का भावात्मक सम्बन्ध विरोधजन्य भौतिकवाद के समान द्वन्द्वमय तथा प्रगाढ स्नेहमय दोनो था।

मैं छायावादी नहीं हूँ। छायावादी कवियो मे पन्त जी की जरूरत से ज्यादा तीखी आलोचना भी कर चुका हूँ। इसलिये छायावादी कवियो के प्रति कुछ प्रशसा के शब्द कहने पर मेरे कुछ छायावाद-विरोधी मित्र आश्चर्य करते है। 'तार-सप्तक' के नये सस्करण मे मेरा वक्तव्य पढ कर एक मित्र ने सकेत किया कि मैं प्रगतिवाद की भूमि छोडकर छायावाद का समर्थक बन गया हूँ। महादेवी जी के कुछ समर्थको और मित्रो को यह भ्रम रहा है कि मैं उनका विरोधी हूँ।

यह बात सही है कि महादेवी जी के काव्य मे कही कही अतिशय कारुण्य है जो मेरे स्वभाव के प्रतिकूल होने से मुझे प्रभावित नही करता। प्रसाद जी के काव्य में मुझे वाञ्छित ओजगुण नही मिलता ; निराला जी के दार्शनिक विचारो से मैं सहमत नही हूँ और पन्त जी के काव्य मे पल्लव-ग्राम्या के अतिरिक्त कला और चिन्तन की अनेक कमजोरियाँ मालूम होती है। यह कहना अनावश्यक है कि अन्य अनेक आधुनिक कवियो में कमजोरियाँ प्रमुख छायावादी कवियो से ज्यादा हैं। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि कविता को जिस स्तर पर प्रसाद निराला-पत-महादेवी वर्मा ने विकसित किया उसे देखते हुए परवर्ती काव्य का प्रसार —भाव-गरिमा, विचार गाम्भीर्य और कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से—निम्न स्तर पर ही हुआ है, यद्यपि इस परवर्ती काव्य की उपलब्धि महत्वपूर्ण है और उसका स्तर छायावाद की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियो की तुलना मे ही निम्न है।

छायावादी कवियों ने ब्रजभाषा की रीतिवादी परम्परा को निर्मूल किया, काव्य मे गद्य की भाषा खडीबोली को प्रतिष्ठित किया, अपनी लाक्षणिक शैली से हिन्दी की व्यञ्जना-शक्ति को विकसित किया, छन्दो मे नये प्रयोगो द्वारा मुक्तको और गीतो को नये स्तर पर विकसित किया, भावो और विचारो के ससार मे उन्होने क्रान्ति की और प्रकृति से नये उपमान ले कर काव्य को अधिक सुन्दर बनाया।

कोई भी छायावादी कवि एक ही सीमित विचारभूमि से बँधा नही रहा। वे बराबर चिन्तनशील, विकास की नयी दिशाएँ खोजते रहे। उन्होने अनेक रचनाओ में समाज की व्यापक समस्याओ की ओर सकेत किया और साहित्य को जनजीवन से सम्बद्ध किया। यह निश्चय है कि छायावादी काव्य के मूल्यवान रिक्थ को आत्मसात किये बिना कोई भी आधुनिक कवि अपने आधुनिकता-बोध के बल पर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नही कर सकता।

मैने सन् '३४ से आलोचनात्मक निबन्ध लिखना आरम किया था। मेरा पहला निबन्ध निराला जी पर था, जो 'चाद' मे छपा था। दूसरा निबन्ध पत जी पर था, कुछ उनके विरुद्ध ही था, कही खो गया, छपा नही। तीसरा निबन्ध महादेवी जी पर था, वह 'सुधा' मे छपा था।

मैंने जब वह निबन्ध महादेवी जी पर लिखा था, तब उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में कुछ न जानता था (बहुत कुछ अब भी नही जानता)। 'रश्मि' और 'नीहार' की रचनाओ का जो प्रभाव मेरे मन पर उस समय पडा था, वह यह कि महादेवी के हृदय मे सौन्दर्य, जीवन और प्रेम के लिये विह्वल आकाक्षा है और यह आकाक्षा उनकी रचनाओ की सरस गेयता का रहस्य है। मेरी उम्र उस समय बाईस साल की थी। महादेवी जी के काव्य के बारे मे मेरी जो धारणा बनी, उसका कारण, हो सकता है, अनुभवो की कमी हो, अथवा कालेज में रोमाटिक कवियो का अध्ययन हो। किन्तु वह बात मुझे आज भी काफी सही मालूम होती है। अनेक वर्षों बाद जब श्रीमती शची रानी गुर्टू 'प्रवाह' का सम्पादन कर रही थी, तब उनके लिये मैंने महादेवी जी पर एक लेख लिखा जिसमें जीवन की स्वीकृति वाले दृष्टिकोण पर बल दिया। अभी पिछले साल प्रयाग के कुछ मित्रो ने महादेवी के सम्मान म एक ग्रन्थ निकाला। उसमे 'आशा और उल्लास की कवयित्री' महादेवी जी पर मेरा एक निबन्ध प्रकाशित है। आशा और उल्लास वाला यह उनका एक पक्ष है, उनके काव्य की समग्रता इस एक पक्ष की परिधि में नही सिमट आती। किन्तु वह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो आलोचको की दृष्टि से बहुधा ओझल रहता है और इसलिये उस पर बल देना आवश्यक है। महादेवी जी का साहित्य आधुनिक काल में नारी जागरण से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध है।

और उनकी करुणा व्यक्तिपरक अथवा आत्मगत ही नही है। वह बहिर्मुखी समाज परक भी है जिसका प्रमाण उनकी अनेक गद्य रचनाएँ, बगाल के दुर्भिक्ष से सबधित काव्य-सकलन की भूमिका आदि हैं। करुणा और उल्लास के बीच वास्तव में उतना फासला नही है, जितना ऊपर से देखने में मालूम होता है।

'सुधा' वाले लेख की चर्चा के प्रसंग में निराला जी से मैंने कहा—महादेवी जी की कविताओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से मैंने एक निष्कर्ष निकाला है। निराला जी बोले—क्या ? मैंने कहा—इनका अभी विवाह नहीं हुआ है।

इस पर निराला जी खूब जोर से हँसे। मैंने जब अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन वाले तर्क प्रस्तुत किये तब वह और भी हँसे।

मेरी बात गलत थी लेकिन जरा सहानुभूति से विचार कीजिये तो आप मानेंगे ऐसी गलत भी न थी।

मैंने महादेवी जी के दर्शन किये—प्रयाग में, महिला विद्यापीठ वाले उनके निवास-कक्ष में। मैं उनका हँसना देखता रहा। मुझे लगा कि वह बात-बात पर हँसती हैं, और बिना बात के भी हँसती हैं।

मैं कभी किसी स्त्री की हँसी से इतना हतप्रभ नहीं हुआ। यदि कोई पुरुष इस तरह हँसता तो मैं अवश्य उसकी हँसी बन्द कर देता।

एक बात याद आती है। उन्होंने कहा था—लोग कहते हैं, निराला जी पागल हो गये हैं, इस समाज में रह कर कौन भला आदमी पागल न हो जायगा ?

इसके बाद फिर वही हँसी।

मुझे लगा कि यह हँसी आवरण है। इसके नीचे मानव-जीवन की गहरी परख और उसी के अनुरूप समवेदना छिपी हुई है।

उसके बाद अनेक बार मैंने उनके दर्शन किये हैं, काफी समय तक उनका वार्तालाप सुना है। जब-जब मिला बात ज्यादा उन्होंने की, मैं चुपचाप सुनता रहा। लेकिन अब वह उतना ज्यादा हँसती नहीं है। और मैं भी उनकी हँसी से अब हतप्रभ नहीं होता।
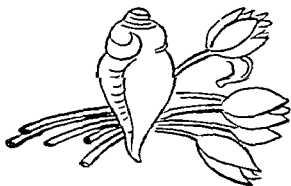
महादेवी की कला-चेतना

डॉ० कुमार विमल

छायावादी कवियो के बीच महादेवी वर्मा ने काव्य एव ललित कलाओ के स्वरूप पर तात्त्विक दृष्टि से विस्तृत विचार किया है। साहित्येतिहास यह बतलाता है कि ललित कलाओ का तात्त्विक मिश्रण, विशेषकर काव्य, चित्र और सगीत को परस्पर निकट लाकर उनके कुछ प्रमुख तत्त्वो का अधिकतम एकीकरण स्वच्छन्दतावाद (रोमाटिसिज्म) की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। अत स्वच्छन्तावादी प्रवृत्ति के निकट पडने के कारण छायावादी कविता में भी काव्येतर ललित कलाओ के तात्त्विक समावेश की विशेष रुचि है। जब-कभी काव्य-जगत् मे स्वच्छन्दतावादी लहर चलती है, तब उसमें ललित कलाओ का मधुमेल छा जाता है। सचाई यह है कि काव्य ही नही, सभी ललित कलाएँ अपने रोमाटिक युग में अन्य भगिनी कलाओ (Sister arts) स अधिक प्रभावित रहती हैं। फलस्वरूप, रोमाटिक युग की कविता भी काव्येतर कला के प्रमुख तत्त्वों और विधाओं को अपनी सीमा-रेखा मे समाविष्ट करने की प्रवृत्ति रखती है।

छायावादी कवियो के द्वारा कविता मे काव्येतर ललित कलाओ के पारस्परिक अन्त सबध की सिद्धान्तत स्वीकृति अनेक रूपो मे मिलती है। कारण, छायावादी कविया ने अपनी भूमिकाओं और लेखों में यत्र-तत्र कलाओं के सामान्य स्वरूप पर मौलिक ढग से सोचने का प्रयास किया है तथा ललित कलाओ के तात्त्विक अन्त सबध को सैद्धान्तिक धरातल पर स्वीकार किया है। जैसे, कविता तथा काव्येतर कलाओ के स्वरूप पर निराला ने 'काव्य मे रूप और अरूप' तथा 'कला और देवियाँ' शीर्षक निबन्ध मे, प्रसाद ने 'काव्य और कला' शीर्षक निबन्ध में, पन्त ने 'कला का प्रयोजन'[१] शीर्षक लेख तथा 'पल्लव'

१—मनीषी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने भूमिकाओ तथा विचारात्मक निबन्धो के अलावा अपनी कविताओ में भी ललित कलाओं के दर्शन पर विचार किया है। जैसे, 'शिल्पी' शीर्षक काव्य रूपक अथवा 'इन्द्रधनुष' शीर्षक कविता (स्वर्णकिरण, प्रथम सस्करण, पृष्ठ १९) मे। इन्होने 'ज्योत्स्ना' नाटिका के उत्तरार्द्ध मे भी अपने कला-दर्शन को स्पष्ट किया है। इनकी पहली मान्यता यह है कि लोकमगल की दृष्टि से सभी कलाएँ समान हैं, क्योकि कलाकार को काव्य, सगीत, चित्र, शिल्प द्वारा मनुष्य के सम्मुख जीवन की उन्नत मानवी मूर्तियो को स्थापित करना है। (ज्योत्स्ना, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ५०) इनकी

'सुधा' वाले लेख की चर्चा के प्रसंग में निराला जी से मैंने व
की कविताओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से मैंने एक निष्कर्ष निकार
बोले—क्या ? मैंने कहा—इनका अभी विवाह नहीं हुआ है।

इस पर निराला जी खूब ज़ोर से हँसे। मैंने जब अपने मनोवैज्ञ
तर्क प्रस्तुत किये तब वह और भी हँसे।

मेरी बात गलत थी लेकिन जरा सहानुभूति से विचार की
ऐसी गलत भी न थी।

मैंने महादेवी जी के दर्शन किये—प्रयाग में, महिला विद्या
कक्ष में। मैं उनका हँसना देखता रहा। मुझे लगा कि वह बात
बिना बात के भी हँसती हैं।

मैं कभी किसी स्त्री की हँसी से इतना हतप्रभ नहीं ह
तरह हँसता तो मैं अवश्य उसकी हँसी बन्द कर देता।

एक बात याद आती है। उन्होंने कहा था—लोग क
गये हैं, इस समाज में रह कर कौन भला आदमी पागल न ह

इसके बाद फिर वही हँसी।

मुझे लगा कि यह हँसी आवरण है। इसके नीचे मान
उसी के अनुरूप समवेदना छिपी हुई है।

उसके बाद अनेक बार मैंने उनके दर्शन किये हैं, व
सुना है। जब-जब मिला बात ज्यादा उन्होंने की, मैं चुप
उतना ज्यादा हँसती नहीं हैं। और मैं भी उनकी हँसी
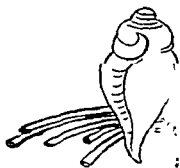
भेद-दृष्टि से सोचने के अलावा महादेवी ने कलाओं के समग्र रूप पर विषय और विधान के महत्त्व की दृष्टि से भी विचार किया है। सौन्दर्यशास्त्र की यह एक बहुचर्चित समस्या है कि कला-जगत् मे विषय (Content) अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा विधान (Form)। अर्थात्, किसी कलाकृति की उत्कृष्टता उसके विषय के महत्त्व पर निर्भर करती है अथवा उसके विधानगत सौष्ठव पर। कला-चिन्तन के इस पुराने प्रश्न पर महादेवी तथा निराला के विचार क्रोचे से मिलते-जुलते है। और, यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिन्दी के एकाधिक आलोचको की दृष्टि मे क्रोचे के अभिव्यजनावाद ने छायावादी कवियो की कला और चिन्तन-सरणि को प्रभावित किया है। महादेवी ने कला मे विषय और विधान के महत्त्व की विवेचना करते हुए लिखा है, "विषय पर कोई कला निर्भर नही रहती। सच्चे चित्रकार की तूलिका भगवान बुद्ध की चिरशान्त मुद्रा अकित करके भी धन्य हो सकती है और कन्धे पर हल लेकर घर लौटने वाले कृषक का चित्र बनाकर भी अमर हो सकती है। कलाकार अमरता का विधायक स्वय हो सकता है, परन्तु, तभी, जब उसकी कला उसकी अनवरत साधना मे तप-तप कर खरा सोना बनकर निकलती है।"[१]

महादेवी ने ललित कलाओ के तात्विक पक्ष पर 'दीपशिखा' की भूमिका मे विस्तार से विचार किया है, जिसके विश्लेषण से यह पता चलता है कि कलाओं के तात्विक पक्ष और सौन्दर्यशास्त्रीय स्वरूप पर इन्होंने पर्याप्त जागरूकता के साथ सोचा है। इस भूमिका मे इन्होंने ललित कलाओ की उत्पत्ति और विकास, ललित कला और उपयोगी कला का स्वरूप-भेद, विविध ललित कलाओ का बाह्य पार्थक्य और उनका पारस्परिक तात्विक अन्त सबध—इन सभी सौन्दर्य-शास्त्रीय समस्याओं पर विचार किया है। जैसे, कलाओ की उत्पत्ति के सबध म इनकी धारणा यह है कि वहिर्जगत् से अन्तर्जगत् तक फैले और ज्ञान तथा भाव-क्षेत्र मे समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओ का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सँकेत-विस्तार मे नही खोजती, अनुभूति की सरिता के तट पर से एक विशेष बिन्दु पर ग्रहण करती है।"[२] तदनन्तर, ललित कलाओ के विकास के सबध मे इनका कथन है कि एक ही प्रकार के सास्कृतिक सृजन की इच्छा से सभी ललित कलाओ का विकास हुआ है। ज्यो-ज्यो मनुष्य के मन मे उद्वेलित होनेवाली सास्कृतिक सृजन की इच्छा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गई, त्यो-त्यो सूक्ष्म से सूक्ष्मतर कला प्रकारो की सृष्टि भी होने लगी। इसी तरह मनुष्य ने वास्तु कला से काव्य कला तक के सृजन की सास्कृतिक यात्रा तय की।[३] कलाओं की उत्पत्ति और विकास के अलावा महादेवी को लालित्य और उपयोगिता के आधार पर कलाओ

१—उपरिवत्, पृष्ठ ५५

२—दीपशिखा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सवत् २०११, पृष्ठ ४।

३—उपरिवत्, पृष्ठ ७-८।

की भूमिका मे और महादेवी ने 'सान्ध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' की भूमिका और 'क्षणदा' के कुछ निबन्धों में तात्त्विक दृष्टि से विचार किया है; साथ ही, काव्य को अन्य कलाओं के विस्तृत सन्दर्भ में रखकर देखने-परखने की चेष्टा की है।

महादेवी के कला-चिन्तन पर हीगेल का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। ललित कलाओं की पारस्परिक उत्कृष्टता का विश्लेषण करते हुए इन्होंने लिखा है, 'जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतत्र होकर भावों की अधिकाधिक व्यजना में समर्थ हो सकेगी, वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भाव-व्यजना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तुकला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक सामग्री के अभाव और भाव-व्यजना की अधिकता से पूर्ण काव्य कला उसका सबसे ऊँचा अन्तिम सोपान मानी जायगी। चित्रकला वास्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतत्र होने पर भी काव्य कला की अपेक्षा अधिक परतत्र है, कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बँधी है, जिसमें चित्रकला बने रहने के लिए उसे सदा ही बँधा रहना होगा।"[1] स्पष्टत यहाँ हीगेल के कला सिद्धान्त का प्रभाव महादेवी के विचार पर लक्षित होता है। इसी तरह विभिन्न ललित कलाओं के विविध स्वरूप गुण पर महादेवी ने अच्छा चिन्तन किया है। इन्होंने श्रव्य और चाक्षुष कलाओं के बीच प्रेषणीयता तथा ग्राह्यता के स्तर-भेद को इगित करते हुए लिखा है, "कलाओं में काव्य जैसी श्रव्य कलाओं की अपेक्षा चित्र जैसी दृश्य कलाओं की ओर मनुष्य स्वभावत अधिक आकर्षित रहता है। मूर्तिकला, चित्रकला आदि दृश्य कलाएँ एक ही साथ हमारे नेत्र, स्पर्श और मन की तृप्ति कर सकती थीं, इसी से वे हमें अधिक सुगम और तात्कालिक आनन्ददायिनी जान पड़ीं। विशेषकर चित्रकला मूर्तिकला के काठिन्य से रहित और रगों से सजीव होने के कारण अधिक आदृत हो सकी। यह बोधगम्य इतनी अधिक है कि शैशव में कठिन से कठिन ज्ञान इसके द्वारा सहज हो जाता है। प्राचीन काल में इसने मनुष्य के निकट कितना सम्मान पाया, इसका निदर्शन अजन्ता तथा एलोरा के गह्वरों में अकित चित्र हैं। पुरातन काल की सभी पौराणिक कथाएँ चाहे विरही यक्ष से सबध रखती हों, चाहे राजा दुष्यन्त से बिना इस कला के मानो पूर्ण ही न होती थीं।"[2] इन श्रव्य और दृश्य कला-प्रकारों पर

दूसरी मान्यता यह है कि सभी कलाओं का मूल वह सौन्दर्य है, जो अनेकता में एकता के अन्वेषण से पैदा होता है। (उपरिवत्, पृष्ठ ८३) तदनतर, इनकी तीसरी मान्यता है कि श्रेष्ठ कला के सौन्दर्य में सत्य और जीवन के सजीव यथार्थ का समावेश रहता है। (उपरिवत्, पृष्ठ ८४)

१—महादेवी, सान्ध्यगीत, भारती भण्डार, प्रयाग, सवत् २००९ विक्रम, 'अपनी बात', पृष्ठ १२-१३।

२—क्षणदा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सवत् २०१३, पृष्ठ ५१-५२।

के विभाजन की समस्या ने अधिक झकझोरा है। उपयोगी कला और ललित कला में दो टूक विभाजन की समस्या ने पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र में अरस्तू और प्लेटो के काल से ही अपनी जड जमा ली थी। किन्तु, महादेवी की तात्त्विक दृष्टि को उपयोगी और ललित कलाओं का यह स्फीत पार्थक्य स्वीकार नही है, क्योकि उपयोगिता और लालित्य में कोई अनिवार्य स्थितिबोध अथवा अन्योन्याभाव सबध नही है।[१] अत इनका मत है कि "उपयोग की कला और सौन्दर्य की कला को लेकर बहुत से विवाद समव होते रहे, परन्तु, कला के ये भेद मूलत एक दूसरे से बहुत दूरी पर नही ठहरते।"

तदनन्तर, महादेवी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मान्यता काव्य एव काव्येतर ललित कलाओ के तात्त्विक अन्त सबध से सम्बद्ध है। इस सन्दर्भ में इन्होने भी स्वीकार किया है कि दृश्य कलाओ के बीच चित्रकला से काव्य का निकटतम सबध है। "कलाओं मे चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है। मूर्ति कठिनतम सीमाओ मे बँधी होने के अतिरिक्त रगो की पृष्ठभूमि असमव कर देती है। उसमें एक ही भाव को मूर्तिमत्ता दी जा सकती है और वह भी रगहीन।'[२] इस प्रकार इन्होने काव्य के लिए चित्र के सर्वोपरि विश्वस्त सहयोगी होने के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, "माध्यम की दृष्टि से चित्र सूक्ष्म और स्थूल के मध्य की स्थिति रखता है। देश-सीमा के बन्धन रहते हुए भी वह रगो की विविधता और रेखाओ की अनेकता के सहारे काव्य को रगरूपात्मक साकारता दे सकता है। अमूर्त भावो का जितना मूर्त वैभव चित्रकला मे सुरक्षित रह सकता है, उतना किसी अन्य कला मे सहज नही, इसीसे हमारे प्राचीन चित्र जीवन की स्थूलता को जितनी दृढता से सँभाले हैं, जीवन की सूक्ष्मता को भी उतनी ही व्यापकता से बाँधे हुए हैं।"[३] किन्तु, यहाँ ललित कलाओं के तात्त्विक अन्त सबध की दृष्टि से यह निर्देश कर देना उचित होगा कि महादेवी की कविताओं मे जहाँ चित्रकला से अत्यन्त निकटता का निर्वाह है, वहाँ मूर्तिकला की ईषत् छाया भी है, कारण, महादेवी ने स्वयं लिखा है कि "कुछ अजन्ता के चित्रो पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रो मे यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष—यह तो मैं नही बता सकती पर इस चित्र मूर्ति-सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।"[४]

इस तरह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी के पास ललित कलाओं के स्वरूप पर एक सुचिन्तित दृष्टिकोण है और ये ललित कलाओ के तात्त्विक अन्त सबध के प्रति पूर्णत

१—उपरिवत्, पृष्ठ ८।
२—उपरिवत्, पृष्ठ ६०।
३—दीपशिखा, पृष्ठ ६०।
४—उपरिवत्, ६१।

जागरूक है। यह तथ्य इनकी कला-साधना के कुछ काव्येतर तत्त्वो के विश्लेषण से भी समर्थित होता है।

किसी भी कवि अथवा काव्यकृति की वास्तविक विशेषताओ, मुख्यत. नन्दतिक सौष्ठव का पता हमे तभी लग सकता है, जब हम यह जान लें कि उसमे काव्येतर तत्त्व कितने हैं। अर्थात्, काव्य के अलावा अन्य ललित कलाओ के तत्त्व कितने है; क्योकि जिस काव्य-कृति मे एक या एक से अधिक जितनी अन्य कलाओ का तात्त्विक समावेश रहता है, वह कृति उतनी ही श्रेष्ठ होती है। उदाहरण के लिए एक ऐसी कविता, जिसमे चित्रकला और सगीत कला के तत्त्वो का भी समावेश हो, केवल काव्यत्व से भरी कविता से निश्चय ही श्रेष्ठ होगी। सहोदरा कलाओ के इस व्यापक समावेश की दृष्टि से महादेवी की काव्य-कला का नन्दतिक सौष्ठव बहुत ही समृद्ध सिद्ध होता है।

सामान्यत महादेवी का काव्य उपकरणो की दृष्टि से वैविध्यहीन माना जाता है। भाव-भूमि की एकरसता के कारण इनके विनियोजित उपकरण मिलते-जुलते-से है। साधारण पाठक सीमित उपकरणो की इस पुनरावृत्ति और उनके विनियोग की समरस योजना के पौन-पुन्य से, शायद, झुंझला उठते हैं। उदाहरणार्थ, 'साध्यगीत' और 'दीपशिखा' की पृष्ठभूमि अत्यन्त एकरस तथा धारांकित है। 'साध्यगीत' मे सध्या और 'दीपशिखा' मे रात्रि के ही कुछ आयामो को अंकित किया गया है। फलस्वरूप, काव्य-निबद्ध चित्रो का वातावरण ही एक-सा नही मिलता, बल्कि दीपक और बादल जैसे दो-चार उपकरण बार-बार चित्र-फलक पर आकर हृदय-चित्त मे एकरसता पैदा कर देते है। उपकरणो की यह एकरूपता इनकी चित्रकला की रग-योजना पर भी हावी है। इनकी अनेक कृतियो मे केवल दो-तीन रगो से ही चित्र-पृष्ठिका के मडन-शिल्प का काम लिया गया है, जो निश्चित रूपेण भावाकन की दृष्टि से श्रमसाध्य हुआ करता है। इन्होने अपने चित्रो मे रगो के इस ईदृक्तया नि स्व प्रयोग की चर्चा करते हुए लिखा है, "रगो की दृष्टि से मैं बहुत थोडे और विशेषत नीले-सफेद से ही काम चला लेती हूँ। जहां कई को मिलाना आवश्यकता होता है, वहां ऐसे मिलाना अच्छा लगता है कि किसी की स्वतत्र सत्ता न रह सके। दीपशिखा के चित्र तो एक ही रग मे बने थे, अत उनके भाव-अकन मे आयास भी अधिक हुआ और इस अभाव-युग मे उनके मूल रूपो की सन्तोषजनक प्रतिकृति देना भी असभव हो गया।"[१]

इसी प्रकार इनके चित्रो मे हमे प्राय रमणी मूर्तियो के साथ (कारण, इनकी चित्र-कला मे भी नारी-तत्त्व की सर्वत्र प्रधानता है) दीपक, कमल अथवा कांटे अंकित मिलते हैं। ये तीनो क्रमश आत्मा, भावना और पीडा के प्रतीक है। अपने गीतो मे भी महादेवी ने इसी प्रतीकार्थ को स्पष्ट किया है। जैसे—

१—उपरिवत्।

नितान्त अनुपयुक्त बना दिया है, कारण, जितने समय में मैं तुक मिला लेती हूँ, उतने ही समय मे चित्र समाप्त कर देने के लिए आकुल हो उठती हूँ।"[१]

यह निश्चित है कि महादेवी का चित्रकार इनके कवि की तुलना मे द्वितीय स्थान रखता है, किन्तु, वह उपेक्षणीय नही है। कारण, इनके चित्र इनकी कविताओ के लिए एक विस्तृत और वस्तुनिष्ठ पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते है, जिससे उन कविताओं की अर्थवत्ता का प्रमादन और व्यजनागर्भत्व का किंचित् स्पष्टीकरण होता है। इन्होने अपने गीत और चित्र के आन्तर सबध को बतलाते हुए लिखा है—"मेरे गीत और चित्र दोनो के मूल मे एक ही भाव रहना जितना अनिवार्य है, उनकी अभिव्यक्तियो मे अन्तर उतना ही स्वाभाविक। गीत मे विविध रूप, रग, भाव, ध्वनि सब एकत्र है, पर चित्र मे इन सबके लिए स्थान नही रहता। उसमे प्राय रगो की विविधता और रेखाओ के बाहुल्य मे भी एक ही भाव अकित हो पाता है, इसीसे मेरा चित्र गीत को एक मूर्त्त पीठिका मात्र दे सकता है, उसकी सम्पूर्णता बाँध लेने की क्षमता नही रखता।" इस प्रकार इनके चित्र गीत की सम्पूर्णता को बाँध लेने मे भले ही अक्षम हो किन्तु, गीतो को 'एक मूर्त्त पीठिका' देने मे कभी पश्चात्पद नही होते। इस दृष्टि से इनकी तुलना विलियम ब्लेक के साथ की जा सकती है। विलियम ब्लेक के भी कुछ चित्र (जैसे—The Blossom, Infant joy, The Divine Image इत्यादि) ऐसे है, जो अपनी पृष्ठभूमि मे अकित कविता के अर्थ को पूरी सफलता के साथ मूर्त्त और व्यक्त करते है।[२] इस प्रसग मे यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस तरह अग्रेजी साहित्य, मे ब्लेक की चित्रकला और काव्य पर L. Binyon, Anthony Blunt, D. Figgis, G. Keynes, J. Wickoteed इत्यादि ने विस्तृत कार्य किया है, उसी तरह हिन्दी आलोचना मे भी महादेवी के चित्रो पर विस्तृत कार्य होना चाहिए। कारण, महादेवी की कविताओ और चित्रो के समन्तात् अध्ययन से तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते है, जो सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से बहुत ही विचारणीय है। एक यह कि काव्येतर कलाओ के बीच चित्र काव्य का एक विश्वसनीय सहयोगी है, जिसे महादेवी ने विशेषकर 'दीपशिखा' के द्वारा चरितार्थ किया है। दूसरे, जहाँ भी काव्य और चित्र का सगम या सम्प्लवन उपस्थित होता है, वहाँ किसी एक का प्रधान और दूसरे का गौण होना अनिवार्य है। तीसरी बात यह है कि जब कविता को चित्र के द्वारा मूर्त्त पीठिका देने का प्रयास किया जाता है, तब चित्र काव्य से प्रभावित होकर (वस्तुबोधात्मक होने के बदले) कल्पनाविष्ट और भावनात्मक हो जाता है। महादेवी के चित्रो मे अकित दीपको

१—'साध्यगीत' की भूमिका।

२—ब्लेक के इस काव्य-चित्र-सगम पर टिप्पणी देते हुए एन्थोनी ब्लण्ट ने लिखा है—
"It is impossible to separate the forms of the decoration from the ideas of the lyric-"—Anthony Blunt, The Art of William Blake, Columbia University press, 1959, page 48

का आकार-प्रकारगत वैशिष्ट्य, मुकुलित नेत्रों की तरलिमा, अवयवों की पेशलता, वस्त्रालंकारों का मंडन, आँखों में छलकती हुई करुणा, बादल और बिजली के आच्छादनों का आधिक्य इत्यादि इसके प्रमाण हैं।

इतना ही नहीं, इनकी चित्रकला इनके काव्य से संबंधित कुछ भ्रान्तियों के निवारण में उसी प्रकार विचारपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करती है, जिस प्रकार इनके काव्य-निबद्ध सपनों की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या इनके काव्य की अन्तश्चेतना को समझने में।[1] जैसे, अनेक आलोचकों का यह विश्वास है कि महादेवी के काव्य में अनुभूत नहीं, अर्धित प्रकृति है। महादेवी को प्रकृति से संबंधित स्थूल ऋतु ज्ञान भी नहीं है तथा केशव की तरह फल-फूल और वृक्षों के सही नामों की सूची प्रस्तुत करना तो दूर रहा, इन्हें हरसिंगार, दुपहरिया और शेफाली का भी ठीक अभिज्ञान नहीं है। संभव है, कुछेक स्थलों पर महादेवी चूक गई हों, किन्तु, इसका यह आशय नहीं कि इनके काव्य में चित्रित प्रकृति कवि-समय और कवि-प्रसिद्धियों पर आधारित है अथवा साक्षात् निरीक्षण से दूर मात्र श्रुति-निर्भर एवं अपरागत है। इनके चित्रों का हलका विहगावलोकन ही इसे सिद्ध करता है कि इन्होंने आज के नागर जीवन में भी प्रकृति के लघु-विराट् सौन्दर्य, उसके उदात्त रूपाकार और बहुविध वर्णच्छटाओं का अपेक्षित निरीक्षण किया है। इस स्थापना के समर्थन में 'यामा' के कतिपय गुम्फित चित्रों को देखा जा सकता है।[2] इन चित्रों में प्रायः सभी चित्र रम्य एवं दृश्य प्रकृति से संबंधित हैं। इनमें 'तूफान', 'अरुणा', 'निशीथिनी', 'वर्षा', 'संध्या' और 'मिलन' शीर्षक चित्र विशेषकर उपकरण, चित्रण तथा विवक्षा की दृष्टि से खाटी प्रकृति-चित्र हैं। इस स्थिति में भी आलोचक यह आक्षेप कर

१—मैंने अपने एकाधिक निबन्धों (जैसे—'महादेवी के काव्य निबद्ध सपने', हमारा मन, रांची, जुलाई अंक, १९६१) में यह प्रतिपादित किया है कि महादेवी की स्वप्नसंयोगाश्रित कविताओं पर उस मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन की गुंजाइश है, जिसे आधार मानकर डब्ल्यू० पी० विटकट ने ब्लेक का अथवा एल्ऽफ्री मान शार्प ने शेक्सपीयर की कुछ कृतियों (किंग लीयर, टैम्पेस्ट और हैम्लेट) का विवेचन प्रस्तुत किया है। कारण, महादेवी के सपने एक प्रकार के पिहित प्रतीक हैं, जो विचार-बोधक हैं, केवल कृत्रिम स्वप्नचारिता के वाहक नहीं। यही नहीं, इनका स्वप्न-संयोग कहीं मादनमूलक है, कहीं प्रेमवैचित्र्यमूलक और कहीं विश्रम्भमूलक। अतः इनकी कविताओं में स्वप्न संयोग का एक विशेष सौष्ठव है। सचमुच, जब काव्य का आलम्बन अलौकिक या लोकोत्तर होता है अथवा लौकिक होकर भी एकाधिक कारणों से छद्मावरण में गोप्य रहता है, तब स्वप्न-संयोग ही कवि, भावक या भक्त को संयोग-सुख का आनन्द दे पाता है।

२—'दीपशिखा' के चित्रों की बात अभी इसलिए नहीं की जा रही है कि 'यामा' की चित्रकला जहाँ कविता की सहयोगिनी थी, वहाँ 'दीपशिखा' के चित्र स्वतंत्र न होकर कविता की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने में अधिक सचेष्ट हैं। और, इसलिए भी कि 'दीपशिखा' के

सकते है कि महादेवी के चित्रो मे व्यक्त प्रकृति भी (इनके काव्य की तरह) निरीक्षण-पुरस्सर और अनुभूत नही, बल्कि अपरागत और अगत्या-प्रेरित है। किन्तु, इनके अन्त साक्ष्य से यह आक्षेप भ्रान्त सिद्ध होता है, क्योकि इनकी जिस चित्रकला मे अभी प्रकृति की प्रधानता देखी गई है, उसके सबध मे इनकी स्पष्ट धारणा है कि "चित्रकला निरीक्षण और कल्पना तथा कविता भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर है। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है, उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओ मे बाँधकर रग स जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है, परन्तु कवि के लिए भावातिरेक और कल्पना की सहायता से किसी लोक की सृष्टि कर उसे बहुत काल के उपरान्त उसी तन्मयता से, उसी तीव्रता से व्यक्त करना असभव नही तो कठिन अवश्य होगा।"[1]

इस प्रकार इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति महादेवी के लिए अध्ययन-लब्ध अथवा अवकाश मे क्षणो का बौद्धिक विलास नही, बल्कि एक 'निरीक्षित यथार्थ' है, जिसके साथ इनका अव्यवहित, प्रत्यक्ष और सद्य सबध है। इनके व्यक्तिगत जीवन के कुछ सस्मरण भी इस धारणा की पुष्टि करते हैं। जैसे, 'हिमालय के प्रति मेरी आसक्ति जन्मजात है। उसके पर्वतीय अचलो मे भी मौन हिमानी और मुखर निर्झरो, निर्जन वन और कलरव भरे आकाशवाला राम गढ मुझे विशेष आकर्षित करता रहा है।"[2] इतना ही नही, महादेवी प्रकृति-चित्रण के प्रति इस मात्रा म सचेत हैं कि ये अपने काव्य और चित्र मे अकित प्रकृति की भेदक विशिष्टता को पहचानती है। इनके काव्य के अन्तर्गत चित्रित प्रकृति मे आन्तरिक एकाग्रता प्रधान है और चित्रो मे प्रकृति का बाह्य वातावरण। इन्होने अपने काव्य और चित्र की प्रकृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"प्रकृति का शान्त रूप जैसे मेरे हृदय को एक चचल लय से भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशान्त स्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही सभवत मेरी एकाग्रता का कारण रहती है। मेरे अन्तर्मुखी गीता मे तो यह एकाग्रता भी व्यक्त हो सकती है, परन्तु चित्र मे उनका बाह्य वातावरण भी चित्रित हो सका है। मेरे निकट आँधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विषय है, जिन पर चित्र बनाना अनायास और बना लेने पर आनन्द स्थायी होता है।"[3] इसी कारण हमे महादेवी के प्रकृति-चित्रो मे कही-कही कोने कोने प्रकृति-चित्रों का उदात्त एव भास्वर रूप मिलता है। इस निकट, किन्तु,

---

कई चित्र 'यामा' के चित्रो से प्रभावित है। जैसे, 'यामा' का मुखचित्र और 'दीपशिखा' का २५वाँ चित्र, 'यामा' की 'अरुणा' और 'दीपशिखा' का 'सजल है कितना सवेरा' वाला चित्र।

१—साध्यगीत, अपनी बात, पृष्ठ १३।

२—पथ के साथी, पृष्ठ ५।

३—दीपशिखा, पृष्ठ ६२।

महार्घ साम्य को हम महादेवी के 'मृदु महान' एव वॉन गो के 'द साइप्रसेस' शीर्षक चित्र मे देख सकते हैं।

महादेवी की कला-चेतना के अन्तर्गत इस चित्र-चर्चा मे एक और बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—इनके चित्रो पर मूर्त्तिकला का प्रभाव। कारण, चित्रकला की तरह इन्हे मूर्त्तिकला के प्रति भी आकर्षण रहा है, यद्यपि इसमे इन्हे चित्रकला की तरह कोई विदग्धता अर्जित नही है। मूर्त्तिकला के प्रति इनका अनुराग इस उद्धरण से स्पष्ट होता है—"व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्त्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योंकि उसमे कलाकार के अन्तर्जगत का वैभव ही नही, वाह्य आयास भी अपेक्षित रहता है। दुर्भाग्यवश उसे सीखने का मुझे कभी अवकाश नही मिल सका। अत मिट्टी की मूर्तियाँ गढ-गढ कर मैं कुम्भकारो को दीक्षा देने की पात्रता प्राप्त करती रही हूँ।"[1] मूर्त्तिकला के प्रति यह आकर्षण ही इनके चित्रो पर उसके प्रभाव का कारण है। विश्व के अनेक चित्रकारा पर मूर्त्तिकला का प्रभाव पाया जाता है। मूर्त्तिकला के प्रभाव मे चित्रो मे मूर्त्तता, आयामो की सुनिश्चितता, अग-न्यास की बारीकी, काट-छाँट, अनुपात-रक्षा और वस्तुनिष्ठ सन्धि-बन्ध का सरलतापूर्वक आधान हो जाता है। 'क्यूबिज्म' के उद्भावको मे प्रमुख चित्रकार पिकासो के चित्रो पर भी मूर्त्तिकला का प्रचुर प्रभाव है। इस प्रभाव की दृष्टि से अफ्रिकन मूर्त्तिकला उसके चित्रों के लिए आकर सिद्ध हुई। अफ्रिकन मूर्त्तिकला ने उसको सरल और अकृत्रिम आकृतियो मे नूतन भाव-व्यजना भरने की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा से उसकी चित्रकला मे आकृतिया के सरलीकरण और कोण-कुशलता का अद्भुत समावेश हो गया। पिकासो की तरह सेजां के चित्रो मे भी मूर्त्तिकला के प्रभाव से उस आकृतिनेयता और ज्यामितिक गुणो का समावेश हुआ, जिनके चलते वह अपने समकालीनो पर अकूल आकर्षण का इन्द्रजाल फेंक सका। इस प्रकार महादेवी के चित्रो पर मूर्त्तिकला का प्रभाव कोई नई बात नही होते हुए भी इनके चित्रों की कला-कुशलता के लिए अत्यन्त उपकारी है। इन्होने अपने चित्रो पर मूर्त्तिकला के प्रभाव को स्वीकारते हुए लिखा है—"कुछ अजन्ता के चित्रो पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्त्तिकला के आकर्षण से, चित्रो मे यत्र-तत्र मूर्त्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष, यह तो मैं नही बता सकती, पर इस चित्र-मूर्त्ति-सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार मे नही दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।" मूर्त्तिकला का यह प्रभाव 'दीपशिखा' के चित्रो मे विशेषकर मिलता है। इन चित्रो के आधार पर हम दो तथ्य स्पष्टता के साथ स्वीकार कर सकते है। एक यह कि महादेवी के चित्रो पर, जो निश्चय ही इनकी कविताओ के प्रसादन मे समर्थ है, अजन्ता की चित्रकला का प्रभाव अत्यन्त प्रकट है। वस्तुत 'यामा' और 'दीपशिखा' की चित्र-कृतियो मे भौंह, आँख तथा नाखून के प्रलम्ब रूप और चरणा या हाथा के चित्रण से मनोभावो के व्यजन का कौशल अजन्ता के प्रभाव की घोषणा करते है। दूसरी बात यह है कि महादेवी की चित्रकला पूर्णत भारतीय है। बादरायण सबध ढूंढनेवाले शोधार्थी

१—उपरिवत्, पृष्ठ ६०।

भी आधुनिक अथवा समकालीन प्रभावों की दृष्टि से, अधिक से अधिक शायद यही कह सकेंगे कि इनके चित्रों पर ई० वी० हैवेल, अवनीन्द्रनाथ टैगोर और लेडी हेरिंघम के विचारों तथा कृतियों का प्रकारान्तर-प्रभाव है। इसलिए इनके चित्रों में यूनानी और रोमी मॉडलों की अनुकृति का पूर्ण बहिष्कार मिलता है।

यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि चित्रकला के उपर्युक्त प्रभाव के कारण इनके काव्य में सबल रंग परिज्ञान मिलता है। विशेषकर इनके चाक्षुष बिम्ब-विधान में इस रंग-परिज्ञान का कलात्मक उपयोग हुआ है। उदाहरण के लिए संध्या और प्रभात के दो चित्र नीचे दिए जाते हैं —

(१)

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
विहँसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग।

(२)

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे संध्या जाती।
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती।

इनमें गुलाल, सुहाग, स्वर्ण, मोती इत्यादि के समायोजन में रंगबोधमयी सप्राणता मिलती है। कुछ अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं—

सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल,
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल विरल
मँडराते शत-शत अलि-बादल। (दीपशिखा)

अथवा—

स्वर्ण-कुंकुम में बसाकर
है रँगी नव मेघ-चूनर
बिछल मत धुल जायगी
इन लहरियों में लील री!

चांदनी की सित सुधा भर
बाँटता इनसे सुधा कर
मत कली की प्यालियों में
लाल मदिरा घोल री !
मत अरुण घूँघट खोल री ! (नीरजा)

स्पष्ट है कि इन पक्तियो का सौष्ठव बहुलाशत इनकी रगीन चटक पर निर्भर है। ऐसा रगपरिज्ञान काव्य-कला, विशेषकर बिम्ब-विधान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। रग-बोध की बारीकी से बिम्बो मे चाक्षुप आकर्षण और अभिव्यक्ति मे व्यजक वक्रता आ जाती है। इतना ही नही, रग-योजना से कवि की आन्तरिक मनोवृत्ति का पता चलता है।[1] इसलिए वाट्स, थियोडोर डटन, शुक्ल जी आदि ने आलोचना मे रग-बोध के विश्लेषण को महत्व दिया है। काव्य मे रगो के प्रयोग का कवि की प्रकृति से ऋजु सबध है। फलस्वरूप रग-विशेष कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और अन्तर-प्रकृति का वाचक बन जाता है। पन्त के लिए हरा रग, प्रसाद के लिए लाल रग, निराला के लिए नीला रग और महादेवी के लिए श्वेत उनके व्यक्तित्व के ही वाचक हैं। हरित रग से जीवनी शक्ति की, लाल से अनुराग की, नील से विराट् शान्ति की और श्वेत से सात्विक स्वच्छता की अभिव्यक्ति होती है।

महादेवी के काव्य मे श्वेत रग की योजना और श्वेत रगवाले अप्रस्तुतो की प्रचुरता है, जिससे प्रयोक्ता की सात्विक प्रवृत्ति द्योतित होती है। सचमुच, महादेवी की कविताओ मे ओस, चाँदनी, नीहार इत्यादि का प्रचुर प्रयोग श्वेतप्रियता का ही फल है। इनके काव्य-ससार मे नख-चरणो की ज्योति भी श्वेत है और कलियो के प्याले धोनेवाली चाँदनी भी श्वेत है—

मधुर चाँदनी धो जाती है
खाली कलिया के प्याले

इतना ही नही, इनको आत्मप्रसाधन या अभिविन्यास के लिए भी श्वेत रग ही अत्यन्त प्रिय है। ये सर्वत्र श्वेत वसन धारण करना चाहती है। जैसे—

१—कला मे प्रयुक्त रग-विधान पर कई पाश्चात्य विचारको ने वर्ण-सौन्दर्य (Beauty of Colour)की दृष्टि से विचार किया है, जिनमे C. W. Valentine का नाम उल्लेखनीय है। इन्होने कलाकार की रग चेतना के पीछे दो प्रकार के साहचर्य association को स्वीकार किया है —सामान्य साहचर्य और व्यक्तिगत साहचर्य। [द्रष्टव्य—Experimental Psychology of Beauty, Loudon, Page 19] महादेवी की रग चेतना में दोनो प्रकार का साहचर्य मिलता है। कला-जगत् में रगो के महत्त्व और अर्थवत्ता के लिए द्रष्टव्य—The Enjoyment and use of Colour—by Walter Sargent अथवा Colour Control—by F. M. Fletcher.

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु बयार।

... ...

पाटल के सुरभित रंगों से रँग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल
गूँथ दे रशना में अलिगुंजन से पूरित झरते बकुल फूल।

यहां स्मृति-उल्लास और प्रियतम के अभिनन्दन की तैयारी में क्षणोत्सविक वस्त्र (वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—नित्यनिवसनिक, निमज्जनिक, क्षणोत्सविक और राजद्वारिक) का वर्णन है, जो प्राय बेलबूटेदार और चाकचिक्य से भरा होता है। किन्तु, कवयित्री को श्वेतिमा और सादगी से इतना स्नेह है कि वह मिलन-त्योहार के समय भी पाटल जैसे श्वेत पुष्प के समान उजला वस्त्र धारण करना चाहती है। निश्चय ही यह श्वेतप्रियता कवयित्री की आन्तरिक सात्विक वृत्ति की परिचायिका है।

चित्रकला-सयुज काव्य-चेतना ने इनके बिम्ब विधान को भी मूर्त्त सौष्ठव प्रदान किया है, क्योंकि चित्रप्रियता ने इनकी विधायक कल्पना में गोचर रमणीयता भर दी है। यह जानी हुई बात है कि अनुभवगम्य सूक्ष्म भावों को चित्रात्मक बिम्ब-विधान के सहारे गोचर प्रत्यक्षीकरण के स्तर पर ला देना कवि कल्पना की मूर्त्तविधायिनी शक्ति का सर्वोत्तम निकर्ष है। अत महादेवी के बिम्ब-विधान की सफलता स्पष्ट है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उपरिविवेचित समृद्ध कला-चेतना और काव्येतर तत्त्वों के आंशिक समावेश ने महादेवी के काव्य में नन्दतिक सौष्ठव और सौमात्मक विच्छित्तियों की ऐसी छटा विकीर्ण कर दी है, जो छायावादी काव्य की अप्रतिम विभूति है।

महादेवी जी : नवमूल्यांकन

डॉ० रामरतन भटनागर

महादेवी जी के काव्य के संबध मे यदि नई पीढ़ी अनुत्साह का अनुभव कर रही है तो उसका एक कारण यह भी है कि पिछली पीढ़ी के आलोचकों ने उनके स्वरूप को स्पष्ट करने का कोई प्रयत्न ही नही किया है। वे साधारण जनता को उसके रसास्वादन के लिए कोई उपयुक्त भूमिका नही दे सके। प्रश्न यह था कि वे धार्मिक काव्य के रूप मे उसे स्वीकार करें या आध्यात्मिक काव्य के रूप मे, परन्तु इन दोनो के बीच मे उन्होने रहस्यवादी काव्य की एक सस्ती लीक निकाल ली और पश्चिम के दृष्टिकोण का उनके काव्य पर आरोप कर उसकी आधुनिकता और प्रगतिशीलता से अपने को बचा गये। वैसे काव्य मे पूर्व पश्चिम का कोई बँटवारा नहीं हो सकता, न उसे लौकिक आध्यात्मिक के खाना मे बाँटा जा सकता है। काव्य यदि काव्य है तो उसका कोई विषय तो होगा ही। वह विषय कवि का व्यक्तित्व हो, उसके अपने निजी, एकदम व्यक्तिगत सुख-दुख हो, अथवा मानव मात्र की व्यापक संवेदना हो। व्यक्ति और समष्टि का कोई भी बँटवारा चेतना के क्षेत्र मे संभव नही है, अत यह भी संभव है कि किसी एक व्यक्ति की नितात एकातिक पीडा मे युग की पीडा प्रतिबिंबित हो उठे। ऐसी स्थिति मे एक समीक्षक उसमे कवि के निगूढ भावलोक का मायाजाल देखेगा और अवचेतन की अतल गहराइयो मे उतरेगा और दूसरा समीक्षक उसमें सामाजिक अथवा मानवीय चेतना का प्रसार पा कर मुग्ध होगा। सामान्यत व्यक्ति की भाँति कवि भी अतर्मुखी अथवा बहिर्मुखी होता है, परन्तु ये दोनो भूमिकाएँ उसके काव्य मे अविभाज्य इकाई बन कर ही हमें चमत्कृत कर सकती है। महादेवी जी का काव्य पूँजीवादी-साम्यवादी आधुनिक युग मे आध्यात्मिक भाषा और साधनात्मक प्रतीकों के उपयोग के कारण ही अबूझ नहीं हो जाता, वह निगूढ व्यक्तिमत्ता के भीतर से अव्यक्तिगत, सार्वभौम और नितात मानवीय संवेदन-सूत्रों का भी स्पर्श करता है।

कठिनाई यह है कि हम काव्य जैसी अत्यत जीवत चेतना पर बराबर मूल्य की चिप्पी लगाना चाहते हैं और यह नहीं समझ पाते कि वह अपनी प्राणवत्ता के कारण चिरप्रबुद्ध, चिर-अप्रतिबद्ध और नवनवोन्मेषी है। उसके अर्थ न कवि पर समाप्त होते हैं, न युग पर। हमें उस नाभिचक्र को छूना होगा जहाँ से वह स्फूर्त है। सतही ढग से देखने पर जो ज्ञात होता है वही वास्तविकता नही है, भीतर गहरे जा कर जहाँ अर्थ मर्म मे खो जाते हैं वहीं

'वास्तव' है। अनास्था-प्राण आधुनिक युग में हमने काव्य प्रयोजन में बहुत कुछ घटा बढा लिया है। उद्देश्यहीनता को लेकर हमने 'विशुद्ध' काव्य का आन्दोलन ही खडा कर दिया है और उद्देश्य के लिए राष्ट्र, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद जैसे सिद्धातो की टेक पकडी है। परन्तु धर्म और अध्यात्म आज भी काव्य-विषय के रूप मे वर्जित है।

काव्य का उत्स मानव-हृदय है जिसमें रहस्यमय ढग से अनेक अतर्विरोध समाविष्ट रहते है। इस विरोधी धर्माश्रयता को बाँधने वाली चीज ही आध्यात्मिकता है। काव्य के भीतर ये सघर्षशील विरोधी धर्म इस प्रकार समाधान को प्राप्त होते है कि एक क्षण के लिए हम अभिभूत हो उठते है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने को पूर्णत काव्य के हाथो छोड दें और उसके प्रभाव को अपने ऊपर से गुजर जाने दें। आज की एकातवादीय भूमिकाएँ 'सहृदय' को खण्डित मनुष्य के रूप मे ही देखती है। प्रत्येक मानवात्मा मे समाजवादी और व्यक्तिवादी, अधिनायकत्ववादी और स्वातत्र्यवादी, कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट, देवता और दानव है। हम जिन विराट् आन्दोलनो को खडा करते है उन पर भी यह सत्य लागू होता है। सरलीकरण की प्रक्रिया मे काव्य के निगूढ रहस्य और उसकी अनत सभावनाओं को हम खो बैठते है। पल्ले पडती है हठवादिता जो रसास्वादन तो नहीं ही है।

महादेवी का काव्य सास्कृतिक भूमिका से जन्म लेता है और उसका अभिनिवेश आध्यात्मिक कोटि की वस्तु है। वह भाव-साधना से प्रसूत तथा उत्कृष्ट कल्पना से मण्डित गीत और कला की श्रेष्ठतम महिमा है। उसे 'पवित्रतावादी' कहना अथवा आधुनिक जीवन के सवेदनो एव मूल्यो से बहिष्कृत बताना स्थूल बौद्धिकता है। निस्सन्देह महादेवी का आध्यात्मिक काव्य कबीर, मीराँ और तुलसी की कोटि का काव्य नही है, उसकी प्रकृति और उद्देश्य भिन्न हैं। परन्तु पूँजीवादी युग की बौद्धिक जडता और भौतिकतापूर्ण दृष्टि की प्रतिक्रिया उसमे कम खुल कर नही आई है। उसमें व्यक्ति महादेवी भी पूर्णत हैं क्योकि उन्होने अपने अकेलेपन, निर्वासन, अतृप्ति और व्यर्थता का ही नहीं, समर्पण की सार्थकता और मिलन की महनीयता का भी गभीरता से अनुभव किया है। परन्तु सास्कृतिक सूत्रों से वह अपने युग तथा शाश्वत भारतीय मनीषा से जुडी हुई भी हैं, यह कहना कोई बडे साहस की बात नही है। उनकी वेदना ऐसे अतिसवेदित कवि की वेदना है जो जीवन की नश्वरता, अप्रत्याशितता, क्षणभगुरता एव अस्थिरता (चचलता) से पीडित है और जिसने युग और समाज के दबाव को धर्माभूत पीडा के रूप मे अनुभव किया है। महादेवी जी के काव्य मे आध्यात्मिक पीडा और प्रिया-प्रियतम के रूपक में अभिसार, प्रतीक्षा, विरह तथा मिलन की भूमिकाओ में पहली श्रेणी की अनुभूति अभिव्यक्ति पाती है और उनके चलचित्रों और सस्मरणो मे अत्यत मानवीयता के साथ दूसरी चीज उभरती है। काव्य में वह आध्यात्मिक हैं, गद्य में वे मानवतावादी है। लोकमगल, देशप्रेम, राष्ट्रीयता, सामाजिक प्रगतिशीलता, शिक्षा और सस्कृति को लेकर महादेवी अग्रपथित मे रही हैं। अत उन्हे

सामयिक चेतना से अपरिचित अथवा पलायनवादी नहीं कहा जा सकता, जैसी चाल है। नारी-जागरण के भीतर से ही उनका आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य, मानवतावाद तथा सांस्कृतिक औदार्य अभिव्यक्त है। उन्हें अश्रुमती प्रतिमा कोमल मान कर हम उनके हास्यविनोदप्रिय, लोकमांगलिक, कर्मनिष्ठ तथा चिरजागरूक व्यक्तित्व के प्रति अन्याय ही करते हैं। जिन शिखरों का हम अपने चिन्तन और मनन से भी स्पर्श नहीं कर सकते, महादेवी जी के गीत यदि हमें उनकी नीलाकाशचुंबी ऊँचाइयों तक सहज ही उठा ले जाते हैं तो उनकी काव्य-साधना के पीछे अध्ययन, अनुभूति और अभिव्यक्ति की अद्भुत सामर्थ्य, विचक्षण प्राणवत्ता होनी चाहिये। अनायासी होने पर उनके चित्रों की रंगसज्जा और गीतिमयी पदावली की कलानिपुणता में आत्यंतिक सजगता और चिरप्रबुद्धता हमें मिलती है। यह दृढ़ता ही उन्हें सस्ती भावुकता से बचाती है। उनका कोई भी चित्र, चाहे वह पद्य में हो, या गद्य में, असपूर्ण, प्रभावहीन अथवा विशृंखल नहीं है। उनका काव्य उनकी आतरिक पीड़ा को औपनिषदिक गरिमा देकर संतों और भक्तों के आत्मनिवेदन के अत्यंत निकट बैठा देता है, परन्तु उसमें उनके अपने व्यक्तित्व की परिपूर्ण बलि भी है जो उनकी भावना को असपृक्त, तटस्थ एवं नितांत मानवीय बना कर सब के हृदय की बात बना देती है। साधक और कलाकार का यह मणि-कांचन-योग महादेवी जी के काव्य को मध्ययुग के भक्ति-काव्य से अलग तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करता है और उनके प्रत्येक भावमय क्षण को छंद के अमरता के पात्र में बाँध कर 'क्लासिक' बना देता है।

हमारी एक बड़ी भ्रांति यह रही है कि हमने '२०-'४० के आधुनिक काव्य को (जिसे हमने विदेशी 'स्वच्छंदतावाद' या स्वदेशी 'छायावाद' नाम से अभिहित किया है), अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के चश्मे के भीतर से देखना चाहा है और हमारे जाने-अनजाने उस पर रोमांटिक कवियों की प्रतिच्छवियाँ आरोपित हो गई हैं। अपने कवियों को ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स अथवा बाइरन बना डालने के सदोत्साह में हमने अपने नवजागरण की मूल प्रकृति से अपरिचय का भी परिचय दिया है। यही नहीं, हमने पश्चिम के रोमांटिक कवियों को बहुमान देकर असत्य का भी आश्रय लिया है। ऋग्वेद की ऋचाओं से आरंभ होने वाली भारतीय कवियों की सहस्रों वर्षों की स्फीत, प्राणवान, कल्पना और कला से मण्डित समर्थ वाग्धारा की कोई स्वतंत्र, स्वदेशी और स्वाभिमानी परंपरा भी हो सकती है, जिसका प्रतिनिधित्व आधुनिक युग में 'निराला' और महादेवी के प्रगीतों में है, ऐसी कोई भावना हम से अछूती ही रही है। 'मिस्टिसिज्म' और 'रोमांटिसिज्म', 'मेटाफिजिकल' और 'रेलिजस' के पश्चिमी पचड़े हमारे स्वतंत्र और स्वस्थ मूल्यांकन में बाधक रहे हैं। उस नए प्रकाश से हमने आँखें मूँद ली हैं जो हमारे चारों ओर उमड़ रहा है।

यदि भारतीय नवजागरण के कवियों का स्वर पश्चिम के रोमांटिक कवियों के स्वर से मिलता है तो वह इसलिए कि ये कवि उसी तरह नवोदय के कवि थे जिस प्रकार ऋग्वेद और उपनिषद् के कवि। अंतर यह था कि इन कवियों की भूमिका आधुनिक थी और

उसके पीछे नई पूँजीवादी सभ्यता से उत्पन्न विषम स्थिति के प्रति विद्रोह था। व्यक्तिवाद और रहस्यवाद दोनों इस विद्रोह को उसी प्रकार सूचित करते हैं जिस प्रकार साम्यवाद। भारतीय स्वच्छंदतावाद (छायावाद) में ये तीनों उपकरण प्रेरणा स्रोत के रूप में मिलते है। भारतीय नवजागरण के पुरस्कर्ताओं ने आरंभ से ही मनुष्य के आध्यात्मिक आत्मस्वातंत्र्य की घोषणा की थी और उसे परमहंस श्री रामकृष्ण के व्यक्तित्व मे सर्वाधिकता से पाया था। निराला के काव्य में हम इस अनेक प्रतीकों और 'मिथों' में व्यक्त पाते है यद्यपि उनकी टेक अद्वैतमूलक शक्ति की है, भक्तिमूलक करुणा की नही। इसके विपरीत महादेवी जी करुणा की कवयित्री हैं और उन्होंने प्रकृति, प्रेम और समर्पण को परोक्षवाद से हटा कर उसे नितांत मानवीय संदर्भों से मण्डित किया है। उनमे चिरविरहिणी राधा की हृदय-व्यथा मानवीय अभावों, अतृप्तियों और समर्पणा की पीडा की झाँकी देती है। युग की भौतिकता के प्रति हमारी चिरप्रथित आध्यात्मिकता का विरोध यदि उनके काव्य में अनायास ही फूट पडा है तो इस सूक्ष्म संदर्भ को हमें निरंतर ध्यान में रखना होगा।

क्या हम यह नही मान लेंगे कि आध्यात्मिकता मानव की प्रकृति का एक अनिवार्य आयाम है और संकट के समय हम निरंतर उसकी ओर लौटते रहे हैं? जिसे हमने धर्म का सर्वोच्च सोपान माना है वह आध्यात्म मनुष्य के सीमोल्लंघन का ही प्रतीक है। वह नित्य, शाश्वत, अपरिबद्ध और चिरनवीन आधुनिकता है। आरंभ से ही वह मनुष्य के लिए स्वाभाविक वस्तु रहा है। भगवान बुद्ध से महात्मा गाँधी तक हम यदि भारतीय संस्कृति म जीते आये हैं तो इसका अर्थ यही है कि अध्यात्म हमारी श्वासोच्छ्वास बना रहा है। जितनी कठोरता और संकीर्णता से हमने वर्ण-जाति-संप्रदाय कर्मकाण्ड को पकड कर चलना चाहा है, उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया से संचालित होकर हमने अपने आत्मस्वातंत्र्य की घोषणा की है। वानप्रस्थ और संन्यासी हमारी जीवनचेतना के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। आमुष्मिकता हमारे लिए नित्य नवीन आकर्षण का विषय रही है। घेरे के भीतर बँधा भारतीय समाज और मानस घेरे के बाहर के प्रकाश के लिए निरंतर आकुल रहा है। अंधकार के असंख्य गुंजलकों को भेद कर ज्ञान, प्रेम और भक्ति की मणियाँ देदीप्यमान हैं तो यह भारतवर्ष का सौभाग्य ही कहा जा सकता है।

यहीं महादेवी जी का व्यक्तित्व और उनका साहित्य हमारे लिए महत्वपूर्ण बन जाते हैं। उन्होंने अपने युग के आत्मस्वातंत्र्य के दावे को हमारी राष्ट्रीय प्रकृति (अध्यात्म) के सहारे पूर्णता तक पहुँचाया है। उन्नीसवी शताब्दी की आध्यात्मिक भारत की खोज को उन्होंने वाणी की चरमसिद्धि दी है। वेदांती 'निराला' और संत प्रकृति महादेवी में हमारे युग का नया अध्यात्म फूटा है। तो यह हमारे गौरव की ही बात हो सकती है क्योंकि जिस मध्यदेश की मिट्टी ने उन्हें जन्म दिया है वह याज्ञवल्क्य और जनक विदेह, बुद्ध और महावीर, कबीर और तुलसी की साधना से रससिक्त बनी है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अपने आध्यात्मिक गीतों के लिए बंगाल के बाहर जा कर मध्ययुग के हिन्दी संतों का

स्पन्दन ग्रहण करना पडा था, परन्तु निराला और महादेवी के लिए वे परपरा की सीधी कडी थे। आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अतर और भी स्पष्ट है। कविगुरु के गीत मृत्यु-भय का वर्जन कर अध्यात्म की ओर मुडते है परन्तु महादेवी के गीत अखण्ड के प्रति खण्ड की आकुलता और सुदूर की प्यास को वाणी देते हैं। जो जीवन मे अप्राप्य होकर अतृप्ति का कारण बन गया है, वह भीतर गहरे में निगूढ धन की तरह पहले ही से सचित है, इस सत्य को मानव-हृदय ने सृष्टि के आदिम काल से जाना है। कालिदास ने जिसे 'अबोध-पूर्वा स्मृति' कहा है, जो अपार सुख मे भी हमे उदासीन बना देती है, जो जन्म-जन्मान्तर की पीडा उभार कर हमारी आँखो से आँसू की दो बूँदें निचोड लाती है, वह स्मृति व्यक्ति के जीवन का ही सत्य नही, वह जाति के जीवन का भी सत्य है। धरती के बधन को तोड कर विमुक्त ऊपर उठने की जो आकाक्षा हम मे नृत्य, चित्र और कला का रूप धारण कर लेती है वह ससार के प्रति विराग और किसी अव्यक्त, अनिर्दिष्ट प्रियतम के प्रति उत्कट राग के गीतो मे भी मुखरित हो सकती है। महादेवी का कवि अपराजित है क्योकि वह नि सग, गतिप्राण और स्वनिष्ठ है। वह धन्य भी है क्योकि उसने उनकी चिरनिवेदिता आत्मा मे झाँक कर उसके माध्यम स भारतवर्ष की सहस्रो वर्षो की चिरप्रणयिनी, विरहविदग्धा, अभि-सारिका अत प्रकृति के दर्शन किये है। यह सनातन भारत के व्यवहार का विषय नही, मर्म-बोध का विषय है। यहाँ किंचित् मात्र भी स्खलन नही है। यह 'अछिद्र स्वर-वेणु' है। उसी का व्यावहारिक रूप करुणा है जो मानवतावाद का आधुनिक परिच्छद धारण कर महादेवी जी के अतीत के चलचित्रो और स्मृति की रेखाओ मे अनूदित होता है। सच तो यह है कि 'रहस्यवाद' और 'मानवतावाद' मे कोई विरोध नही है क्योकि जिस एकता की अनुभूति रहस्यवाद की सृष्टि करती है वह करुणा, प्रेम और सेवा की व्यावहारिक भूमिका पर मानवतावाद बन जाती है। हम शब्दो के झमेले म न पड कर अर्थ ग्रहण करें तो पूरी सुरक्षा है।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट है कि हमे महादेवी जी के काव्य को नवजागरण की भूमिका पर देखना है और उसे सास्कृतिक नवचेतना से स्वतत्र मात्र व्यक्तिगत कुठा, अवसाद अथवा आत्मनिरोध की पलातक भावना नही समझना है। उसके आत्मपरिष्कारी, आत्म-स्वातत्र्य-साधक तथा आत्मनिग्रही रूप को हम मध्य वर्ग की नई सस्कृति का प्रमुख अग मान सकते है। इलियट ने एक स्थान पर कहा है कि उपनिषद् भाषा ही नही, वे एक परिपूर्ण अभिव्यक्ति है। महादेवी जी ने और भी आगे बढ कर सतो के विराग और वैष्णव भक्तो की राग-साधना को एक प्रतीकात्मक विधान के रूप मे स्वीकार किया है। पिछली शताब्दियो में भारतीय मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियो को यदि हम आज साधना के क्षेत्र से बाहर ला कर काव्य और कला की रागोलियाँ सजा रहे हैं तो यह स्वाभाविक बात है क्योकि हम अपने राष्ट्रीय और सास्कृतिक व्यक्तित्व का अतिक्रमण नही कर सकते। हमारे अपने युग की एक अत्यत भावसपन्न, सुसस्कृत, मातृत्वमयी, करुणामती नारी के द्वारा यह

समावनाओ मे ही अतर्निहित होती है। औचित्य, सतुलन, मर्यादा, सात्विकता धर्म के नही, जीवन के भी सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। प्लेटो ने काव्य को नीति से सबधित कर और लाजाइनस तथा क्षेमेन्द्र ने उसे उदात्त और औचित्य की भूमिका देकर हमारा उपकार ही किया है। नैतिक मनुष्य भी कवि है जो अपने कर्मों से जीवन के काव्य की रचना करता है और उच्छृखल प्रकृति को छद में बांधता है। कवि यह कार्य कल्पना के द्वारा सपादित करता है। यदि उसकी कल्पना और जीवनानुभूति एक परिपूर्ण महाकाव्य की सर्गबद्धता या राग की मर्यादा नही प्राप्त करती तो वह खण्ड में ही कवि है, वह वाणी की चरम सिद्धि से दूर ही है।

कवि का सपूर्ण परिच्छद वाणीविलास पर ही समाप्त नही हो जाता। उसे निरतर सोपान पर ऊपर उठना होगा। प्रारभत यह अपेक्षित है कि उसका गीत-कण्ठ कोमल, निर्मल तथा छदोमय हो। वह वाणी का वरद पुत्र हो। द्वितीय सोपान पर उसे बिंबो, अलकारो तथा कल्पनाओ का धनी होना चाहिये जिससे वह अपने विचारो, स्मृतियो तथा व्यजनाओ को मूर्त्त रूप दे सके और उन्हें अनेक वर्णिकाभगो से मुद्रित कर एक नए सतुलन, एक अभिनव सघनता, एक अपूर्व सुन्दरता की सृष्टि कर सके। तृतीय सोपान मे, वह सवेदनशील और मुक्त होकर अपने जीवन के अनुभवो तथा अनुभूतियो के आधार पर एक नए भावकल्प, नूतन जगत को जन्म दे। इसके लिए उसे बुद्धिविलास से ऊपर उठ कर अपनी अतरात्मा की गहराइयो में उतरना होगा। विशृखल और अनगढ मूर्त्तियो को देवत्व की भाव-प्रतिमाओ में बदल कर वह अपने जीवन-शिल्पी नाम को सिद्धता देगा। और भी ऊँचे जा कर वह अपनी वासनाओ और सवेदनाओ की मिट्टी को नए ढग से गूँध कर एकदम सर्वोपरि, अकल्पित देवमूर्ति गढेगा जो प्रकृति, इतिहास और सार्वभौम सत्य से पुष्ट ऋतवरा चैतन्य की प्रतिमूर्ति होगी। परन्तु कवि की नियति की चरम उपलब्धि यहीं विराम नहीं पाती। उसे देशकाल-कथा-पुराण विनिर्मुक्त अपनी व्यथा को ही भाव की वाणी देकर तथा उसे आत्मपरिष्कार का माध्यम बना कर अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर को छूना होगा। उसकी वाणी उसके सकल्प विकल्प, सर्पण-ग्रहण तथा राग विराग की वाणी होगी। वह उसकी धर्मसाधना बन जायेगी। रामचरितमानस के बाद वह विनयपत्रिका के भावलोक में प्रवेश करेगा जहाँ केवल देवता है और वह नही है, अथवा वह है तो पूर्ण आत्मसमर्पण के साथ निवेदिता नारी के रूप मे। यदि यह समर्पण निवेदिता नारी का ही समर्पण हो, जैसा महा-देवी के काव्य में है, तो फिर बात ही क्या है। तात्पर्य यह है कि कविता को जीवन का अनुवादक, प्रवक्ता अथवा शिल्पी होना है। कोरी कल्पना, निरुद्देश्य बिंबो की अनर्गल यात्रा, रूपो के काँचमहल मे उभरती हुई असख्य प्रतिमूर्त्तियाँ इस नियति के सम्मुख बालविनोद मात्र हैं। काव्य यदि हमें आतरिक या आध्यात्मिक उपलब्धि से वचित कर पथहारा बना देता है तो वह वाग्विलास है। उसे रामविलास होना चाहिये।

सक्षेप में, हम कवि और काव्य से न्यूनतम क्यो चाहे ? हम उससे अतिम लक्ष्य, उसकी चरम नियति, परिपूर्ण उपलब्धि की अपेक्षा क्यो न करें ? छदोबद्ध, आलकारिक,

गीतिमय, भावप्रवण, आदर्शात्मक और आध्यात्मिक काव्य के उत्तरोत्तर ऊँचे उठते शिखर अंत में चिदाकाश की उस दिक्काल-मुक्त अनन्त नीलिमा में विलीन हो जाते हैं जहाँ काव्य ऋषि अथवा द्रष्टा के मौन में बदल जाता है जिसके लिए निराला ने आह्वान-गीत गाया था—

बैठ लें कुछ देर ।
आओ, एक पथ के पथिक से
प्रिय, अन्त और अनन्त के,
तम - गहन- जीवन - घेर ।
मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड में,
मन की सरलता बाढ में
जल बिन्दु-सा बह जाय ।
सरल अति स्वच्छन्द
जीवन, प्रात के लघु-पात से
उत्थान - पतनाघात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द ।

काव्य की यह तरतमता अधिकाधिक से ही तुष्ट नहीं होगी, वह परिपूर्णता चाहेगी । साहित्यिक विधा के रूप में काव्य एक शाब्दिक अभिव्यक्ति मात्र है । अपने सूक्ष्म रूप में वह अग्निगर्भी चेतना का ज्योतिस्फुलिंग तथा आत्मा का अंत प्रकाश है जो कभी-कभी नामो-रूपो-दृश्यों के इस संसार में प्रतिभासित हो उठता है और हमारे मानसी बिंबों को अलौकिक और अमिट सौन्दर्य से स्पर्श कर द्वन्द्वातीत, समरसी दिव्यानुभूति से भर देता है जिसमें आध्यात्मिक जीवन का आह्वान सन्निहित होता है । साधक की देह की तरह कविता भी जब किसी अदृश्य, अलौकिक, अविज्ञात प्रियतम की बीन बन जाती है तो वाणी धन्य हो उठती है । तब वह कल्पना के इन्द्रधनुषी लोक से ऊपर उठ कर अतिमा के अतीन्द्रिय अमूर्त्त चिन्मय लोक में प्रवेश करती है ।

धर्म जीवनचर्या का काव्य है । वह चरम सत्ता की अनुभूति है जो अन्ततः आत्मरमण है । काव्य धर्म की विनिर्मुक्त, अव्यावहारिक, पूजा और चर्या से विहीन, भावमयी और कल्पनासिद्ध रससाधना है । उसकी सत्ता ही उसकी सर्वोच्च सिद्धि है । वह धर्म और नीति को अत्यंत ऊँचे धरातल से ग्रहण करता है और युगबोध को जीवन-धर्म की संपृक्ति देता है । अपनी सर्वोच्च भूमिका पर काव्य सार्थक कल्पना, समर्थ रूपकता, अस्खलित आदर्शमयता और परिपूर्ण रससिद्धता का उदात्त आयाम है । जीवन के अंतरंगी सत्य से अभिभूत होने के क्षण में वह धर्म अथवा अध्यात्म का प्रतिरूप ही है । इस संगम पर दोनों अपनी चरम विशुद्धता, सात्विकता तथा सर्वहितेच्छा पर पहुँच जाते हैं क्योंकि यहाँ काव्य

कल्पना की निरुद्देश्य क्रीडा और स्खलनशील वासनाओं की अनैतिकता से मुक्त हो जाता है और धर्म सब प्रकार की स्थूलताओं तथा भ्रांतियों को खो कर मात्र निवेदन, केवल समर्पण, परिपूर्ण आनन्द बन जाता है। महादेवी का काव्य धर्म और काव्य के इसी संगम पर स्थित है।

महादेवी का काव्य उनकी अंतर्यात्रा की कहानी है और इस यात्रा में पडने वाली विभिन्न मंजिलें इतनी स्पष्ट है कि उन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। 'रश्मि', 'नीरजा' 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' जैसे नाम ही उनकी साधना के चार आयामों को सूचित करने में समर्थ हैं। इनके पहले हमें 'नीहार' नामक जो प्रगीत-संकलन मिलता है वह निबंध-काव्य या विचार-काव्य मात्र है जो कवयित्री की भाव-साधना की बौद्धिक भूमिका बन सकता है परन्तु स्वतंत्र रूप से अपनी ऐतिहासिक स्थिति बनाने में असमर्थ है। वह गीतिकाव्य नहीं है जो महादेवी जी की विशिष्टता है। यह स्पष्ट है कि उसमें वह इस समय तक अपने गीतकण्ठ की अन्वेषिका ही हैं और आत्मसंकोच ने उनके काव्य को विचाराक्रांत, जटिल और दुर्वह बना दिया है। भावनाओं के गोपन और दार्शनिक की भंगिमा के कारण रचनाएँ सुविचारित नहीं बन सकी हैं। उनमें व्यथा है परन्तु अनिर्दिष्ट, संवेदन है परन्तु भावशबलता से ग्रस्त। रूप विन्यास का तो नितांत अभाव ही है। एक प्रकार से उनमें पीडा का दर्शन ही गढा गया है। जिस छंदोमयी भावोच्छलता को 'काव्य' कहा जाता है वह वहाँ अल्पप्राण ही दिखलाई पडती है। पंत जी ने जिसे 'विचारों में बच्चों की साँस' कहा है, वह बालिका-वय ही यहाँ मुखर है। जिसे प्रचलित अर्थों में 'छायावाद' कहा गया है वह यहाँ प्रचुर मात्रा में मिलेगा। वह वयसंधि का काव्य है जो अकेलेपन, व्यर्थता तथा निःसहायता की आत्महता चेतनाओं से पीडित है।

सहसा स्वर बदल जाता है और हमें 'रश्मि' का पहला गीत मिलता है जो जीवन के आनन्द, सौन्दर्य, अनुराग से परिप्लुत है। यह 'वीणा' के पंत का विस्मय-बोध नहीं है, अंतर की खुली आँख की पहली पहचान में जीवन की सहज स्वीकृति है। उसमें वितृष्णा कहीं भी नहीं है। यह आध्यात्मिक जाग्रति का गीत है। इसे हम महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'निर्झरेर स्वप्न-भंग', पंत की 'प्रथम रश्मि', 'प्रसाद' की 'बीती विभावरी, जाग री।' अथवा 'निराला' की 'प्रभाती' रचनाओं के समकक्ष रख सकते है। अंतर यह है कि जागरण की प्रकृति बदली हुई है। हृदय में किसी का अरुण बाण चुभते ही व्यथा सृष्टि-कथा (सर्जन) में परिवर्तित हो गई है। यह भीतर का जागरण है जो बाहर आलोक, आनन्द और उल्लास का ज्वार उभार देता है—

> चुभते ही तेरा अरुण बान।
> बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान।
>
> इन कनक-रश्मियों में अथाह,
> लेता हिलोर तम सिन्धु जाग,

बुद्बुद् से वह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान ।

प्रिय-मिलन की स्मृतियां का यह सवेरा कवयित्री के हृदय के हास-अश्रु लेकर ही आशा और उल्लास की यह चित्रवेला प्रस्तुत कर रहा है। चित्र के प्रगाढ़ और चटुल रंग तथा कल्पना की विराट् पटभूमि कवि मानस की स्वच्छन्द और उन्मुक्त गति के प्रमाण है। दृगों के कंज-कोश खुल तो गए हैं परन्तु उन पर अभी भी विस्मृति का खुमार छाया हुआ है। प्रभातोदय के पूर्ण वैभव को कल्पना-पट पर अंकित कर अंतिम पंक्तियों में स्मृति के अरुण बाण की तीव्रता और मधुमयता की व्यंजना भी कर दी गई है। यह स्मृति सत्ता की सुरति ही है। काव्य के क्षेत्र में वर्ड्सवर्थ ने अपनी एक प्रसिद्ध रचना 'ओड टु इन्टिमेशन्स आफ इम्मारटेलिटी' में इसका विवरण प्रस्तुत किया है।

जो हो, यह स्पष्ट है कि कवयित्री ने अपने पीड़ा के दर्शन के पीछे ऐसे 'प्रेम के पीर' की भावना की है जो जन्मजन्मांतर से चली आती है और हमें बिछोह की वेदना से भर देती है। यहाँ प्रिय उस सुख का प्रतीक है, 'आलिंगन में आते-आते मुस्का कर जो भाग गया।' प्रकाश छाया, सुख-दुख, भावाभाव की जो आँखमिचौनी प्रकृति और जीवन में चलती रहती है वह किसी की निष्ठुर 'लीला' है। दुख के प्रति आकर्षण और सुख के प्रति विरक्ति मनुष्य में क्या है? क्या यह इसीलिए तो नहीं कि दुख, अतृप्ति और पीड़ा के पथ से ही मानव व्यक्तित्व का विकास संभव है? यदि करुणा जीवन का चरम सत्य है तो अपने भीतर ही अतृप्ति, अभाव और पीड़ा की साधना क्या नहीं की जाये? विश्राम और समरसता यदि हमारे 'होने' पर विरामचिह्न लगाते हों तो उनकी आवश्यकता ही क्या है? यह आध्यात्मिक साधना का सत्य जिसे कवयित्री एक सिद्धांत के रूप में कुछ थोड़ी पंक्तियों में बाँध देती है, उनकी काव्य-साधना का मेरुदण्ड बन गया है। उनके शब्दों में—

चिर तृप्ति कामनाओं का कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी पल में विरक्ति जाती बन।
पूर्णता यही भरने की, ढुल कर देना सूने घन,
सुख की चिरपूर्ति यही है उस मधु से फिर जावे मन।

चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर हो जाना।
मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरतीं आँसू के सागर।

इस अभावजन्य पीड़ा की साधना के लिए महादेवी प्रिय की जिज्ञासा करती है और उसे कभी प्रकृति में, कभी अंतर में खोजती हैं—

कल्पना की निरुद्देश्य क्रीडा और स्खलनशील वासनाओं की अनैतिकता से मुक्त हो जाता है और धर्म सब प्रकार की स्थूलताओं तथा भ्रातियों को खो कर मात्र निवेदन, केवल समर्पण, परिपूर्ण आनन्द बन जाता है। महादेवी का काव्य धर्म और काव्य के इसी सगम पर स्थित है।

महादेवी का काव्य उनकी अतर्यात्रा की कहानी है और इस यात्रा मे पडने वाली विभिन्न मजिलें इतनी स्पष्ट है कि उन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। 'रश्मि', 'नीरजा' 'साध्यगीत' और 'दीपशिखा' जैसे नाम ही उनकी साधना के चार आयामो को सूचित करने म समर्थ है। इनके पहले हमें 'नीहार' नामक जो प्रगीत-सकलन मिलता है वह निबध-काव्य या विचार-काव्य मात्र है जो कवयित्री की भाव-साधना की बौद्धिक भूमिका बन सकता है परन्तु स्वतत्र रूप से अपनी ऐतिहासिक स्थिति बनाने में असमर्थ है। वह गीतिकाव्य नही है जो महादेवी जी की विशिष्टता है। यह स्पष्ट है कि उसमें वह इस समय तक अपने गीतकण्ठ की अन्वेषिका ही हैं और आत्मसकोच ने उनके काव्य को विचाराक्रात, जटिल और दुर्वह बना दिया है। भावनाओ के गोपन और दार्शनिक की मगिमा के कारण रचनाएँ सुविचारित नही बन सकी है। उनमें व्यथा है परन्तु अनिर्दिष्ट, सवेदन है परन्तु भावशवलता स ग्रस्त। रूप-विन्यास का तो नितात अभाव ही है। एक प्रकार से उनमें पीडा का दर्शन ही गढा गया है। जिस छदोमयी भावोच्छलता को 'काव्य' कहा जाता है वह वहाँ अल्पप्राण ही दिखलाई पडती है। पत जी ने जिसे 'विचारो में बच्चो की साँस' कहा है, वह बालिका-वय ही यहाँ मुखर है। जिसे प्रचलित अर्थों मे 'छायावाद' कहा गया है वह यहाँ प्रचुर मात्रा में मिलेगा। वह वय सधि का काव्य है जो अकेलेपन, व्यर्थता तथा नि सहायता की आत्महता चेतनाओ से पीडित है।

सहसा स्वर बदल जाता है और हमे 'रश्मि' का पहला गीत मिलता है जो जीवन के आनन्द, सौन्दर्य, अनुराग से परिप्लुत है। यह 'वीणा' के पत का विस्मय-बोध नही है, अतर की खुली आँख की पहली पहचान मे जीवन की सहज स्वीकृति है। उसमे वितृष्णा कहीं भी नही है। यह आध्यात्मिक जाग्रति का गीत है। इसे हम महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'निर्झरेर स्वप्न-भग', पत की 'प्रथम रश्मि', 'प्रसाद' की 'बीती विभावरी, जाग री।' अथवा 'निराला' की 'प्रभाती' रचनाओं के समकक्ष रख सकते हैं। अतर यह है कि जागरण की प्रकृति बदली हुई है। हृदय में किसी का अरुण बाण चुभते ही व्यथा सृष्टि-कथा (सर्जन) में परिवर्तित हो गई है। यह भीतर का जागरण है जो बाहर आलोक, आनन्द और उल्लास का ज्वार उभार देता है—

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान !
इन कनक-रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,

सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्न-लोक की परियाँ इसमें
भूल गईं मुस्कान ?

सिकता में अंकित रेखा-सा,
वात-विकंपित दीपशिखा-सा;
काल-कपोलों पर आँसू-सा
ढुल जाता हो म्लान।

नश्वरता के इस भार को ढोने वाली कवि की करुणा एक ओर प्रकृति के जगमग वैभव और दूसरी ओर मानव के अभावमय क्रन्दन को देखती है तो विस्मित रह जाती है—

तेरे असीम आँगन की
देखूं जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूं ?

तुझ में अम्लान हँसी है,
इसमें अजस्र आँसू-जल,
तेरा वैभव देखूं या
जीवन का क्रन्दन देखूं ?

यह चमत्कृति ही अंत में निराशा और अवसाद की स्थायी वृत्ति बन जाती है। प्रकृति से हट कर कवि की दृष्टि मनुष्य पर अटक जाती है। उसका साधक-हृदय पीड़ित के ही साथ रहना चाहता है। आँसू उसके प्यारे बन जाते हैं। जीवन की सरिता दुःख की अनंत-सलिला बन जाती है। महादेवी गाती हैं—

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर।
दुख से आविल, सुख से पंकिल,
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग-युग से अधीर।
यह नीरज सित,
लज्जित मीलित,
सी बहती मधुर पीर।

अवनि-अंबर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब कांपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

अथवा--

कौन तुम मेरे हृदय मे ?

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरंतर ?
चूमने पद-चिह्न किसके
लौटते ये श्वास फिर-फिर ?
कौन बंदी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

ब्रह्म-जीव, महत्तम-लघुत्तम, विराट-क्षुद्र, अशी-अश, भगवान और भक्त की अन्योन्याश्रित स्थिति अस्तित्व को रहस्यमय बना देती है। थाह लेना दुस्तर कार्य हो जाता है। खण्ड की जो पीडा उसे अखण्ड से जोडती है वह स्वय प्रियता की वस्तु बन जाती है। अपापविद्ध आत्मा का जन्म यदि ज्योति से है तो उसे बारबार तम से अभिसार क्यो करना पड़ रहा है ? पीड़ा की बात यह है कि कोई शिकायत भी नही हो सकती—

सिंधु को क्या परिचय दें देव !
बिगडते-बनते वीचि-विलास !
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद्-प्राण,
तुम्ही में सृष्टि, तुम्ही मे नाश !
मुझे क्यों देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम !

मनुष्य को केवल मर मिटने का अधिकार है। उसी के अभिमान को लेकर वह बैठा रह सकता है। वह उसे अभिशाप माने या वरदान ?—

दिया क्यो जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियो का कंपन,

सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्न-लोक की परियां इसमें
भूल गईं मुस्कान ?

सिकता में अंकित रेखा-सा,
वात-विकंपित दीपशिखा-सा;
काल-कपोलों पर आंसू-सा
ढुल जाता हो म्लान ।

नश्वरता के इस भार को ढोने वाली कवि की करुणा एक ओर प्रकृति के जगमग वैभव और दूसरी ओर मानव के अभावमय क्रन्दन को देखती है तो विस्मित रह जाती है–

तेरे असीम आंगन की
देखूं जगमग दीवाली ,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूं ?

तुझ में अम्लान हंसी है,
इसमें अजस्र आंसू-जल,
तेरा वैभव देखूं या
जीवन का क्रन्दन देखूं ?

यह चमत्कृति ही अंत में निराशा और अवसाद की स्थायी वृत्ति बन जाती है। प्रकृति से हट कर कवि की दृष्टि मनुष्य पर अटक जाती है। उसका साधक-हृदय पीड़ित के ही साथ रहना चाहता है। आंसू उसके प्यारे बन जाते हैं। जीवन की सरिता दुःख की अनंत-सलिला बन जाती है। महादेवी गाती हैं—

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर ।
दुख से आविल, सुख से पंकिल,
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग-युग से अधीर ।
इसमें उपजा यह नीरज सित,
कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी बहती मधुर पीर ।

यह श्वेत कमल अस्तित्व का कमल है। उसे विरह का जलजात बना कर एक एक अत्यंत सुन्दर रूपक-कथा की सृष्टि कर डाली गई है—

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात ॥
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल;
तरल-जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात ॥

जब यह निश्चित हो गया कि मनुष्य की नियति पीड़ा, रुदन, अतृप्ति, अभाव है और उसे निरंतर होने का अभिशाप दे दिया गया है तो 'साधना' ही सब कुछ हो जाती है। पथ ही मंजिल बन जाता है। 'है' और 'होने' को जोड़ कर यहाँ आत्मवाद और अहंतत्व में गाँठ लगाई गई है। दीपक, पतंग, पथिक, साध्य गगन, टूटा दर्पण—ये सब साधना के प्रतीक अथवा उसकी कठोरता अथवा असफलता के आयाम बन कर महादेवी के काव्य में सुन्दर सांगरूपकों की सृष्टि करते हैं। चातक, मीन, मृग आदि मध्य युग की भक्ति-साधना के प्रतीक भी नए संदर्भ बन कर आते हैं। संतों की सात्विकता, सूफियों की विरहविदग्धता और भक्तों के आत्मनिवेदन को नई काव्य-कला, उद्भट् कल्पना और नई काव्यभाषा के समर्थ उपयोग के द्वारा एक नया आस्था का काव्य रच डाला गया है। अनास्था और बौद्धिकता के इस युग में तुमुल कोलाहल-कलह में हृदय की बात जिस मार्मिकता से महादेवी ने कही है वह स्वयं एक बड़ी उपलब्धि है। उसकी व्यंजना भौतिक, व्यक्तिगत और तात्कालिक न होकर लोकोत्तर, निर्वैयक्तिक और चिरकालिक है। वह मूल और आभ्यंतर मानव की साभिप्राय साधना है, निरुद्देश्य यात्रा नहीं।

'सान्ध्यगीत' में यही अवसाद और भी सघन हो गया है। जिसे पश्चिम में 'द डार्क नाइट ऑफ़ द सोल' कहा गया है वह भावस्थिति यहाँ काव्य के माध्यम से उभरती है। दिन भर की साधना के बाद विरह के जल में खिली कमलिनी साध्य-गगन के विराग, वीतराग तथा विषाद में अपनी अश्रुमती हँसती चितवन से किसी 'पाहुन' की प्रतीक्षा करते-करते थक गई है—

प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग;

छाया सी काया वीतराग,
सुधिभीने स्वप्न रँगीले घन।
साधा का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन।

उसकी प्रार्थना है—

घर लौट चले सुख-दुख विहग,
तम पाछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलका में पाहुन!

अब साधिका के व्यक्तित्व में परिवतन के चिन्ह उभरने लगे है। उसकी प्रतीक्षा सफल होती जान पडती है। प्रिय के रजित पद चिन्हो को हृदय में छिपाये वह किसी छायालोक की स्मृति में डूब गई है। उसके लिए प्रत्येक क्षण कालातीत है। दिक्काल के बधन जैसे टूट गये हो। प्रकृति चमत्कृत है, चकित है। कहाँ गया वह विराग? वह अवसाद? कैसी है यह अनुराग लीला, निश्वास किसके मिलन स्वप्न से रगीन हो उठे? वह अपने से प्रश्न कर उठती है—

राग भीनी तू सजनि, निश्वास भी तेरे रँगीले।

रेख सी लघु तिमिर लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी।
गीत तेरे पार जाते
बादला की मृदु तरी ले।

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रगीन प्रिय के द्रुत पदा की अक-ससृति!
सिहरती पलकें किये—
देती विहँसते अधर गीले।

इसके पश्चात् भावमिलन की स्थितियाँ उभरती हैं। ज्ञात होता है कि नाश ही अनत विकास का क्रम है अश्रु ही स्वप्न की निधियाँ है प्रत्येक पतझड के बाद वसन्त का आना स्वाभाविक बात है। यह अनुभूति कवयित्री को कृतज्ञता के भाव से भर देती है। वह सकोच के दबे स्वरो मे कह उठती है—

अश्रु मेरे मांगने जब
नींद में वह पास आया ।
स्वप्न-सा हँस पास आया ।
हो गया दिव की हँसी से शून्य में सुरचाप अंकित,
रश्मि-रोमों में हुआ निस्पंद तम भी सिहर पुलकित,
अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया ।

अभिसार के क्षण पीछे छूट गये हैं। कहीं आना-जाना नहीं है। प्रकृति की भाँति अपने अंतरतम में भी साधिका ने चरम शांति का अनुभव किया है। प्रश्न उठता है—'क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?' परन्तु हृदय कहता है कि अभिसार सूना नहीं हुआ है। भीतर न कामना का क्रन्दन है, न मिलन की प्यास है, रोम-रोम कंटकित है और श्वास रोके वासनाएँ हृदय में उस महामिलन की लीला देख रही हैं। इच्छाओं का समीर निस्पंद है, स्मृति अब भारजडित नहीं है। कालिदास की तपस्यारत पार्वती का चित्र एक बार फिर जाग उठता है—

दिन-रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार,
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह-पथ सूना अपार !

'दीपशिखा' उपलब्धि का काव्य है। वह सिद्धि है। साधिका ने जान लिया है कि बन्धन ही मुक्ति है। प्रिय के नाते ये बन्धन अब उसे प्रिय बन गये हैं। वह गा उठती है—

क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन ?

बन्धन हैं ही कहाँ, क्योंकि मुक्ति की सिद्धि तो उसी के भीतर से संभव है—

बीन-बंदी तार की झंकार है आकाशचारी,
धूलि के इस मलिन दीपक में बँधा है तिमिरहारी।
बाँधती निर्बन्ध को मैं
बंदिनी निज बेड़ियाँ गिन !

इस परिवर्तित मनोस्थिति के व्यंजक अनेक सुन्दर गीत 'दीपशिखा' की कवयित्री की साधना का अंतिम सोपान बना देते है। भाव और अभाव दोनों उसे रागरंजित लगते है और दोनों का खुले कण्ठ से वह स्वागत करती हैं। कहीं वह वासकसज्जा की तरह कह उठती हैं—

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार ।

कहीं वह पथ के शूलों की चिंता किये बिना प्रिय के 'ज्वाला के देश' की ओर चल पड़ती है—

प्रिय-पथ के यह शूल
मुझे अति प्यारे ही हैं।
हीरक सी वह याद
बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किन्तु
खरा इसको है होना।
चल ज्वाला के देश
जहाँ अंगारे ही है!
तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन-पलकें खोली,
मैंने दुख में प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली!
ठहरें पल भर देव
अश्रु यह खारे ही है!

और अंत में—

विरह की घड़ियाँ हुईं, अलि!
मधु मिलन की यामिनी सी!

अथवा—

मोम सा तन घुल चुका अब दीप सा मन जल चुका है!
विरह के रंगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
वरुनियों में उलझ बिखरे स्वप्न के फीके सुमन ले
खोजने फिर शिथिल-पग
निश्वास-दूत निकल चुका है।

ये चित्र महादेवी के साधना-पक्ष को काव्य की समस्त माधुरी के साथ व्यक्त करते हैं। परन्तु इस भावभूमिका पर पहुँच कर साधना सिद्धि से भिन्न नहीं रह जाती। वह

अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया।
स्वप्न-सा हँस पास आया!
हो गया दिव की हँसी से शून्य में सुरचाप अंकित;
रश्मि-रोमों में हुआ निस्पंद तम भी सिहर पुलकित;
अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया।

अभिसार के क्षण पीछे छूट गये है। कही आना-जाना नही है। प्रकृति की भाँति अपने अंतरतम में भी साधिका ने चरम शांति का अनुभव किया है। प्रश्न उठता है— 'क्यों वह प्रिय आता पार नही?' परन्तु हृदय कहता है कि अभिसार सूना नही हुआ है भीतर न कामना का क्रन्दन है, न मिलन की प्यास है, रोम-रोम कंटकित है और श्वास वासनाएँ हृदय में उस महामिलन की लीला देख रही है। इच्छाओं का समीर नि· स्मृति अब भारजड़ित नही है। कालिदास की तपस्यारत पार्वती का चित्र एक · जाग उठता है—

दिन-रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार;
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह-पंथ सूना अपार!

'दीपशिखा' उपलब्धि का काव्य है। वह सिद्धि है। स· कि बन्धन ही मुक्ति है। प्रिय के नाते ये बन्धन अब उसे प्रिय है—

क्यों मुझे प्रिय हों न बंधन

बन्धन हैं ही कहाँ, क्योंकि मुक्ति की सिद्धि तो उसी ·

बीन-बंदी तार की झंकार है अ·
धूलि के इस मलिन दीपक में बँधा है ·
बाँधती निर्बन्ध को मैं
बंदिनी निज

इस परिवर्तित मनोस्थिति के व्यंजक अन· की साधना का अंतिम सोपान बना देते हैं। भाव और · हैं और दोनों का खुले कण्ठ से वह स्वागत करती है। कहीं कह उठती हैं—

विराम पर पहुँचती है वहाँ अनन्त प्रकाश, अप्रतिम साहस और अक्षय आनंद है। निराशा का स्थान आशा ने ले लिया है। वे अपनी आत्मा को वज्र की कठोरता और तड़ित की दीप्ति दे कर ललकारती हैं—

चिर सजग आँखे उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना,
जाग तुझको दूर जाना।
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत-शिखाओं मे निठुर तूफान बोले।
पर तुझे है नाशपथ पर चिह्न अपने छोड़ जाना!

वह अपनी पीड़ा को सार्थक बना चुकी हैं। बन्धन अब बन्धन नहीं रहे। बंदिनी की पीड़ा ने पिंजरे की तीलियों को भी गीतिमय बना दिया है। अस्तित्व अब भार नहीं रहा। इसीलिए वह साहसपूर्वक कह सकी है—

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
हो उठी है चंचु छू कर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर,
बंदिनी स्पंदित व्यथा ले
सिहरता जड़ मौन पिंजर।
आज जड़ता में इसी की बोल दो।
... ...
क्या तिमिर, कैसी निशा है!
आज विदिशा ही दिशा है;
दूर खग आ निकटता के
अमर बन्धन मे बसा है।
प्रलय-घन में आज राका घोल दो!

अब वे अपने को 'सुहागिनी' समझने लगती हैं—

प्रिय चिरन्तन है, सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं!

और अपने इस सौभाग्य और अनुराग का उन्हे गर्व है:

सखि, मैं हूँ अमर सुहाग भरी!
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

आतरिक उपलब्धि बन जाती है। सुख-दुख दोनो ही समान रूप से वरदान बन जाते हैं। कुछ भी अप्राप्य नही रह जाता। दुख और पीडा को मानव कहाँ तक अपना सकता है। प्रश्न यह है कि ये उसके व्यक्तित्व को तोडने में सफल होते है या उसे वज्र जैसी दृढता देते हैं। व्यथा ही मनुष्य को मनुष्य से जोडती है और उसकी अखण्डता की अनुभूति जगा कर उसमें नई सर्जना की दीप्ति भरती है। भावोपलब्धि के क्षणो में महादेवी जी गा उठती है—

हुए शूल अक्षत, मुझे धूलि चन्दन।
अगरु-धूम सी साँस सुधि-गन्ध-सुरभित,
बनी स्नेह-लौ आरती चिर अकम्पित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक-जलकण!
सुनहले सजीले रँगीले धबीले,
हसित कण्टकित अश्रु-मकरद गीले,
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन!

सिद्धि के ये अमर क्षण भीतर की जिस दीप्ति को अनायास ही उद्भासित कर देते है, वे चिर प्रतीक्षा के गरल को भी पी जाती है। ऐसे कठिन क्षण में साधक की अस्ख-लित चेतना ही उसका सहारा है। यहाँ महादेवी की काव्यसाधना परिणति पर पहुँचती है और उन्हे कुछ कहना ही नही रह जाता। कदाचित् इसीलिए वे मौन है। मिलन के गीत मुखर नही होते।

परन्तु जहाँ महादेवी जी की भावसाधना काव्य के क्षेत्र मे विराम पर पहुँचती है वहाँ वह जीवन के क्षेत्र मे नाना भाँति के पर्व रचाती हैं। उनकी करुणा का कण दीनो-दुखियो, पीडितो और परित्यक्ता को अनायास ही मिलता है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' मे उन्होने अपने कर्ममय जीवन और भावमय व्यक्तित्व की जो झाँकी दी है वह ऐसे अनेकानेक व्यक्तियो से सबधित है जिनके प्रति दैनदिन जीवन में उनकी मानवता और करुणा सचालित हुई है। जिस भावुकता, सहजता और व्यथाप्राणता से ये व्यक्तिगत सस्मरण लिखे गए है वह आधुनिक गद्य-साहित्य में अपूर्व ही है। यह महादेवी की 'शेष कविता' है। यहाँ वे अकुठित, अस्खलित, चिरपरिचित है। रहस्यमयी वेदना और निगूढ पीडा की नायिका महादेवी अपने सपर्क में आये छोटे बडो के प्रति कितनी भावुक और सजग है, एक छोटे-से क्षण को भी पकड कर वे कितना कुछ मातृत्व, कारुण्य, आत्मदान उसमें भरने में समर्थ है कविता के अतरगी जीवन से जीवन की अतरगी कविता पर वे कितनी सरलता से उतर आती हैं, ये बातें उनकी सिद्धि का ही प्रमाण हैं। यहाँ वे जीवन की कलाकार और अशेष मानवता की कवयित्री हैं। अथक जिज्ञासा, घोर निराशा और अबूझ अतर्व्यथा से आरभ कर महादेवी अत में आत्मसमाधान और सकल्पबद्धता के जिस अमर

विराम पर पहुँचती हैं वहाँ अनन्त प्रकाश, अप्रतिम साहस और अक्षय आनंद है। निराशा का स्थान आशा ने ले लिया है। वे अपनी आत्मा को वज्र की कठोरता और तड़ित की दीप्ति दे कर ललकारती हैं—

> चिर सजग आँखें उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना,
> जाग तुझको दूर जाना।
> अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
> या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
> आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
> जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले।
> पर तुझे है नाशपथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना!

वह अपनी पीड़ा को सार्थक बना चुकी है। बन्धन अब बन्धन नहीं रहे। बंदिनी की पीड़ा ने पिंजरे की तीलियों को भी गीतिमय बना दिया है। अस्तित्व अब भार नहीं रहा। इसीलिए वह साहसपूर्वक कह सकी है—

> कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
> हो उठी हैं चंचु छू कर,
> तीलियाँ भी वेणु सस्वर,
> बंदिनी स्पंदित व्यथा ले
> सिहरता जड़ मौन पिंजर।
> आज जड़ता में इसी की बोल दो।
>
> ... ...
>
> क्या तिमिर, कैसी निशा है!
> आज विदिशा ही दिशा है;
> दूर खग आ निकटता के
> अमर बन्धन में बसा है।
> प्रलय-घन में आज राका घोल दो!

अब वे अपने को 'सुहागिनी' समझने लगती है—

> प्रिय चिरन्तन है, सजनि,
> क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं!

और अपने इस सौभाग्य और अनुराग का उन्हें गर्व है:

> सखि, मैं हूँ अमर सुहाग भरी!
> प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

पथ ही उन्हे निर्वाण बन गया है। भव और निर्वाण की जिस एकता का उद्घोष प्रथम बार हिन्दी काव्य मे सिद्ध सरहपा मे फूटा था वही सहस्राधिक वर्षों के बाद महादेवी जी के गीत मे जाग उठता है तो हम दिक्कालमुक्त मानव की चरम सिद्धि के विषय में चकित हो जाते हैं। यह सिद्धि कैसी आनन्दमयी है—

आज थके चरणा ने सूने तम में विद्युत्-लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी की यह मेरी धूमिल काया,
प्रलय मेघ भी गले मोतियो
का हिम तरल उफान बन गया!

. .

पारद-सी गल हुई शिलायें, नम चन्दन-चर्चित आँगन-सा,
अगराग घनसार हुई रज, आतप सौरभ आलेपन सा,
शूला का विष कलिया के
गीले मधुपर्क समान बन गया!

कठिन साधना के बाद सिद्धि के ये पवित्र क्षण खडी बोली की सारी मधुरता और कलामयता तथा प्रकृति के आँगन मे सचयित सर्वश्रेष्ठ उपकरणा से मण्डित होकर मानव की व्यथाप्राणता में सच्चिदानदी अनुभूति को मुखरित कर उसे अमर पथ के यात्रिक के रूप मे अप्रत्याशित बना गये है। गीत की पक्तियाँ आत्मा के सगीत से मधुर प्राणो की लय मे ही जैसे बँध कर सामने आती हैं और हमें विमुग्ध कर देती हैं —

कहो मत प्रलय द्वार पर रोक लेगा,
वरद मैं मुझे कौन वरदान देगा?
बना कब सुरभि के लिए फूल बन्धन?
व्यथा प्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं,
धुला ज्वाल मे मोम का देवता मैं,
सजन श्वास हो क्या गिनूँ नाश के क्षण।

यहाँ अमर प्रेम और करुण विरह की साधना साधिका कवयित्री की वाणी मे सार्वभौमिक, चिरकालिक मानव की अशेष आस्था, अपरिसीम निर्भयता तथा अपराजित स्वप्नशीलता, आशा, उत्साह, मगल और विजय का महोत्सव बन गई है। इस परिणति, इस विराम पर आकर क्या कुछ भी सशय रह जाता है? क्या इन भावमयी पक्तियो में जीवात्मा की आध्यात्मिक जययात्रा के साथ मानव मात्र की चिर विजय का अनन्त जयघोष अनुगूँज नही बन जाता—

पूछता क्यों, शेष कितनी रात ?
अमर सम्पुट में ढला तू,
छू नखों की कान्ति चिर
संकेत पर जिनके जला तू,
स्निग्ध सुधि जिनकी लिए कज्जल-दिशा में धँस चला तू,
परिधि बन घेरे तुझे वे उँगलियाँ अवदात !

प्रणत लौ की आरती ले,
धूमलेखा स्वर्ण-अक्षत
नील कुकुम वारती ले,
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ आ रहे यदि प्रलय झंझावात !
कौन भय की बात ?

प्रकृति को पराजित कर मनुष्य ने अपनी जययात्रा के जो चरण-चिह्न आज समय के रेत पर छोड़े है, वे पश्चिम के लिए वज्र-प्राचीर बन गये हैं। पूर्व इस रहस्य को जानता है। इसीलिए वह आत्मा के विजय-रथ को दिव्यता से अभिषेकित कर अध्यात्म को पाथेय बना कर जीवन-समर में आगे बढना चाहता है। महादेवी जी का काव्य मनुष्य की आध्यात्मिक जययात्रा की गौरव-गाथा है। उसमें कितनी कहानी उनकी अपनी है, कितनी पिछले साधक साधिकाओं की अनुगूँज है, कितनी कवि-कल्पना मात्र है, यह कहना कठिन है। वह आवश्यक भी नहीं है। भाषा उसकी औपनिषदिक हो या उसमें संतों, भक्तों, सूफियों, मर्मियों के स्वर घुलमिल गये हों, जिन क्षणों में जिस सघनता में उनका प्रगाढ अनुभव किया गया है वे महादेवी जी के निजी, नितांत व्यक्तिगत, एकदम गोपनीय क्षण हैं। ये आत्म-रमण, रहस्यमय विरह-मिलन, निःसंग कल्पना के क्षण नई काव्यभाषा को जिस भीतरी कला से गढते हैं, गीत की लय को जैसी सघनता और सँवार देते है, आत्मसंस्कार और अंतरंग उन्नयन को जिस मार्मिकता से सिद्धि की सार्थकता में बाँधते हैं, वह सब रसास्वादन का भी विषय है। पश्चिम के भौतिकवाद और बाहरी जीवन की अस्तव्यस्तता को सूक्ष्म, चिन्मय भाव-जगत की इससे बडी चुनौती, उत्कृष्टतम काव्य-कला के माध्यम से, और क्या मिल सकती थी ? भारतवर्ष के हृदय तथा अमर साधका-गायका के जन्मस्थल मध्यदेश को छोड कर और कहाँ मिल सकती थी ? प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति और काव्य की एक स्वाभाविक नियति होती है। महादेवी के कवि-हृदय ने अपने देश की नियति को पहचाना है और घोर आधुनिकता में शाश्वत आध्यात्मिकता की दीपशिखा जलाई है। उनके काव्य की उपेक्षा असंभव बात है। वह होठों पर आते ही अंतर तक उतर जाता है। उससे बचने

का एक ही मार्ग है, —कि उसकी ओर से आँखें मूँद ली जायें । नयी कविता ने सगीत, लय और छद से अपने को मुक्त कर नयी पीढी को भारतीय सस्कृति और अध्यात्म के दुर्वह भार से एकदम स्वतत्र कर दिया है। नितात अदायद बन कर, सब को अस्वीकार कर, भिक्षा-पात्र की रिक्तता लेकर हम आज विश्व के चौराहे पर खडे है तो इसे क्या कहा जाये ? जब तक हम अपने से बचते रहेंगे, हम महादेवी जी के अत्यत सपन्न एव प्राणोच्छल काव्य के प्रति अन्याय करते रहेंगे। अतत यह हमारा अपने प्रति अन्याय होगा ।

हमारे जातीय मानस के विकास के साथ भारतीय काव्य-सस्कार निरतर विकसित और परिपुष्ट होते गये हैं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, मध्ययुगीन भक्त कवि, रवीन्द्रनाथ और महादेवी काव्य के इसी अत सस्कार और उत्तरोत्तर प्रौढ आयामो की गौरवगाथा प्रस्तुत करते है । बहिर्गत विचारो, पुराणकथाओं की चारित्रिक भूमिकाओ और रूपक-पद्धतियो से मुक्त होकर जहाँ कवि ने अपनी प्रज्ञात्मक अनुभूति के सत्य का ढकने वाले हिरण्यमय कल्पना-पात्र और कला के इन्द्रजाल को भेद कर अमृतत्व के आस्वादन का प्रयत्न किया है, वहाँ हमें निश्चय ही एक नया प्रस्थान बिन्दु मिलता है । मिलन, वियोग, अभिसार और प्रतीक्षा के रूपको के भीतर से महादेवी जी का काव्य जीवन के अत स्रोता तक पहुँचता है और हमारी अतरगी व्यक्तिमत्ता मे अतर्निहित ह्लादिनी शक्तियो से साक्षात्कार करता है । उसके वेणु-स्वर मे वासना की रेणु कहीं भी नही लगती । ऐसा जान पडता है कि स्वय अध्यात्म ने हमारे श्रेष्ठतम मानस को ग्रहीत कर लिया है और नारी कण्ठ के माधुर्य में बँध कर युग की आत्माभिव्यक्ति के लिए विकल हो उठा है । इसीलिए महादेवी जी का काव्य शब्द और लय की गहनता पर नही रुकता, वह प्रत्यक्षानुभूति की तीव्रता तक जाता है। उसमें कवि की अपनी अतर्दृष्टि देश और काल की सीमा में बद्ध विचारो, अनुभूतियो, प्रतीको और आध्यात्मिक उपलब्धियो को चुनौती देती है । मध्ययुग का आध्यात्मिक काव्य जिस साक्षात्कार को कवि की वाणी देता है वह सस्कृत के महाकाव्यो में भी दुर्लभ है । महादेवी जी इसी परपरा को आधुनिकता देकर एक विशिष्ट दिशा में नई काव्यभाषा की सभावनाओ की पूर्ति ही नही करती, वह प्रकृति और कल्पना को नये आयामो मे बाँध कर अतर्जगत के नए प्रकोष्ठो के द्वार खोलती है । वे अपनी काव्य-देह मे चिर पुरातन-चिर नवीन है ।

महादेवी के काव्य के सबध मे एक प्रश्न उठाया जाता है कि वह कितनी दूर तक व्यक्तिगत है और कितनी दूर तक अव्यक्तिगत । सामान्यत यह माना जाता है कि काव्य और कला का जन्म व्यक्तिगत सवेदना से होता है । परन्तु यह भी जानना होगा कि यथार्थ जीवन मे ये सवेदनाएँ सैकडो निरोधो से जकडी रहती हैं और उनकी अभिव्यक्ति आकस्मिक विस्फोट में होती है । काव्य और कला इन्हें उपयुक्त भाषा देकर इस प्रकार मर्यादित करते हैं कि उन्हें निर्वैयक्तिक, विशिष्ट और द्वन्द्वातीत सामरस्य प्राप्त होता है । प्राकृतिक

अथवा मौलिक सवेदनाओ से कुछ दूर हट कर, उन्हें स्मृति में उभार कर, कवि और कलाकार परम विश्राम की मनोस्थिति का अनुभव करता है और अपनी सृष्टि में 'स्वान्तः सुखाय' की अवतारणा करता है। फलत पीडा का काव्य मौलिक दुखानुभूति को पीछे छोड कर स्मृतिजन्य अथवा काल्पनिक अनुभूति द्वारा पुन सृजन का आनन्द देता है। उसमें पीडा की सघनता और तात्कालिकता तो रहती है परन्तु व्यतीत क्षणो के प्रति सहानुभूति की तटस्थता भी साथ मे रहती है। सर्जन के छद में बंध कर व्यक्तिगत-अव्यक्तिगत का भेद शमित हो जाता है। कवि और कलाकार की सरचना अपना स्वतत्र जीवन जीती है और कवि अपने यथार्थ जीवन के सुख-दुख का द्रष्टा बन जाता है। यद्यपि रचना में मौलिक सवेदन का ताप बना रहता है, परन्तु कवि-कल्पना उसे व्यक्तिगत पीडा के क्षेत्र से बाहर निकाल कर सकल्पात्मक अनुभूति के आदर्श और निर्वैयक्तिक स्वरूप मे प्रतिष्ठित कर देती है। महादेवी जी की कृतिया मे यह रूपातर स्पष्ट है क्योकि उनकी सवेदनाएँ नितात व्यक्तिगत होने पर भी आध्यात्मिक भूमिका ग्रहण कर जातीय और प्रतीकात्मक बोध प्राप्त कर लेती है। अपने अवसाद और कुठा को आतरिक दृढता की सकल्पबद्धता मे बदल कर महादेवी जी मध्य युग के मर्मी कवियो और रहस्य-साधको की समकक्षता प्राप्त कर लेती हैं और उनका काव्य आत्मिक उन्नयन तथा आत्मसस्कार का कल्पनामय प्रतिरूप बन जाता है। वह उनके व्यक्तिगत सवेदन की सीमाओ का अतिक्रमण कर कला की वस्तु का रूप धारण कर लेता है। यथार्थ जीवन की असफलता, अतृप्ति और कुठा के बिना उसका जन्म असभव था परन्तु कल्पना द्वारा अध्यात्म में रूपातरित होकर वह शाश्वत भारतीय जीवन और धर्म-साधना का काव्य सस्करण बन गया है।

जहाँ तक महादेवी के काव्य का सबध है, हम उसे आज लगभग एक पीढी का अतर देकर देख रहे है। १९४० में 'आधुनिक कवि'-माला के अतर्गत उनकी अपनी पसन्द की रचनाओ का एक सकलन हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हुआ था और इसके दो वर्ष बाद उनका अतिम गीतिग्रथ 'दीपशिखा' सामने आया। इस बीच में युग भी बदला है और जीवन भी। 'बच्चन' की पक्ति 'युग बदलेगा किन्तु न जीवन।' आज हमें आश्वस्त नही करती। 'आधुनिक मानस', यदि कोई ऐसा शब्द सभव है, सृष्टि-चक्र और मानव-जीवन के किसी लोकोत्तर उद्देश्य मे आस्था नहीं रखता। वह उन्हे ऋतवरा मानता है या इनमे अव्यवस्था देखता है, परन्तु इनके पीछे दिव्यता नही देखता। अधिक-से अधिक ये यात्रिक हैं। फल यह है कि आज हमारी जीवन-यात्रा निरुद्देश्य हो गई है। महादेवी जी जिस समय अपने काव्य की रचना कर रही थी उस समय भारतीय नवजागरण का भावोन्मेष अपने चरमोन्नत शिखर पर था और मध्ययुग की परपराओ का प्रभाव बना हुआ था। धर्म और अध्यात्म से बचने की कोई अनिवार्यता ही नही थी। अत उनके काव्य में आध्यात्मिक सकेता, प्रतीको, अभिप्रायो तथा उद्देश्यो का उपयोग भावनापूर्वक सभव था। सतो, भक्तो और सूफियो की धार्मिक धारणाओ का कल्पनात्मक और सवेदनात्मक प्रभाव

उन पर व्यर्थ नही जा सकता था । उनका कल्पना-जगत वैष्णव धर्म अथवा भक्तिकाव्य के धार्मिक और नैतिक मूल्यो से परिबद्ध था । उस धार्मिक जीवन से हट कर सामाजिक शक्तियो से अनुप्राणित तथा लौकिक एव मानवीय अभिप्रायो में सीमित समसामयिक काव्य 'वामन का डग' बन गया है । वह कितनी तुच्छ चीज है । सर्वहारावाद और अवचेतन की भूमिकाएँ परानुरक्ति, पुराण-धर्म, आत्मसमर्पण और नीति-चेतना का स्थान नही ले सकती । जीवन की महनीयता, दिव्यता तथा ईशावास्यता से छुट्टी लेकर आज का कवि और साहित्यकार जीवन के तथ्यो से ही चिपट गया है और उसकी जीवनास्था अर्थ और काम मे ही बदी हो गई है । सस्ती मस्ती और पराजयवाद से यह निस्सन्देह श्रेष्ठतर भावस्थिति है परन्तु भीतर की रिक्तता उससे नही भरती । फलत राष्ट्रवाद और मार्क्सवाद को धर्म मे ढाल लिया जाता है । विज्ञान, मनोविश्लेपण और अर्थशास्त्र के पूर्वग्रह आज धर्म का स्थान ले चुके है और उनके अपने पण्डे-पुरोहित हैं । जिस मानवतावादी आशावाद अथवा अणुवादी निराशावाद में हमारी चेतना ग्रस्त है वे वैसी गभीर और काव्यमय आधुनिक अभिव्यक्ति नही पा सके है जैसी हमें महादेवी के काव्य में मिलती है । लारेन्स, इलियट और फ्रायड के सिक्के भी आज हल्के पड गये है और अज्ञेय का नेतृत्व भी सकट में है । शिकायत की जा रही है कि वे किसी नूतन अध्यात्मवाद के शिकार हो गए है और प्रगतिशीलता से दूर जा पडे हैं ।

शायद हम यह भूलते है कि प्रत्येक बालक के साथ नया प्रभात जन्म लेता है और नवीन सध्या उसे लोरी सुनाती है । प्रत्येक युग अपने कवि के दर्पण में अपना चेहरा देखना चाहता है । क्योकि वही उसकी सुन्दरता का साक्षी हो सकता है । प्रत्येक युगदृष्टि अपने द्रष्टा को जन्म देती है । हमारा अपना युग न काव्य से क्षीण है, न साहस से । भौतिक सपन्नता से आध्यात्मिक सपन्नता का कोई मौलिक विरोध भी नही है । शील और सात्विकता, सुन्दर और उदात्त, सत्य और शिव प्रत्येक पीढी के साथ शाश्वत तथा निरतर अभिव्यक्ति पायेंगे । कवि का दायित्व और धर्म है कि वह उन्हे अपने युग के लिए उजागर और चरितार्थ करे । नया गीत, नया कण्ठ आत्मा की माँग बना रहगा । युगबोध का जो सघनतम, गहनतम, महत्तम है वही आत्मानूभूति के भावुक रगो मे रँग कर युग की आध्यात्मिकता बन जायेगा । उसके लिए हम नई भाषा गढ़ें, या उपनिषदो अथवा सतो-सूफियो की भाषा को अपनाएँ, कोई विशेष अतर नही पडता । सैफो, राबिया, आण्डाल, मीराँ और महादेवी जिस विरहिणी राधा की अभिव्यक्तियाँ हैं, वह बाहर कहीं नहीं, हम में से प्रत्येक के भीतर मूर्तिमती कोमलता के रूप में विराजमान है । मनुष्य की करुणा, समर्पणशीलता, आत्मबलि तथा अतृप्ति का कोई अत नही है, क्योकि उसे निरतर 'होना' है । महादेवी जी का काव्य व्यथाजडित इन शाश्वत प्राण-ततुओ से बँध कर अमर है । वही उनकी आत्मकथा है ।

अरुणा

पंचम भाग : चित्रकला

वह जंगम त्रिवेणी हैं

श्री राय कृष्णदास

जो जग जगम तीरथ राजू—तुलसी

श्रीमती महादेवी वर्मा का साक्षात्कार होने के कई वर्ष पहले से मैं उनके सपर्क मे आ गया था जब उन्होंने श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वारा मुझे यह गौरव प्रदान किया कि मैं उनकी नीरजा की भूमिका लिख दूँ। कवयित्री के रूप में तो उससे भी कई साल पहले से मैं उनका प्रशसक था, हिन्दी काव्याकाश में एक नवीन ज्योति के रूप मे उनके दर्शन मिल चुके थे।

जब उनके साक्षात् का सुयोग प्राप्त हुआ तो उनके साफ सुथरे रहन-सहन, उनके रुचिर व्यक्तित्व और उनके हार्दिक सुस्वादु आतिथ्य से जो पुलक हुई वह अविस्मरणीय है। उनका व्यक्तित्व उनके कृतित्व से कम प्रभावित नही करता, कई अशो मे तो उससे भी अधिक।

कुछ दिना बाद जाना कि उनकी प्रतिभा कविता तक ही सीमित नही। रग और रेखा की भाषा पर भी उन्हें उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना शब्दा पर।

कवियो में अपने देश म रवीन्द्र ही ऐसे हुए जिन्होंने चित्रकारी के भी सफल प्रयोग किए। किन्तु उनकी चित्रकारी की दिशा बिलकुल भिन्न थी। उनकी कविता से उसका कोई सम्बन्ध न था। जब वे साठ बरस के ऊपर चल रहे थे, उन्होंने तूलिका ग्रहण की और तब उन्होंने जो अकन किए वे, सुप्रसिद्ध कलालोचक श्री अर्धेन्द्रकुमार गागुली के शब्दा मे, उस बालक के अकन थे जो कवि-गुरु के अन्तर्मन मे सो रहा था और उनकी अपर-षष्ठी के बाद जाग उठा था।

इसके विपरीत,* महादेवी जी का अकन उनकी कविता का अग है। उनके अकनो मे हमें उनके अमूर्त भावो का मूर्त दर्शन मिलता है। दूसरे शब्दो में, उनकी बिम्बग्राहिता अमूर्त भावा को किन मूर्त रूपा मे देखती है, यह उनके चित्रों द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है और इस प्रकार शब्दो और रग-रेखाओ में सामजस्य स्थापित होता है एव कवयित्री के मनोजगत् के अव्यक्त की व्यक्त झाँकी हमें प्राप्त होती है। इस दृष्टि से ये चित्र अपना सानी नही रखते। चित्रकला का और कविता का ऐसा अनोखा सगम गगा-यमुना के सगम वाले तीर्थराज के अनुरूप ही है।

* यह तुलना कुछ और आगे बढाई जानी चाहिए—गगा यमुना के सगम की समग्रता

महादेवी जी की चित्रकला

श्री शम्भुनाथ मिश्र

महादेवी जी के चित्र सर्वप्रथम १९३५-३६ मे प्रकाशित हुये थे। पिछले ३०-३२ वर्षों में उनकी चित्रकला जिज्ञासा का एक विषय बनी हुई है। इस बीच में महादेवी जी ने साहित्य एवं कविताओ की दिशा मे ही कार्य नही किये बल्कि उन्होने चित्रकला के सम्बन्ध में भी अनेकों कार्य किये। अपनी कविताओं के सग ही सग वे निरन्तर चित्रकला की भी साधना करती रही।

महादेवी जी के दो चित्र 'वर्षा' और 'साध्य सगीत' उनके प्रारम्भिक चित्र हैं। 'साध्यगीत' में 'दीपक' नामक चित्र टैगोर-शैली मे अंकित सम्भवत उनका प्रथम चित्र है, क्योंकि प्रयाग महिला विद्यापीठ की एक चित्र-प्रदर्शनी मे यह चित्र रक्खा गया था। प्रसगवश मैं प्रयाग महिला विद्यापीठ महाविद्यालय के 'कला-विभाग' की चर्चा आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि महादेवी जी प्रयाग महिला विद्यापीठ मे सन् १९३२ से प्रिंसिपल रही हैं और उनकी प्रेरणा से सन् १९३५ मे जब 'कला विभाग' की स्थापना का अधिवेशन हुआ तो उस समय चित्रकला की भी एक बडी प्रदर्शनी हुयी थी। उसका उद्घाटन तत्कालीन 'लीडर' के सम्पादक सर सी० वाई० चिन्तामणि ने किया था और चित्र-प्रदर्शनी के सयोजक प्रयाग सग्रहालय के प्राण स्वर्गीय प० बृजमोहन व्यास थे। उस प्रदर्शनी मे बहुत से चित्रकारो के चित्र थे। महादेवी जी के चित्र दो या तीन से अधिक नही थे। उस 'समय दीपक' नामक चित्र के लिये व्यासजी ने आग्रह किया, क्योंकि वे उसे प्रयाग सग्रहालय के लिये चाहते थे। अन्त में महादेवीजी ने अपने मूल चित्र की प्रतिलिपि तैयार करके व्यासजी को म्युजियम के लिये दे दिया था और आज भी वह चित्र प्रयाग सग्रहालय मे प्रदर्शित है।

विद्यापीठ मे कला-विभाग की स्थापना प्रयाग मे चित्रकला-शिक्षा की एक नयी भूमिका थी। विद्यापीठ मे प्रति वर्ष भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो से बहुत सी छात्रायें हिन्दी पढने के लिये आती थी और महादेवी जी की प्रेरणा से उनमें से अधिकाश ने चित्रकला की शिक्षा भी प्राप्त की और आन्तरिक रूप से महादेवी जी की चित्रकला और कला-विभाग की चर्चा समस्त प्रान्तों में फैली हुयी थी। महादेवी जी ने 'कला-विभाग' की चित्रकला-शिक्षा और उसके प्रचार में बहुत बडा कार्य किया। इसके अतिरिक्त उसी समय उन्हें अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार महात्मा गांधी के कर-कमलो द्वारा प्राप्त

हुआ था। अतएव काव्य क्षेत्रों में एक विशेष प्रसिद्धि के कारण और चित्रकला ये दोनों हिन्दी साहित्य के भंडार को समृद्ध कर रखा था। यही कारण है कि उस समय महिला विद्यापीठ में प्रतिदिन अनेकों साहित्यकारों तथा कवियों का तांता लगा रहता था। उस समय देश-विदेश के चित्रकार भी आने लगे थे और उनका तथा महादेवी जी का विचार विनिमय भी हुआ करता था। महादेवी जी के यहाँ जो चित्रकार समय-समय पर आये, उनके कुछ नाम इस प्रकार है सर्वश्री अनागारिक गोविन्द, क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार, शैलेन्द्र नाथ डे, सुधीरंजन खास्तगीर, राम गोपाल विजयवर्गीय, वर्दा उकील तथा कुमारी अमृत शेरगिल आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन सब चित्रकारों के आने के कारण विद्यापीठ का वातावरण नित्यप्रति कलात्मक बनता जा रहा था, तथा महादेवी जी की रुचि तत्कालीन चित्रकला की नई धारा के सम्बन्ध में क्रमश बढ़ती जा रही थी और उन्होंने अपने चित्रों में भारतीय परम्परा को आत्मसात कर लिया था। उस परम्परा के संग महादेवी जी के चित्र अधिकतर 'दीपशिखा' में प्रकाशित हुए थे। इसके अतिरिक्त महादेवी जी ने बहुत से चित्रों को अपनी कविताओं के अनुरूप तथा बहुत सी कविताओं का अपने चित्रों के अनुरूप निर्मित किया था। और बहुत से स्वतन्त्र चित्र भी निर्मित किये।

'दीपशिखा' के चित्रों में मुख्य बात ध्यान देने की यह है कि महादेवी जी की प्रारम्भिक चित्र-शैली की अपेक्षा 'दीपशिखा' के चित्रों में भारतीय चित्र शैली की विशेषता और उसका प्रभाव अधिक है। महादेवी जी की प्रारम्भिक चित्र शैली से मेरा तात्पर्य उन चित्र-शैलियों से है जो 'साध्यगीत' में सबसे पहले प्रकाशित हुए थे।

'दीपशिखा' के चित्रों में रेखाओं की विशेषतायें मुख्य रूप से रही है। उनमें रंगों का बाहु चित्रों, की भाव भंगिमा लयात्मक हैं। नृत्य गीत और भावना का व्यापक संचार 'दीपशिखा' के चित्रों में अधिक है।

चित्रों की अन्य प्रदर्शनियाँ : १९३५ की सर्वप्रथम चित्र प्रदर्शनी जो विद्यापीठ में हुई थी उसके अतिरिक्त अन्य प्रदर्शनियों में भी महादेवी जी के चित्र प्रदर्शित किये गये थे। १९३६ के दिसम्बर में लखनऊ में एक चित्र-प्रदर्शनी हुई थी जिसके संयोजक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी थे, उस प्रदर्शनी में महादेवी जी का एक चित्र (मीरा) की भारी प्रशंसा हुई थी। उस प्रदर्शनी में हिंदी के महान कवि स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी भी उपस्थित थे। महादेवी जी की एक प्रदर्शनी १९४० में प्रयाग के एनी बीसेन्ट हाल में हुई थी, जिसकी संयोजिका त्रिपुरा की महारानी थी। त्रिपुरा की महारानी की रुचि चित्रकला में अधिक थी और उन्होंने भी अपने चित्र को प्रदर्शित किया था। विद्यापीठ में प्राय प्रत्येक वर्ष चित्र-प्रदर्शनी होती रही है और महादेवी जी के चित्रों का प्रदर्शन हिंदी के विद्यार्थियों के क्षेत्र में एक दूसरे प्रकार से अपना व्यापक रूप ले रहा था। प्रदर्शनी देखने के लिए बहुत से राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता जो समय-समय पर विद्यापीठ में आते रहे उनमें कुछ के नाम उल्लेखनीय है। सर्वश्री काका कालेलकर, महात्मा नारायण स्वामी, सम्पूर्णानन्द, गोविन्द वल्लभ पन्त, बम्बई

के चीफ मिनिस्टर बी० जी० खेर, सी० डी० देशमुख, राय कृष्णदास, व्यासजी, रामचन्द्र टंडन, राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, डा० कैलाशनाथ काटजू, डा० ताराचन्द, डा० मैथिलीशरण गुप्त तथा अनेक साहित्यकार भी आये। महादेवी जी ने भारतीय चित्रकला के सार्वजनिक क्षेत्र में अपने चित्रों की प्रदर्शनी करना पसन्द नहीं किया। जिसका मूल कारण उन्होंने सान्ध्यगीत की भूमिका में स्पष्ट कर दिया है। और इसके संबंध में आगे विचार किया जायगा। विद्यापीठ में आरम्भ से ही कांग्रेस के राष्ट्रीय नेताओं का आगमन तथा हिन्दी पढ़ने के लिए विभिन्न प्रांतों से विद्यार्थिनियों का आवागमन और राष्ट्रीय कार्यों में उनका भाग लेना ये सब ऐसे कारण थे जिससे पुलिस की निगाह विद्यापीठ पर बराबर रहती थी। ऐसी परिस्थिति में भारत की राष्ट्रीय चित्रकला और उस संबंध में ठोस कार्य करना एक बहुत बड़ी समस्या थी। ऐसी पृष्ठभूमि के अन्तर्गत महादेवी जी का जीवन कला और साहित्य की दृष्टि से कैसा बीता इसका आखों देखा हाल और कल्पना में अन्तर है, ऐसी ही पृष्ठभूमि में बंग-दर्शन का प्रकाशन तथा महादेवी जी के चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी की चर्चा आवश्यक समझता हूँ क्योंकि उस समय यह बहुत बड़े साहस का काम था।

१९४३ में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। उसमें कई लाख व्यक्ति कलकत्ते की सड़कों पर भूखों मर गये। अखबारों ने १६००० व्यक्तियों से भी अधिक मृत्यु का समाचार प्रकाशित किया था। उस भुखमरी में सबसे बड़ी बात यह थी कि कलकत्ते की सड़कों पर जो लोग भूखों मर रहे थे, उनके शव गिद्ध, स्यार और भेड़िये खा रहे थे। दिन दहाड़े वे लाशों को नोच-नोच कर खाते थे। और तड़पता हुआ शव दिखाई पड़ता था। इन दृश्यों के फोटोग्राफ भी प्रकाशित हुए थे। यह सारा काण्ड दो मास के भीतर अचानक उपस्थित हुआ था। सारे देश में बंगाल का प्रश्न बड़ा ही गंभीर था। बंगाल के सम्बन्ध में कोई स्वतंत्र भाषण नहीं कर सकता था। इस अवसर पर महादेवी जी ने कई तैलचित्र बनाये जिनकी प्रदर्शनी महिला विद्यापीठ में की गई। अन्य लोगों के चित्रों में महिला विद्यापीठ की छात्राओं के भी चित्र थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से श्री आर० एन० देव ने भी भुखमरी के सम्बन्ध में दो तैलचित्र भेजे थे। प्रदर्शनी का उद्घाटन अमृत बाजार पत्रिका के सम्पादक श्री तुषारकांति घोष ने किया था। उस अवसर पर महाकवि निराला भी उपस्थित थे। उसी अवसर पर 'बंगदर्शन' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की गई जिसमें महादेवी जी के दो तैलचित्र तथा अन्य लोगों के चित्र हैं। 'बंगदर्शन' केवल चित्रों की पुस्तिका नहीं थी, उसमें हिन्दी के कुछ कवियों की कविताएँ भी बंगाल की भुखमरी के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई थीं। उनमें सर्वश्री हरिवंश राय बच्चन, एक भारतीय आत्मा, निराला, डा० रामकुमार वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, इलाचन्द्र जोशी, गंगाप्रसाद पाण्डेय की कविताएँ थीं। महादेवी जी की प्रसिद्ध कविता 'भू वंदना' भी प्रकाशित हुई थी। उक्त पुस्तिका की बिक्री हाथों-हाथ हुई तथा बंगाल के पीड़ितों के सम्बन्ध में प्रदर्शनी और पुस्तकों से जो कुछ धनराशि एकत्र हुई वह महादेवी जी ने सरोजिनी

नायडू के पास भेजवा दिया था।

मेरे विचार से चित्रकला के राष्ट्रीय क्षेत्र मे जनसेवा की दृष्टि से महादेवी जी का यह एक नया कदम था। किन्तु यह आगे इसलिए नहीं बढा कि उस समय देश की परिस्थिति दिन प्रतिदिन गिरती गई। 'भारत छोडो' आन्दोलन के कारण देश मे दगे, विभाजन और शरणार्थी समस्या अनेको परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई तथा भारत मे नई शासन-शक्ति की स्थापना भी एक महत्व पूर्ण विषय था। ऐसे सन्दर्भ मे महादेवी जी की चित्रकला नहीं बल्कि भारत के सम्पूर्ण चित्रकारो का भविष्य खतरे मे पड गया था। इस नये खतरे से हिन्दी के कवि और साहित्यकार भी अछूते नही रहे, और वह बडा खतरा आज भी हमारे सामने है। भाषा के प्रश्न पर हिन्दी और समूह का राजनैतिक समझौता हो सकता है, किन्तु जहाँ तक कला और सास्कृतिक सौन्दर्य का पक्ष है वह सामूहिक समझौते पर आश्रित नहीं है। मेरा विचार यह है कि साहित्य एव कला की साधना मे व्यक्तिगत प्रेरणा ही कार्य करती है।

आज की पृष्ठभूमि लोकतन्त्र पर आश्रित है, इसमे नाना प्रकार के आन्दोलन हैं और चारो ओर कोलाहल है, ऐसी परिस्थिति मे भारतीय चित्रकला एव छायावादी चित्रकला तथा महादेवी जी के चित्रो के सम्बन्ध म क्या कहूँ, क्योकि छायावादी प्रकाशन अब अतीत की वस्तु हैं। अब नई कविता, नई चित्रकला का युग है। नये-नये साहित्य और नये नये विचारो का नित्यप्रति प्रादुर्भाव हो रहा है। रस्किन के शब्दो मे 'नई वस्तु का अर्थ यह नहीं है कि जो कभी नही थी, बल्कि नई वस्तु उसे कहते हैं जो पहले रही हो और आज लोग उसे भूल गये हैं।' छायावाद, पिछले ५० वर्षों की निधि नहीं है बल्कि वह एक सनातन परम्परा है, जिसे लोग भूल गये थे। इसके ज्ञान के लिए हमें सस्कृत तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास देखना चाहिए।

छायावादी चित्रकला छायावाद की अभिव्यक्ति चाहे चित्रकला में हुई हो और चाहे काव्यधारा के सग परिचालित हो, दोनो के उद्देश्य एक ही रहे हैं। अतएव, उस उद्देश्य को समझने के लिए हमे आगे चलना चाहिए।

हिन्दी साहित्य का मध्यकालीन इतिहास चित्रकला की दृष्टि से बडा ही सम्पन्न रहा है। इसी काल मे सूरदास, कबीर, तुलसी और केशवदास के काव्य-साहित्य का विकास हुआ। रीतिकालीन कवियो ने कला की दृष्टि से हिन्दी काव्यधारा के सग नायक-नायिका-भेद की परम्परा के द्वारा मध्यकालीन राजस्थानी चित्रकला मे चार चाँद लगा दिये थे। हिन्दी साहित्य और रीतिकालीन काव्यधारा और चित्रकला का अतीव सुन्दर युग १८ वी शताब्दी मे समाप्त हो चुका था। कॉगडा की चित्रकला मे जितने भी सुन्दर कार्य हुए वे भारतीय चित्रकला के गौरव हैं। कॉगडा की चित्रकला अतीव सुन्दर और स्वस्थ चित्रकला है। नायक-नायिका-भेद तथा अन्य समस्त चित्र काव्य-मर्यादा की विशिष्ट कसौटी पर रखे जा सकते हैं। रीति-काल के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे जो गुण-दोष आदि कहे गये हैं, वे कॉगडा की चित्रकला मे भी

हो सकते है, क्योंकि वे यथार्थ के अधिक निकट है, किन्तु चित्रों का सौन्दर्य और उनका वैसा आकर्षण छायावादी चित्रकला में नहीं है। छायावादी चित्रकला और काव्य का आदर्श अदृश्य रहा है जिसके कुछ मूल कारण भी रहे है । उस मूल कारण मे भारत की पराधीनता सन्निहित थी। उस पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए तथा अपना कलक धोने की दृष्टि से छायावाद की रूपरेखा 'भारत भारती' के आँसुओं के बल ही आगे बढ सकी हैं। उसके शिल्प मे 'वाद' की विशेषता है। मध्यकालीन चित्रकला के विशिष्ट सौन्दय को उसने अपने आँसुओं से धो दिया है। इसीलिए छायावादी चित्रकला मे धुंधली छाया, अस्पष्ट भावनाएँ, रेखाएँ और शैलियाँ मिलती हैं। इसमे सन्देह नहीं कि कबीरदास ने अपनी वाणी के अन्तर्गत जिस रहस्यवाद को जन्म दिया वह छायावाद की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है

"काशी मे हम प्रगट भये रामानन्द चेताये
समरस का परवाना लाये हम उबारन आये"

"झीनी झीनी बीनी चदरिया"
"आठ कमल दल चरखा डोलै"
"घूँघट का पट खोल रे तुझे राम मिलेंगे"

उपर्युक्त पक्तियों के आधार पर कबीर के रहस्यवाद का एक व्यापक ज्ञान हो सकता है। इस सम्बन्ध मे इगला-पिंगला दो नाडियो की चर्चा हिन्दी काव्यधारा मे रहस्यवाद के अन्तर्गत ही की गई है किन्तु फिर भी रहस्यवाद का अन्त योगिया के भी समझ म नही आया

"ध्यानावस्थित तदगतेन् मनसा पश्यन्ति ययोगिनो ।
यस्यान्त न विदुस्सुरेगणा देवाय तस्मैनम ॥"

जहाँ तक महादेवी जी की चित्रकला का सम्बन्ध है वह छायावादी कला मात्र की व्यापक परम्परा है जो सनातन काल से चल रही है। वह उसी का अग है। छायावाद की परम्परा 'ऋग्वेद' के समय से ही हमे प्रामाणिक रूप से ही मिल सकती है। काव्य मे उसकी एक ऐसी परम्परा रही है जिसे हम आज भी छायावाद से पृथक नहीं कर सकते। यह सही है कि सामन्तशाही काल मे हिन्दी रीति काव्यधारा यथार्थ के अत्यन्त निकट चली गयी है। कवि और कलाकारो मे भी वैयक्तिक दोष भी रहे है। अपने उन वैयक्तिक दोषो के कारण उनके काव्य और कला मे कहीं-कहीं अतिशयोक्तियो का उपयोग इस प्रकार हुआ है कि वे बडी ही साधारण रचनाये जान पडती है। किन्तु इसका उत्तरदायित्व देश, काल और समाज पर हो सकता है । कौन सी कविता किस सन्दर्भ मे लिखी गई और कौन सा चित्र किस वातावरण मे निर्मित हुआ, इस सम्बन्ध मे सम्बन्धित युगो की पृष्ठभूमियो का अध्ययन और उनका ज्ञान भी आवश्यक है। आज हम जब छायावादी कविता और चित्रकला को देखते

हैं तो हमें उनके रचना-काल की सामाजिक परिस्थितियों को भी देखना चाहिए। किसी भी चित्र का निर्माण केवल कोरे चित्रपट पर अथवा श्वेत पृष्ठभूमि में हो सकता है किन्तु सौन्दर्य-शिल्प की दृष्टि से अधूरा ही कहा जायगा। छायावादी चित्रों में सौन्दर्यबोध की जो परम्परा रही है उसके अनुरूप आज हम विचार नहीं करते बल्कि सीधे चित्र-शैलियों पर प्रहार कर बैठते हैं। यह ठीक नहीं है, वह ठीक नहीं है, इसमें अशुद्धियाँ हैं, हाथ और पैर पतले हैं और आँखें बड़ी हैं आदि-आदि। इस प्रकार के बाह्य आक्षेप करने की एक परम्परा चल गई है। *ठीक यही बात छायावादी चित्रकला में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के समय से ही चलती* चली आ रही है। इसके पहिले यदि हम अपभ्रंश काल में पहुँचें तो वहाँ भी हमें अपभ्रंश शैली के चित्रों में इसी प्रकार के वादविवाद मिलेंगे। अपभ्रंशकालीन चित्रकला जिस प्रकार एक अपूर्ण शैली में परिचालित रही है तथा लेखन लिपियों के संग ही संग चित्रों को भी घसीटने का प्रयत्न किया गया था उसी प्रकार भारतीय चित्रकला जो गत ५० ६० वर्षों से चल रही है उसमें भी बहुत सी अपूर्णतायें रही हैं। बहुत सी शैलियाँ मनमाने ढंग से लोगों ने चलायी और नये-नये स्कूल कायम किये। इसलिए महादेवी जी की चित्रकला को समझकर के तथा हमें *उसके व्यापक सिद्धान्तों को भी समझने के लिए डा० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रकला* का अध्ययन करके आगे चलना चाहिए क्योंकि भारत में अभी तक चित्रकला का जो आन्दोलन चल रहा है उसमें कवि और चित्रकार एक दूसरे से पृथक कार्य करते आये हैं किन्तु शिल्प की दृष्टि से दोनों ने अपने-अपने क्षेत्रों में 'भारत भारती' की महान भावनाओं को और उसकी व्यापक करुणाधाराओं को अपने अपने क्षेत्रों में व्यक्त किया है। इसीलिए कुमार स्वामी को यह कहना पड़ा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ एक-एक चित्र हैं और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र एक-एक कविताएँ हैं। बँगला साहित्य में चित्रकला और कविता दोनों का सामंजस्य *समान रूप से रहा किन्तु हिन्दी साहित्य में कविता की दृष्टि से छायावाद एकांगी ही रहा।* यहाँ तक कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में जो चित्र भारतेन्दु के समय से प्रकाशित होते आ रहे हैं उनसे यही लगता है कि हिन्दी की अपनी कोई चित्रकला नहीं रही।

महादेवी जी की चित्रकला, हिन्दी साहित्य का महान गौरव है, और उससे हिन्दी साहित्य में चित्रकला की एक ऐसी परम्परा स्थापित होती है, जिसे छायावाद का विशिष्ट प्रतीक मानना चाहिए। आरम्भ में तो मैं महादेवी जी की चित्रकला को छायावादी नहीं *मानता था। मैं केवल कविताओं को ही छायावाद का प्रतीक मानता था,* किन्तु संयोगवश १९३६ में पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने छायावादी चित्रकला के सम्बन्ध में मेरा ध्यान आकर्षित किया और इस सन्दर्भ में उन्होंने अवनीन्द्रनाथ की परम्परा को विशेष रूप से महत्व दिया। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से मुझसे कहा कि 'महादेवी जी की चित्रकला छायावादी कलाकृति है।' *तब से मैं त्रिपाठी जी की* विचारधारा पर गहराई से विचार करने लगा और छायावाद की दृष्टि से मैंने बहुत दिनों तक विचार किया। इस सम्बन्ध में महादेवी जी से वार्ता करने के पश्चात् मुझे उनकी लिखी हुई निम्न पंक्तियों के आधार पर भारतीय चित्र-

कला की छायावादी प्रगति के सम्बन्ध मे निश्चय करना पडता है। महादेवी जी ने अपने चित्रो के सम्बन्ध मे लिखा है—"अजन्ता के चित्रो पर के अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण मे चित्रो मे यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है।" महादेवी जी के इस कथन के पश्चात छायावादी चित्रकला के सम्बन्ध मे अधिक जानने की आवश्यकता नही है क्योकि चित्रकला मे केवल भावनाओ की छाया नहीं बल्कि टेक्निकल दृष्टि से उसमे प्राचीन चित्र परम्परा की भी छाया मिलती है। यह सही है कि अजन्ता की चित्रकला पूर्णरूप से इस युग की चित्रकला मे विस्तृत नहीं हो सकी किन्तु उसके आधार पर केवल महादेवी जी ही नही बल्कि भारत के समस्त चित्रकारो ने अजन्ता की चित्र परम्परा की छाया को अपने चित्रो मे आत्मसात अवश्य किया है।

चित्रकला सम्बन्धी महादेवी जी के विचार महादेवी जी ने लिखा है—'मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि चित्रकार के लिए कवि होना जितना सरल है उतना कवि के लिए चित्रकार हो सकना नहीं। कला जीवन मे जो कुछ भी सत्य शिव सुन्दर है सब का उत्कृष्टतम विकास है परन्तु उस उत्कृष्टतम विकास मे भी श्रेणियाँ है। जो कला भौतिक उपकरणो से जितनी अधिक स्वतत्र होकर भावो की अभिव्यजना मे जितनी अधिक समर्थ हो सकेगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भाव-व्यजना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तुकला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक सामग्री के अभाव और भाव-व्यजना की अधिकता से पूर्ण काव्यकला उसका सब से ऊँचा अन्तिम सोपान मानी जायगी। चित्रकला, वास्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतत्र होने पर भी काव्यकला की अपेक्षा अधिक परतन्त्र है कारण वह देश के ऐसे कठिनतम् बधन मे बँधी है जिसमे चित्रकला बने रहने के लिए उसे सदा बँधा रहना ही होगा। स्वतत्र वातावरण का विहारी विहग अपने स्वभाव को बधनो के उपयुक्त उतनी सरलता से नही बना पाता जितनी सुगमता तथा सहज भाव से बन्धनो का पक्षी उन्मुक्त वातावरण की पात्रता प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक कवि चित्र के, लम्बाई-चौडाई सयुक्त देश के बन्धनो और भावो की अपेक्षाकृत सीमित व्यजना से क्षुब्ध सा हो उठता है—न वह इन बन्धनो को तोड देने मे समर्थ है और न काव्य के वातावरण को भूल सकता है।

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है जो चित्रकार को कवि से एकाकार न होने देगा। चित्रकला निरीक्षण और कल्पना तथा कविता भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर है। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओ मे बाँध कर रग से जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है, परन्तु कवि के लिए भावातिरेक और कल्पना की सहायता से किसी लोक की सृष्टि कर उसे बहुत काल के उपरान्त उसी तन्मयता से उसी तीव्रता से व्यक्त करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य होगा।

बालक अपना सक्रिय जीवन जिस प्रत्यक्ष और अनुकरण से आरम्भ करता है वही अनुकरण और निरीक्षण पर्याप्त मात्रा में चित्रकार के अर्थ में समाहित है परन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो कवि इन सीढ़ियों से ऊपर पहुँचा हुआ जान पड़ेगा, क्योंकि इन व्यापारों से उत्पन्न सुख-दुखमयी अनुभूत यथार्थ को व्यक्त करने की उत्कण्ठा उसका प्रथम पाठ है। इसमें सन्देह नहीं कि चित्रमय काव्य हो सकता है और काव्यमय चित्र, परन्तु प्राय सफल चित्रकार असफल कवि का और सफल कवि असफल चित्रकार का अभिशाप साथ लाता रहा है।

कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है। माध्यम की दृष्टि से चित्र, सूक्ष्म और स्थूल के मध्य में स्थिति रखता है। देश, सीमा के बन्धन रहते हुए भी वह रंगों की विविधता और रेखाओं की अनेकता के सहारे काव्य को रंग रूपात्मक साकारता दे सकता है। अमूर्त भावों का जितना मूर्त-वैभव चित्रकला में सुरक्षित रह सकता है उतना अन्य किसी कला में सहज नहीं, इसी से हमारे प्राचीन चित्र जीवन की स्थूलता को जितनी दृढ़ता से सम्हाले है, जीवन की सूक्ष्मता को भी उतनी ही व्यापकता में बाँधे हुए हैं। सत्य, काव्य का साध्य और सौन्दर्य, साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त। इसी से साधन, परिचय स्निग्ध खण्ड रूप साध्य विस्मय भरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।"

महादेवी जी के विचारों में भी भावना का ही पक्ष प्रबल रहता है। वे अपने को सफल कवि और सफल चित्रकार दोनों ही नहीं समझतीं। वे लिखती हैं—'मेरे शाप को भी दुगुना होना चाहिए। अपने व्यस्त जीवन के कुछ क्षणों को छीन कर जैसे तैसे कुछ लिखते-लिखते मेरे स्वभाव ने मुझे चित्रकला के लिए नितान्त अनुपयुक्त बना दिया है, कारण जितने समय में मैं तुक मिला लेती हूँ उतने ही समय में मैं चित्र समाप्त कर देने के लिए आकुल हो उठती हूँ। ऐसी दशा में इन विचित्र कृतियों को हिन्दी संसार के सम्मुख रखते हुए मुझे केवल संकोच है और मैं क्या कहूँ। सतोष इतना ही है कि यह मेरी है और मैं हिन्दी संसार के अविछिन्न सम्बन्ध से बँधी हूँ।" महादेवी जी की उपर्युक्त पंक्तियों के संग ही संग उनकी चित्र-शैली पर भी प्रकाश पड़ता है। उन्हे अपनी अपूर्णता पर चाहे वह चित्रकला हो और चाहे वह कविता हो हिन्दी संसार के सम्मुख रखने में संकोच ही रहा है। मेरे विचार से महादेवी जी की कविता जिस प्रकार भावना की महान कृति है उसी प्रकार उनके चित्रों की रेखाएँ भावनाओं की व्यापक धाराओं के समान प्रवाहित हो रही है। महादेवी जी की एक कविता भावना की दृष्टि से चित्रकला के महान अस्तित्व का स्मरण करती है। महादेवी जी कहती हैं—

प्रिय मैं जो चित्र बना पाती
सपनों का संसार बसा जाती, —दीपशिखा

महादेवी जी के चित्रों के सम्बन्ध में भावना की उपर्युक्त पंक्तियाँ उनके समस्त विचारों

को सक्षेप मे ही समाप्त कर देती है। विचार की दृष्टि से चित्रकला मे शिल्प प्रवन्ध, शैली, छन्द, भाव, लावण्य योजना आदि यह सब ऐसे विषय है जो चित्रकला के आन्तरिक क्षेत्र से ही सम्बन्धित रहे हैं। विचार की जो शैली आजकल चित्रकला के सम्बन्ध मे चलती है वह उसकी बहिरग परीक्षा और निरीक्षण का क्षेत्र है। इसका सम्बन्ध केवल कला-शिक्षा-विधि के क्षेत्रो मे ही रहा हैं। चित्रकला की टेकनिकल तथा बहिरग परीक्षा पाश्चात्य चित्रकला की परम्परा मे ही अधिक रही है। भारतीय चित्रकला के क्षेत्र मे आत्मनिरीक्षण की परम्परा सब से मुख्य रही है, किन्तु जब से चित्रकला के क्षेत्र मे निरीक्षण की बाह्य परम्परा प्रधान हो चली तब से भावना-प्रधान शिल्प की निरन्तर हत्या ही होती रही है। इस सम्बन्ध मे उदाहरण के लिए अशोक के धर्म-स्तम्भ शीर्ष को ले लीजिए। अभी तक अग्रेजी के माध्यम से जो विचार शैली हिन्दी मे प्रस्तुत हुई है वह उसकी बहिरग परीक्षा मात्र ही रही है। उस स्तम्भ की अन्तरात्मा क्या है, और उसका सदेश कैसा है, हम इस सबध मे प्राय विचार ही नही करते। अशोक के उस धर्म-स्तम्भ के पीछे कितनी भारी मार्मिकता छिपी हुए है, यह अशोक के तेरहवें धर्म-लेख से ही प्रकट होता है। उस स्तम्भ को देखते ही मौर्य वश का इतिहास, नन्दवश का पतन, मुद्राराक्षस तथा चाणक्य के आन्दोलन की प्रतिक्रिया साकार हो उठती है। *उस स्तम्भ को देखते ही कलिंग युद्ध का व्यापक चित्र साकार हो उठता है:* "देवताओ के प्रियदर्शी के अभिषेक के आठवे वर्ष कलिंग मे बडा भारी युद्ध हुआ। उस युद्ध मे दो लाख व्यक्ति मारे गये। इससे भी अधिक पकडे गये और उन्हे देश से निकाल दिया गया। असख्य व्यक्ति महामारी आदि व्याधिओ से मरे जो युद्ध के बाद उत्पन्न होती हैं। इस युद्ध मे देवताओ के प्रिय को सब से बडा सताप यह हुआ है कि कलिंग मे ब्राह्मण और श्रमणो का भी वध हुआ है। कलिंग मे बहुत से ब्राह्मण, श्रमण और बहुत से गृहस्थ रहते है जिनमें सेवा की भावना निहित हैं। जिनका स्नेह नही घटा है। विजय के लिए ऐसे लोगो का वध होता है। और उनके सबधियो का विछोह होता है। देवताओ के प्रिय के लिए उनके दुखो का सौवां हिस्सा भी भारी हैं। देवताओ का प्रिय यह चाहता है कि उसकी प्रजा धर्म-विजय में विश्वास करे।"

अशोक का धर्म-स्तम्भ किस शैली का है, उसमे पाश्चात्य कला एव ग्रीक कला का मिश्रण हैं, प्रभाव है, इन बातो को ले कर उलझे रहने से कला की प्रगति आगे नही हो सकती। हमे तो यह देखना है कि अमुक चित्र के पीछे कौन सी भावना है, कौन सा सन्देश है? इसी बाह्य निरीक्षण को ले कर आधुनिक कला की प्रगति अवरुद्ध हुई है और होती जा रही हैं। भारत सरकार ने अशोक के स्तम्भ शीर्ष तथा अशोक के चक्र को इसलिए नही अपनाया कि उसमें कलात्मकता है और वह देखने मे सुन्दर है, उसकी शैली भारतीय है अथवा अमुक कलाकार की कृति हैं। उसे अपनाने का कारण यह है कि उसके पीछे भारतीय शासन-शक्ति के अतीत का व्यापक इतिहास और भारत की सस्कृति है। इसी दृष्टि से हम महादेवी जी की चित्रकला को भी मान्यता देते हैं क्योकि उसके पीछे हिन्दी साहित्य के

छायावादी आन्दोलन की सास्कृतिक विचारधाराओ की व्यापक भूमिका है। उनका सबध एक विशेष युग की काव्यधारा से है। भले ही महादेवी जी को अपना चित्र ठीक न लगे, पसन्द न हो अथवा उसमे अपूर्णता दिखाई पडे और उन्हे अपनी सफलता पर सन्देह रहा हो, जैसा कि अपनी चित्रकला के सबध मे महादेवी जी स्वय कहती हैं, "अपने चित्रो के विषय मे कहते हुये मुझे जिस सकोच का अनुभव हो रहा है वह भी केवल शिष्टाचारजनित न हो कर अपनी अक्षमता के यथार्थ ज्ञान जनित है। सत्य अर्थ में मैं कोई चित्रकार नहीं हूँ।" महादेवी जी की इस भावना के विरुद्ध भी मैं हिन्दी साहित्य के प्रागण मे उसका मूल्यांकन आवश्यक समझता हूँ। अपनी रचना के सबंध मे प्राय किसी को सतोष नहीं रहा। अपनी चित्रकला के सबध मे महादेवी जी के समान, प्रसिद्ध चित्रकार अमृत शेरगिल ने अपने चित्रो के विषय मे अपने मन की आन्तरिक वेदना मुझसे इसी प्रकार व्यक्त की थी। शेरगिल ने मुझसे कहा था, "आप जो कुछ कहते हैं मैं उसकी कद्र करती हूँ क्योकि पेरिस की कला-शाला मे मेरे चित्र-अध्यापक भी मुझसे यही कहते थे जो आप कहते है। किन्तु मैं करूँ क्या ? मेरे मन में तो यही भावना रहती है कि मैं अच्छा चित्र नही बना पाती। न जाने मेरे जीवन में वह कौन सा दिन होगा जब मैं अच्छे चित्र बना सकूँगी।" यह वेदना, अपने चित्रो के सबध मे एक सफल चित्रकार की यह भावना, बडी ही मार्मिक रही है।

महादेवी के शब्दो मे—चित्रो का ससार सपनो का ससार है। इस विचार से हमे मानना पडता है कि अजन्ता, एलोरा तथा भारत मे कला के समस्त क्षेत्र सपनो के ही क्षेत्र रहे हैं। उनमे कल्पनायें हैं, भावनायें है और काव्य शिल्प के जीते-जागते रूप है। वे सभी अतीत के सपने है। मनुष्य के स्वप्न मात्र प्रतिक्षण, प्रतिपल अतीत के चरणो मे ही विघटित हो रहे हैं। उन्हे आकार देना, उनकी व्यापक झांकी प्रस्तुत करना महादेवी और शेरगिल जैसी कुशल शिल्पियो का ही काम है।

आज के युग मे कौन कितना कुशल है यह विचार की दूसरी शृखला है। कार्य-क्षमता, कुशलता तथा विधि पूर्वक कार्यों की निष्फलता के सबध में शकराचार्य की यह भावना कितनी मार्मिक रही है, जिसे अनुभव करने की आवश्यकता है.

न मन्त्र नो यन्त्र तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वान ध्यान तदपि च न जाने स्तुतिकथा।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपन
पर जाने मातस्त्वदनुसरण क्लेशहरण॥

माँ, मैं न मत्र जानता हूँ न यत्र, अहो मुझे स्तोत्र का भी ज्ञान नही है, न आवाहन का पता है, न ध्यान का, स्तोत्र और कथा की भी जानकारी नही है, न तो तुम्हारी मुद्रायें जानता हूँ और न मुझे व्याकुल हो कर विलाप करना ही आता है, परन्तु एक बात जानता हूँ—वह है तुम्हारा अनुसरण, तुम्हारे पीछे चलना, जो क्लेशो को, समस्त दुख-विपत्तियो को हर

लेने वाला है। महादेवी जी की चित्रकला के सबंध में हिन्दी साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य से अधिक प्रेरणा ली जा सकती है क्योंकि कला की दृष्टि से सस्कृत साहित्य जितना सम्पन्न रहा है, उसकी तुलना वर्तमान हिन्दी साहित्य से हो ही नही सकती। फिर भी वर्तमान लोक-धर्म के अनुसार हम विशिष्ट सस्कृत की दृष्टि से महादेवी जी की चित्रकला पर विचार न करके आधुनिक विचारों के क्षेत्र में प्रवेश करते है।

कला के सबध में आधुनिक दृष्टिकोण पूर्व और पाश्चात्य कला-शैलियो के ज्ञान की सीमाओ मे रहा है, पूर्व और पश्चिम के मतभेद, ईस्ट इन्डिया कम्पनी के जमाने से राजनैतिक मतभेद रहे है। कला का क्षेत्र भी इस राजनैतिक मतभेद से अछूता नही रहा। पूर्व की चित्र-शैली रेखा प्रधान तथा पाश्चात्य शैली शेड-लाइट तथा छाया-प्रकाश से युक्त चित्र-शैली रही है, पर यह बहुत कम लोगो को मालूम है कि पूर्व की रेखाकित चित्र-शैली में भी आन्तरिक रूप से शेड-लाइट तथा प्रकाश और छाया सन्निहित रहती है। इसलिए केवल टेकनिकल प्रश्नो को ले कर ही पूर्व-पश्चिम का मतभेद व्यक्त करके चित्रकला की मीमासा नही हो सकती। कला की मीमासा भावना और सिद्धान्तो को ले कर होती है, सस्कृतियो को ले कर होती है, क्योकि ससार में जितने भी सघर्ष और युद्ध हुए है वे सास्कृतिक सिद्धान्तो को ले कर हुए है।

आज हम जिसे पूर्व और पश्चिम का सघर्ष कहते है वह सिद्धान्तो का सघर्ष है। एक का सिद्धान्त अन्तरमुखी और दूसरे का सिद्धान्त विपरीत दिशा में रहा है। इस सबध में महादेवी जी के चित्र और शेरगिल के चित्रो पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए। महादेवी जी के चित्र भारतीय सस्कृति के भावप्रद प्रतीक है और शेरगिल के चित्र भारतीय लोक-जीवन की बाह्य रूप-रेखाओ को व्यक्त करते है। शेरगिल के चित्रो की दिशा ही दूसरी रही है। इस सबध में महादेवी जी के भी दो रेखाचित्र ध्यान देने के विषय हो सकते है, उसमें चीनी यात्री और उनकी सेविका 'भक्तिन' का रेखाचित्र मुख्य है। यह दोनो रेखाचित्र जहाँ तक मुझे स्मरण है 'अतीत के चलचित्र' में प्रकाशित हुए है। मुझे दुख है कि महादेवी जी ने अपनी चित्रकला की इस यथार्थ दिशा मे जो प्रगति आरम्भ की थी वह नही हुई इसलिए इस दिशा की पूर्ति के लिए शेरगिल के चित्रो का भी स्वागत करता हूँ। भाव-चित्रो की अपेक्षा बाह्य परिस्थितियो के स्केच और चित्र, हिन्दी की दृष्टि से खडी बोली के रूप मे लिया जा सकता है।

"जय जय स्वर्गागार सम भारत कारागार"

—भारत भारती

भारत भारती की दृष्टि से आज भी भारत कारागार है। इस कारागार में पूर्व और पश्चिम की कलाओ के सबध में झगडे उठाने से हमें कोई लाभ नही। कला मात्र के माध्यम से हमे उस वस्तु को दिखाना चाहिए जिसकी हमें आवश्यकता हो, भले ही वह पेरिस की शैली

हो चाहे वह जर्मनी की शैली में हो। हमें तो ऐसी शैली चाहिए जिसमें भारतीय लोक-भावना, लोक-संस्कृति तथा लोक-संग्रह के बीज हो।

भारत की आधुनिक चित्रकला, जिसका विकास गत सौ वर्षो मे हुआ है, उसमें भारतीय लोक-भावना के बीज है, लोक जीवन की व्यापक झाँकी मिलती है। हिन्दी के क्षेत्र मे यह एक कलंक है कि आज तक अतीत की इन भावात्मक कलाओ के संग्रह तथा उनकी सुरक्षा के संबंध मे कोई चिन्ता ही नही की गई और वह अपने को एकांगी दृष्टि से भारत भारती होने का दावा रखती है। कला के बिना कोई भी भाषा, राष्ट्रभाषा नही होती और यदि होती भी है और उसके संग कला की संगति नही बैठती, तो उस देश मे अशान्ति और संघर्ष होता है। भाषा का प्रश्न और उसका आन्दोलन इस देश में इतना व्यापक हो गया है कि उसके कारण शिक्षा क्षेत्र में भी संघर्ष अनिवार्य हो गया है, जिसका उदाहरण आज विद्यार्थी-संघर्ष है। सब से भयावह स्थिति तो यह है कि भारत का सांस्कृतिक वर्ग तो विशेष कर साधु-संन्यासियो का क्षेत्र रहा है, वहाँ भी लोग प्राणो की बाजी लगा रहे है। यदि हम परिस्थितियो के मूल मे जा कर देखे तो पता चलेगा कि भाषा का प्रश्न कला की भावना और उसकी संगति से हीन है। कला की असंगति मनुष्य का विवेक हर लेती है। राष्ट्र का मानसिक असंतुलन एकांगी हो कर आत्महत्या करता है। अथवा यह महा सरस्वती के प्रांगण में बलिदान की कल्पना करता है। इसी संदर्भ मे वह अपनी शासन-शक्ति के ध्वंस की भी सहज कल्पना कर बैठता है, क्योकि व्यवस्था के लिए शासन शक्ति दमन करती है। शासन-शक्तियो का ध्वंस इतना सरल नही है क्योकि ध्वंस करना भी एक कला है, एवं तपस्या है। इसलिए हमें प्रत्येक पग पर यह विचार करने की आवश्यकता होती है कि हम ध्वंस के पथ पर जा रहे हैं अथवा निर्माण की दिशा में रचनात्मक कार्य करने चल रहे हैं। गिरधर कविराय ने यह कहा है

> बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछताय,
> काम बिगाड़े आपनो जग मे होत हँसाय।

फिर भी आज हमें इसकी भी चिन्ता नही, क्योकि आज हमारा मानस असंतुलित हो कर कुछ ऐसा हो गया है कि हम हर क्षेत्र में ध्वंस का ही स्वागत कर रहे है, तोड़ने-फोड़ने में ही विश्वास करते है। इस संबंध मे महादेवी जी के विचार कितने चिन्ताग्रस्त परिस्थितियो के द्योतक हो रहे है। महादेवी जी कहती है, "आज हमारा युग दुर्बलताओं और ध्वंस का युग है और दुर्बलता तथा ध्वंस जितने प्रसारगामी होते है, शक्ति और निर्माण उतने नही हो सकते।"

अतएव स्वस्थ्य कला और शक्तिप्रद भावनाओ के द्वारा आज देश में शक्ति का संचय किया जा सकता है।

भारत भारती का आन्दोलन और महादेवी : भारत भारती का आन्दोलन हिन्दी राष्ट्रभाषा और साहित्य का आन्दोलन है । इस सबंध में सिंहावलोकन की आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता तो इस बात की है कि उसके संग कला की संगति होनी चाहिए । यदि राष्ट्रभाषा और भारतीय साहित्य इस भावात्मक संगति से दूर रहना चाहता है और कलापक्ष पर विचार नहीं करता तो हिन्दी में महादेवी के चित्रों को अलग कर देना चाहिए । महादेवी के चित्र हिन्दी साहित्य को मूल्यांकन की दृष्टि से बहुत ही मँहगे प्रतीत होंगे । हिन्दी साहित्य में भारती की प्रतीक केवल भाषा ही नहीं है । वह केवल कहानी और कविता भी नहीं है । अपने स्थान पर चित्रकला भी एक भाषा है । उसमें काव्य है, उसमें कहानी और महाकाव्य भी है । जो लोग इसे देखना चाहें उन्हें अजन्ता की गुफाओं को ठीक से देखना और समझना चाहिए । पहली गुफा से ले कर अन्तिम गुफा तक केवल चित्रकला की एकांगी व्यापक झाँकी रही है जो तथागत के जन्म से ले कर महानिर्वाणपर्यंत महाकाव्य की महान भावना से प्रेरित रही है । भारती की प्रतीक यदि केवल कवितायें हैं तो हमें महादेवी की सरस्वती के चित्र पर विचार ही नहीं करना चाहिए । हम उसका विचार संस्कृति के प्रांगण में करेंगे । हिन्दी में राष्ट्रभाषा का एकांगी पथ अपनी दिशा में समर्थ भी हो जाये और दिल्ली के तख्त पर उसकी एकांगी प्रतिष्ठा भी हो जाये तो महादेवी की सरस्वती विश्व में महायुद्ध करा देगी । इसलिए हिन्दी साहित्य को महादेवी की सरस्वती को प्रणाम कर के ही आगे चलना चाहिए :

ॐ सरस्वती महाभागे विद्ये कमल लोचने
विश्वरूपे विशालाक्षी विद्याग-देही नमोस्तुते ।

इस माध्यम से शिक्षा-संस्थाओं में विद्यार्थी भारत भारती की उपासना करते थे किन्तु आज राष्ट्रभाषा का पक्ष कितना निर्बल है, यह कहा नहीं जा सकता । उसके लिए सत्याग्रह होता है, उपवास, धरना, और हड़तालों पर जोर दिया जाता है । देश में गोलियाँ चलती है, नर-संहार होता है, फिर भी लोग यह नहीं समझते कि यह सब क्यों हो रहा है ? ऐसे अंधकार के युग में राजा रवि वर्मा और डा० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का स्मरण बारम्बार करने की आवश्यकता है । आलोचकों ने उस जमाने में रवि वर्मा के चित्रों को निषिद्ध ठहराया । कुमार स्वामी ने तो यहाँ तक लिख दिया कि रवि वर्मा के चित्र दूषित है, वे नाटकीय हैं । किन्तु जब हम रवि वर्मा की आत्मा से पूछते हैं कि उन्होंने किन परिस्थितियों में अपने चित्रों को बनाया था और उनके चित्रों में नाटकीय भाव क्यों आये, तो इस संबंध में राजा रवि वर्मा के अपने विचार और आलोचकों के विचारों में बहुत बड़ी गहरी खाई उत्पन्न होती है । मैं यहाँ राजा रवि वर्मा के चित्रों के संबंध में विस्तार-भय से कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि रवि वर्मा ने अपने संबंध में स्वयं लिखा है—"कुछ लोगों ने मुझसे धार्मिक चित्र भी बनाने का विशेष आग्रह किया और इसीलिए मैंने इस दिशा में प्रयत्न किया । मैंने धार्मिक चित्रों के

विषय में भारत के समस्त धार्मिक क्षेत्रों की यात्रा की। मैं अयोध्या, काशी और वृन्दावन भी गया क्योंकि मैं यह चाहता था कि मैं जो धार्मिक चित्र बनाऊँ उनमें वेशभूषा की दृष्टि से भारत की धार्मिक चित्रकला में एक रूपता निहित हो, इसीलिए मैंने भिन्न-भिन्न स्थानों की नाटक-मण्डलियों को भी देखा और यही निश्चित किया कि महिलाओं के चित्र, विशेषकर देवियों के चित्रों में साड़ी की एक ऐसी एकरूपता है जो समस्त देश में समान रूप से व्यावहारिक है।" अतएव इस विचार से जो वेशभूषायें नाटक-मण्डलियों में दिखाई जाती थी उनके आधार पर देवी देवताओं के चित्र बनाये गये। ध्यान रहे कि रवि वर्मा के समय फोटोग्राफी नाम मात्र की थी। उस समय अजन्ता, एलोरा तथा राजस्थानी चित्रों का भी पता नहीं था। इस संबंध में परसी ब्राउन साहब ने अपनी पुस्तक में यह लिखा है कि वह समय ऐसा रहा है जब कि लोगों को यह नहीं मालूम था कि भारत की अपनी भी कोई चित्रकला है। रवि वर्मा ने जिस समय अपना कार्य आरम्भ किया था उस समय कला के क्षेत्र में सर्वत्र अंधकार था। देश में संग्रहालय नहीं थे, ऐसे अंधकार के युग में धार्मिक क्षेत्र से लक्ष्मी और सरस्वती के चित्र भी उठ गये थे। लोगों के घर, इटली की सुन्दर रमणियों के फोटोग्राफ तथा छपे हुए चित्रों से भर रहे थे। इसाई धर्म का जोर फैल रहा था। इन परिस्थितियों के बीच राजा रवि वर्मा ने चित्रकला के माध्यम से देश की सेवा की। लक्ष्मी और सरस्वती के भव्य चित्र बनाये। रवि वर्मा ने अपने चित्रों के कथानक रामायण और महाभारत से लिये। उन्होंने भारतीय-लोक जीवन की भावात्मक परिस्थितियों के भी चित्र बनाये जैसे 'भिखारी' आदि। काव्य की दृष्टि से उन्होंने राम और कृष्ण के चित्र बनाये, राधा की विरह वेदना भी व्यक्त की। इसीलिए आज रवि वर्मा की शैली के छपे चित्र करोड़ो की संख्या में बिकते हैं और घर-घर में उनकी प्रतिष्ठा होती है। लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करते है। महादेवी के चित्र इनसे भी अधिक व्यापक हैं क्योंकि वे चित्र भावना की ऐसी शृंखला और परम्परा उत्पन्न करते है जो साधारण की दृष्टि से कलाकार को महाभाव के प्रांगण में उपस्थित कर लेने की शक्ति रखते है। अब प्रश्न यह है कि महाभाव का वह प्रांगण क्या है इस में भगवान वेद व्यास की एक ही पंक्ति से हिन्दी साहित्य के एवं भारत भारती के अंधे युग की व्यापक धारा को आकर्षित करता हूँ

'त्वमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत'

यह त्वमेव क्या है, इसके लिए तथा इस ज्ञान के लिए महादेवी की शरण में जाना चाहिए और यदि नहीं जा सकते तो उनके चित्रों को समझना चाहिए, नकल भी करना चाहिए। कम से कम वह भारतीय तो होगी ही। हिन्दी के धुरंधर आलोचक, जो पेरिस की कला, और 'पिकासो' को, तथा अमेरिकन कलाओं को भी समझते है, साम्यवाद की कलाओं में चीन और रूस की भी कलाओं को भी समझते हैं, किन्तु आज तक उन्होंने चित्रकला में भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि को बिलकुल नहीं समझा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके लिए उन्हें

महादेवी की चित्रकला का, कविताओं की भाँति ही अभिनन्दन करना चाहिए जो उन्हे साहित्य एव साहित्यकार मात्र तथा समस्त चित्रकारो की रचनाओ को भी समझने की प्रेरणा देगी।

हिन्दी के व्यापक क्षेत्र मे आज भारत भारती का भण्डार विदेशी कलाओ के माध्यम से तथा उनकी नकल से दर्शनशास्त्र का मस्तक ऊँचा कर रहा है। उन विदेशी चित्रो की अपेक्षा अपनी साधारण तथा निर्बल, अस्वस्थ कलाकृति की भी नकल सर्वोत्तम होती है, क्योकि उसमे पूर्वजो की विरासत है। जो अपनी विरासत को छोड कर दूसरे की विरासत पर जीता है उसकी अपनी विरासत नष्ट हो जाती है। भारतीय कला मे अपनी विरासत ध्रुव है, जिसकी परिक्रमा सप्तर्षि और सूर्य-चन्द्रमा भी करते हैं। भारतीय कला साहित्य मे ध्रुव की तपस्या और सप्त ऋषियो का क्या स्थान है इसकी व्याख्या का समय नही है। महादेवी की चित्र कला हिन्दी की ध्रुव है। इसलिए हिन्दी साहित्य इस ध्रुव को छोड कर यदि अध्रुव की सेवा करता है तो उसकी ध्रुव शक्ति का नाश हो जायगा। अध्रुव तो पहले से ही नष्ट है। महादेवी की चित्रकला भारत भारती के रथ की आन्तरिक शक्ति है। आज भारत भारती का रथ महाभारत के समान दो सैनिक शक्तियो के मध्य मे है, उसमे एक शक्ति पश्चिम की है और दूसरी पूरब की। रवीन्द्रनाथ का जनगण कहता है—

पतन अभ्युदय बधुर पथा,
युग युग धावित यात्री।
हे चिर सारथि, तवरथ चक्रे
पथ मुखरित दिनरात्री।

'रवीन्द्र' का यह छायावादी सगीत आज भारतीय सेना का भी सगीत है, जो अत म भगवान वेद-व्यास की उसी व्यापक दिशा 'त्वमेव' की ओर ले जायगी।

पाठक, हमे क्षमा करेंगे, विशेष कर—पन्ति सुमित्रानन्दन जी पत, जिन्होंने मुझे महादेवी जी की चित्रकला के सबध मे विचार करने की प्रेरणा दी है। वह कोई साधारण चीज नही है। चित्रकला के सदर्भ मे सबन्धित विषय और परिस्थितियो के सबध मे भी विचार करना आवश्यक होता है। एक कवर डिजाइन से ले कर साइन बोर्ड तक और टेक्सटाइल की मिलो म वस्त्रो के अलकरण, अल्पना, गृहशिल्प, दरवाजे और दीवारो के रगो म चित्रकला की एक ही व्यापक धारा मिलती है। ऐसी व्यापक धारा को ले कर जब हम चलते हैं तो हमे महादेवी जी की सरस्वती को ले कर चलना अनिवार्य हो जाता है—'देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत्।'

'बीण भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

—'नीरजा'

यह सगीत, महादेवी जी की सरस्वती के सम्बन्ध मे है और उनके सरस्वती के चित्र मे भी यही भावना है। वह विश्व को अपना परिचय व्यापक भावना के सग दे रही है।

के शुभ्र अकुर मे परिणत हो गया है जो सब प्रकार की दैविक
अपना मस्तक ऊँचा उठाए रख सकता है।।

यह तो हुआ महादेवीजी के कृतित्व अथवा मनोमय व्यवि
जिसका मूल्याकन मैं विस्तृत रूप से 'छायावाद पुनर्मूल्याकन'
पार्थिव व्यक्तित्व भी इससे कम महत्वपूर्ण एव परिपूर्ण नही है
भी महादेवीजी एक महाकाव्य की उदात्त पात्रों की भूमिका के
वह दुर्जेय दुर्निवार अत क्षमता लेकर पैदा हुई है। और अप
शृखलाओ म जकडे मध्ययुगीन ह्रास धुव से तमसाच्छन्न सामाजि
साहस के साथ अपने अपराजित व्यक्तित्व से अजस्र आलोक प्रद
सभी ऊँच-नीच परिस्थितिया की भूल्भुलैय्या मे पड कर जिस
शात बनी रही, वह अपने आप मे इस युग की जीवन साधना
रही है। उनके व्यक्तिगत जीवन की पृष्ठभूमि में रख कर उनके
दीपशिखा तरह अपने ताप प्रकाश एकाग्र एकाकीपन तथा ड
के सयाजन म सहज ही आँखा क सामने उद्घाटित हो उठता है अ
मणि की तरह स्वच्छ रूप धर कर स्वत ही मन में उद्भा
रहस्य है, न किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक ग्रथि। उनकी म
सक्रिय सामर्थ्य है जिसके लिए किसी भी प्रकार के बधन, गुठन
अनावश्यक तथा व्यर्थ प्रतीत होती हैं। यदि महादेवीजी को हम
समाज के अत करण की प्रच्छन्न अपमानजनक शक्तिया से अ
पडता तो नि सदेह उनकी देन साहित्य के अतिरिक्त सामा
भावात्मक तथा पुष्कल हो सकती। पर मध्ययुगीन जीवन
पार कर नये क्षितिज की ओर बढने मे उन्हें अपनी अविकार
और आत्म प्रगति के साथ ही भारतीय नारी के युग युग के प
मे जो सूक्ष्म ,आतरिक परिश्रम उन्हे निरतर करना पडा उ
हुए बिना नही रहता।

एक ओर उ होने शब्दा की वीथिया म लुका छिपी खेल
तथा सुकुमार सौंदर्य कल्पना को अपनी तूली के कौशल से ज
अधिक बोधगम्य बनाया वहाँ दूसरी ओर अपनी अजेय चेतना के
ओर मोड कर महिला विद्यापीठ जैसी विशाल नारी शिक्षा सस्था
कर नारी जीवन के प्रति अपनी गभीर ,सहानुभूति को जीव
का महान प्रयत्न किया। इस अनुष्ठान को सफल बनाने में
तथा विषम परिस्थितिया का सामना कर युग के ह्रासोन्मुखी
पडी वह उन्ही के समान अदम्य साहस तथा पौरुषमयी एव का

सम्पादकीय

सुमित्रानंदन पंत

मैं इसे अपने साहित्यिक जीवन की एक सबसे सुखद उपलब्धि मानता हूँ—
और मेरा प्रमुखतः केवल साहित्यिक ही जीवन रहा है—कि मुझे महादेवीजी
के षष्टि-प्रवेश के अवसर पर प्रस्तुत संस्मरण-ग्रंथ के सम्पादन के रूप में उनका अभिनंदन
करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।। उनके अभिनंदन में मेरा हृदय उनमें छायावाद की
पूर्णता का अभिनंदन करता है। छायावाद की जिस सौंदर्य-उर्वर भूमि को प्रसाद और
निरालाजी ने निरा कर मार्दव प्रदान करने का प्रयत्न किया, उसमें सबसे सुनहला अंकुर
महादेवीजी के कृतित्व तथा व्यक्तित्व का फूटा, —इसे अब अनेक सौंदर्य-पारखी आलोचक
तथा पाठक मानने लगे हैं। जादूगर के पौधे की तरह वह अंकुर आज एक शोभा-सम्पन्न
मरकतच्छाय विशाल वृक्ष के रूप में पुष्पित पल्लवित हो उठा है जिसमें असंख्य गीत-कोकिल
अपना भाव-नीड बसा कर आधुनिक युग के हृदय को अपनी अनन्य, अनिन्द्य, अनुपम एवं
अविराम संगीत स्वर लहरी से स्पंदित तथा मुखरित करने में समर्थ हो सके हैं। महादेवीजी
ने छायावाद के सोने को अपने नारी सुलभ हृदय की मार्मिक आँच में तपा कर निखारा है
और उसमें वे अरूप विरह-व्यथा का सौरभ भर सकी हैं। छायावादी विराट् काव्य शतदल
की सूक्ष्म सौंदर्य पंखड़ियों को उन्होंने अपनी रस स्वर्णिम तूली से सँजो कर उसके अंतस्तल
को मानवीय संवेदन के भाव-गंधी शाश्वत मधु मरंद से आप्लावित किया है। आनंद अपनी
आत्म-निष्ठ पूर्णता से असंतुष्ट होकर उनकी काव्य-चेतना में दीपशिखा की तरह एक अनिर्वच-
नीय प्रेम तन्मयता के व्यापक प्रकाश में जल उठने के लिए विह्वल हो उठा है। उन्होंने
मध्ययुगीन आत्मसमर्पण की निर्बल भावना को असीम विरह व्यथा सह सकने की अपनी
अजेय शक्ति से जैसे चुनौती दी है। ऐसा भाव सक्षम व्यक्तित्व भक्ति युग के काव्य में
भी किसी कवि का देखने को नहीं मिलता जिसने इतनी निर्मम मुदग्ता एवं समग्रता से अपने
विरह दग्ध अहं की रक्षा की हो। विरह दग्ध होकर महादेवी का अहं जैसे अमृतत्व

भारतीय साहित्य का क्षेत्र महादेवी की इस व्यापक भावना को अभी तक ।
इसीलिए मूल्यांकन की दृष्टि से और संस्कृति की दृष्टि से तथा हिन्दी भा।
भारती के कल्याण की दृष्टि से महादेवी जी की चित्रकला को यदि मैं न
'सरस्वती' राजनीति के क्षेत्र में आ करके रहेगी। कला और राजनीति क।
है, किन्तु आज की पृष्ठभूमि में कला का यह कर्मयोग अदृश्य हो गया है :

'सत्यमेव जयते'

लोक-संग्रह के विचार से कला का सत्य, राजनीति में बहुत पहले से आ
भारतीय राजनीति में सुन्दर की प्रतिष्ठा भी अनिवार्य है, क्योंकि सत
त्रिकोणात्मक रेखाएँ एक दूसरे पर निर्भर है। इस त्रिकोण की यदि एक भी रे
है तो देश में व्यतिक्रम और विग्रह को प्रेरणा मिलती है, प्रकृति में
जिस प्रकार 'एटम' की प्रतिक्रिया विश्व पर होती है उसी प्रकार, और
क्रिया साहित्य और कला की होती है, क्योंकि वह मानव के हृदय और
प्रतिष्ठित होता है।

सम्पादकीय

सुमित्रानदन पत

मैं इसे अपने साहित्यिक जीवन की एक सबसे सुखद उपलब्धि मानता हूँ—और मेरा प्रमुखत केवल साहित्यिक ही जीवन रहा है—कि मुझे महादेवीजी के षष्टि-प्रवेश के अवसर पर प्रस्तुत सस्मरण-ग्रथ के सम्पादन के रूप मे उनका अभिनदन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है। उनके अभिनदन मे मेरा हृदय उनमे छायावाद की पूर्णता का अभिनदन करता है। छायावाद की जिस सौंदर्य-उर्वर भूमि को प्रसाद और निरालाजी ने निरा कर मार्दव प्रदान करने का प्रयत्न किया, उसमें सबसे सुनहला अकुर महादेवीजी के कृतित्व तथा व्यक्तित्व का फूटा,—इसे अब अनेक सौंदर्य-पारखी आलोचक तथा पाठक मानने लगे हैं। जादूगर के पौधे की तरह वह अकुर आज एक शोभा-सम्पन्न सघनतच्छाय विशाल वृक्ष के रूप मे पुष्पित-पल्लवित हो उठा है जिसमे असख्य गीत-कोकिल अपना भाव-नीड बसा कर आधुनिक युग के हृदय को अपनी अनन्य, अनिन्द्य, अनुपम एव अविराम सगीत स्वर लहरी से स्पदित तथा मुखरित करने में समर्थ हो सके है। महादेवीजी ने छायावाद के सोने को अपने नारी सुलभ हृदय की मार्मिक आँच मे तपा कर निखारा है और उसमे वे अरूप विरह व्यथा का सौरभ भर गयी है। छायावादी विराट् काव्य-शतदल की सूक्ष्म सौंदर्य पखडियो को उन्होने अपनी रस स्वर्णिम तूली से सँजो कर उसके अतस्तल को मानवीय सवेदन के भाव-गधी शाश्वत मधु मरद से आप्लावित किया है। आनद अपनी आत्म निष्ठ पूर्णता से असतुष्ट होकर उनकी काव्य-चेतना मे दीपशिखा की तरह एक अनिर्वचनीय प्रेम तन्मयता के व्यापक प्रकाश मे जल उठने के लिए विह्वल हो उठा है। उन्होने मध्ययुगीन आत्मसमर्पण की निर्बल भावना को असीम विरह-व्यथा सह सकने की अपनी अजेय शक्ति से जैसे चुनौती दी है। ऐसा भाव सक्षम व्यक्तित्व भक्ति युग के काव्य मे भी किसी कवि का देखने को नही मिलता जिसने इतनी निर्मम सुदरता एव समग्रता से अपने विरह दग्ध अह की रक्षा की हो। विरह दग्ध होकर महादेवी का अह जैसे अमृतत्व

भारतीय साहित्य का क्षेत्र महादेवी की इस व्यापक भावना को अभी तक नहीं समझ सका, इसीलिए मूल्यांकन की दृष्टि से और संस्कृति की दृष्टि से तथा हिन्दी साहित्य एवं भारत भारती के कल्याण की दृष्टि से महादेवी जी की चित्रकला को यदि मैं न भी चाहूँ तो भी वह 'सरस्वती' राजनीति के क्षेत्र में आ करके रहेगी। कला और राजनीति का संबंध बहुत प्राचीन है, किन्तु आज की पृष्ठभूमि में कला का यह कर्मयोग अदृश्य हो गया है

'सत्यमेव जयते'

लोक-संग्रह के विचार से कला का सत्य, राजनीति में बहुत पहले से आ चुका है, इसलिए भारतीय राजनीति में सुन्दर की प्रतिष्ठा भी अनिवार्य है, क्योंकि सत्य शिव सुन्दर की त्रिकोणात्मक रेखाएँ एक दूसरे पर निर्भर हैं। इस त्रिकोण की यदि एक भी रेखा असंतुलित होती है तो देश में व्यतिक्रम और विग्रह को प्रेरणा मिलती है, प्रकृति में कम्पन होता है, क्योंकि जिस प्रकार 'एटम' की प्रतिक्रिया विश्व पर होती है उसी प्रकार, और उससे भी व्यापक प्रतिक्रिया साहित्य और कला की होती है, क्योंकि वह मानव के हृदय और उसकी आत्मा में भी प्रतिष्ठित होता है।

सम्पादकीय

सुमित्रानदन पत

मैं इसे अपने साहित्यिक जीवन की एक सबसे सुखद उपलब्धि मानता हूँ—और मेरा प्रमुखत केवल साहित्यिक ही जीवन रहा है—कि मुझे महादेवीजी के षष्टि प्रवेश के अवसर पर प्रस्तुत सस्मरण ग्रथ के सम्पादन के रूप मे उनका अभिनदन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।। उनके अभिनदन मे मेरा हृदय उनमे छायावाद की पूर्णता का अभिनदन करता है। छायावाद की जिस सौंदर्य-उर्वर भूमि को प्रसाद और निरालाजी ने निरा कर मार्दव प्रदान करने का प्रयत्न किया, उसमें सबसे सुनहला अकुर महादेवीजी के कृतित्व तथा व्यक्तित्व का फूटा,—इसे अब अनेक सौंदर्य-पारखी आलोचक तथा पाठक मानने लगे हैं। जादूगर के पौधे की तरह वह अकुर आज एक शोभा-सम्पन्न मरकतच्छाय विशाल वृक्ष के रूप मे पुष्पित पल्लवित हो उठा है जिसमे असख्य गीत-कोकिल अपना भाव नीड बसा कर आधुनिक युग के हृदय को अपनी अनन्य, अनिन्द्य, अनुपम एव अविराम सगीत स्वर लहरी से स्पदित तथा मुखरित करने में समर्थ हो सके है। महादेवीजी ने छायावाद के सोने को अपने नारी सुलभ हृदय की मार्मिक आँच मे तपा कर निखारा है और उसमे वे अरूप विरह-व्यथा का सौरभ भर सकी हैं। छायावादी विराट् काव्य शतदल की सूक्ष्म सौंदर्य पखडियो को उन्होने अपनी रस स्वर्णिम तूली से सँजो कर उसके अतस्तल को मानवीय सवेदन के भाव गर्भी शाश्वत मधु मरद से आप्लावित किया है। आनद अपनी आत्म निष्ठ पूर्णता से असतुष्ट होकर उनकी काव्य-चेतना मे दीपशिखा की तरह एक अनिर्वचनीय प्रेम तन्मयता के व्यापक प्रकाश में जल उठने के लिए विह्वल हो उठा है। उन्होने मध्ययुगीन आत्मसमर्पण की निर्बल भावना को असीम विरह-व्यथा सह सकने की अपनी अजेय शक्ति से जैसे चुनौती दी है। ऐसा भाव सक्षम व्यक्तित्व भक्ति युग के काव्य मे भी किसी कवि का देखने को नही मिलता जिसने इतनी निर्मम सुदृढ़ता एव समग्रता मे अपने विरह दग्ध अह की रक्षा की हो। विरह दग्ध होकर महादेवी का अह जैसे अमृतत्व

के शुभ्र अंकुर में परिणत हो गया है जो सब प्रकार की दैविक लौकिक झंझाओं के सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा उठाए रख सकता है।।

यह तो हुआ महादेवीजी के कृतित्व अथवा मनोमय व्यक्तित्व का संक्षिप्त नख-चित्र, जिसका मूल्यांकन मैं विस्तृत रूप से 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में कर चुका हूँ। पर उनका पार्थिव व्यक्तित्व भी इससे कम महत्वपूर्ण एवं परिपूर्ण नहीं है। अपने लौकिक जीवन में भी महादेवीजी एक महाकाव्य की उदात्त पात्री की भूमिका के रूप में अवतरित हुई हैं। वह दुर्जेय दुर्निवार अंतःक्षमता लेकर पैदा हुई है। और अपने चतुर्दिक् के संकीर्ण लौह शृंखलाओं में जकड़े मध्ययुगीन ह्रास धुंध से तमसाच्छन्न सामाजिक परिवेश को उन्होंने अदम्य साहस के साथ अपने अपराजित व्यक्तित्व से अजस्र आलोक प्रदान किया है। उनकी चेतना सभी ऊँच नीच परिस्थितियों की भूलभुलैय्या में पड़ कर जिस प्रकार निश्छल, सौम्य तथा शांत बनी रही, वह अपने आप में, इस युग की जीवन-साधना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। उनके व्यक्तिगत जीवन की पृष्ठभूमि में रख कर उनके कृतित्व को देखने से उसका दीपशिखा तत्व अपने ताप, प्रकाश, एकाग्र एकाकीपन तथा ऊर्ध्वगामिता अथवा उन्नतत्व के संयोजन में सहज ही आँखों के सामने उद्घाटित हो उठता है और उनका चरित्र भी स्फटिक मणि की तरह स्वच्छ रूप धर कर स्वतः ही मन में उद्भासित होता है, जिसमें न कहीं रहस्य है, न किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक ग्रंथि। उनकी सामर्थ्य स्त्री के अंतःशील की सक्रिय सामर्थ्य है जिसके लिए किसी भी प्रकार के बंधन, गुंठन या वर्जन की सीमा-रेखाएँ अनावश्यक तथा व्यर्थ प्रतीत होती है। यदि महादेवीजी को हमारे ह्रास-विघटन से पीड़ित समाज के अंतःकरण की प्रच्छन्न अपमानजनक शक्तियों से अविरत संघर्ष निरत नहीं रहना पड़ता तो निःसंदेह उनकी देन साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी कहीं अधिक भावात्मक तथा पुष्कल हो सकती। पर मध्ययुगीन जीवन मान्यताओं के घोर बालू को पार कर नये क्षितिज की ओर बढ़ने में उन्हें अपनी अधिकांश शक्ति बलिदान करनी पड़ी और आत्म-प्रगति के साथ ही भारतीय नारी के युग-युग के पंक में सने पाँवों को उबारने में जो सूक्ष्म आंतरिक परिश्रम उन्हें निरंतर करना पड़ा उससे कोई भी मन बिना परास्त हुए बिना नहीं रहता।

एक ओर उन्होंने शब्दों की वीथियों में लुका-छिपी खेलने वाले अपने सूक्ष्म भावबोध तथा सुकुमार सौंदर्य-कल्पना को अपनी तूली के सौकर्य से जहाँ रंगों का मूर्त माध्यम देकर अधिक बोधगम्य बनाया वहाँ दूसरी ओर अपनी अजेय चेतना के संस्कार को जीवन-यथार्थ की ओर मोड़ कर महिला विद्यापीठ जैसे विशाल नारी शिक्षा संस्थान का उत्तरोत्तर कुशल संचालन कर नारी-जीवन के प्रति अपनी गंभीर सहानुभूति को जीवन-वास्तविकता का स्वरूप देने का महान प्रयत्न किया। इस अनुष्ठान को सफल बनाने में उन्हें पग-पग पर जिन जटिल तथा विषम परिस्थितियों का सामना कर युग के ह्रासोन्मुखी वातावरण पर विजय पानी पड़ी वह उन्हीं के समान अदम्य साहस तथा पौरुषमयी एवं बाधाओं से कभी हार न मानने

वाली महादेवी से ही सभव हो सकता था, इसमे सदेह नही। वह महाकाव्य की महापात्री ही नही, युग के इतिहास की भी एक महत्वपूर्ण विकासमयी शक्ति हैं। उनका साहित्यकार ससद् जैसी सस्था को जन्म देना भी इसी प्रकार बहु भापा-भाषी भारतीया में भावनात्मक एकता को स्थापित करने का वरेण्य प्रयत्न है। महादेवीजी के गद्य-साहित्य को पढकर यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि उनके कोमल नारी हृदय में अपने चतुर्दिक् के जीवन के प्रति कितनी व्यापक सामाजिक सहानुभूति रही है। अपने जीवन में इतने बहु-मुखी क्षेत्रो में अविराम सफलता प्राप्त करने पर भी उन्हें इसका रच मात्र भी अभिमान नही है और वह जिस सहज भाव से एक सामान्य नारी की तरह सबसे मिल कर जन-साधारण के सुख-दुख को बँटा कर उनके जीवन में घुल मिल जाती हैं, यह उनके व्यक्तित्व की एक सबसे बडी विशेषता है। जिस अत्यत धैर्य तथा शाति के साथ उनका करुणा विस्तृत हृदय बाहर भीतर के कठोर से कठोर आघात तथा दुख के असह्य दशा को चुपचाप पीकर बाहर से हँसता हुआ, सुस्थिर चित्त से, अपने असख्य मिलने वाले, प्रशसको, समागता तथा स्नेह के याचको से बातें कर लेता है, उसे देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है।

महादेवीजी से मेरा परिचय अनेक दशकों का है और वह परिचय अपने आप ही स्नेह और सम्मान के घनिष्ठ सबध में परिपक्व हो चुका है। फिर भी उनका नित्य नवीन रूप तथा नवीन परिचय मन को मिलता रहता है। हमारी पीढी में इतना सुथरा, सस्कृत, सौम्य तथा हृदयवान व्यक्तित्व अन्यत्र कही देखने को नही मिल सकता, यह धारणा मेरे मन में दिन पर दिन सुदृढ होती जा रही है।

हमारा युग सधि युग है और आज की पीढियाँ द्वाभाजीवी पीढियाँ हैं। इनमें जो तमिस्र से प्रभावित हैं वे नि सदेह महादेवी जैसी आत्म प्रबुद्ध नारी के सौंदर्य और महत्व की कल्पना कर सकने में असमर्थ है बल्कि उनके अतर मे उनके प्रति विरोधी स्वर ही उठते सुनाई पडते है। किंतु जो प्रकाश के पक्ष में है और जिनके हृदय को नवीन युग की वास्तविकता का स्पर्श मिल चुका है वे इस अत शक्तिशालिनी स्वाभिमानिनी महिमामयी, सामाजिक क्रिया प्रतिक्रिया के झझा से घिरी एकाकिनी युग नारी के आत्म-गौरव के दीवट-शिखर से अविराम प्रकाश बरसाते हुए दीपशिखा व्यक्तित्व के शोभा गरिमा के मडल पर अनिमेष आश्चर्यचकित दृष्टि एव मत्रमुग्ध भाव से देखते रहने पर भी नही अघाते है, और छायावाद-युग की अत साधना की चरमसिद्धि इस अद्वितीय कवयित्री को, जिसका अश्रु धौत व्यक्तित्व भी एक स्वय सिद्ध काव्य तथा जिसका व्यक्तिगत मृदुल मनोरम नारी जीवन भी सदैव एक अतर्मुखी छद में अभिव्यक्त होता रहा है अपने अत करण का अक्षुण्ण स्नेह तथा अखड सम्मान प्रदान करने में गौरव का अनुभव करते हैं। उनके षष्टि प्रवेश के इस महान् अवसर पर उनके अगणित प्रशसको, अभिभावको, स्नेहियो तथा उपासको की असख्य उत्सुक अँगुलिया भावना के शुभ्र करपुट मे बँध कर, मेरे साथ, उन्हें अपने

हृदय की स्नेह-पूत श्रद्धांजलि समर्पित करने को लालायित है, यह मुझे स्पष्ट दिखाई देता है। वे शतायु हों और अपने व्यक्तित्व, कृतित्व तथा भावबोध के इंगितों से इस दिग्भ्रांत युग को नित्य नवीन प्रेरणा प्रदान करती रहें, यही मेरी एकांत कामना है। शुभमस्तु।

जीवन-क्रमणिका की महत्वपूर्ण तिथियाँ

सम्वत् १९६४ शुभजन्म, होली के दिन, फरुखाबाद उत्तर प्रदेश।

१९६९ मिशन स्कूल इन्दौर मे शिक्षा प्रारम्भ। घर पर पढाई के लिये एक पडित, एक मौलवी, एक चित्र-शिक्षक तथा सगीत-शिक्षक का प्रबध।

१९७३ विवाह, कुछ समय के लिये पढाई स्थगित।

१९७६ क्रास्थवेट-कालेज प्रयाग मे पुन शिक्षा प्रारम्भ।

१९७८ मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की। प्रान्त भर मे प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्र-वृत्ति मिली।

१९८२ इन्ट्रेंस की परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुई। छात्र-वृत्ति मिली।

१९८४ इन्टर की परीक्षा पास की।

१९८६ बी० ए० पास किया।
बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग होने के कारण आप भिक्षुणी बनना चाहती थी। बी० ए० के पश्चात् ग्रीष्मावकाश मे नैनीताल मे सम्भावित गुरु बौद्ध महास्थविर से मिली। उन्होने एक काष्ठपट्टिका की ओट से इनसे बात की। इन्हे यह बहुत ही अपमानकर लगा। अपने प्रति इतने अविश्वासी व्यक्ति को गुरु बनाना इन्होने उचित नही समझा। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप भिक्षुणी बनने का विचार ही त्याग दिया। उसी समय ताकुला, नैनीताल मे महात्मा गांधी के सम्पर्क और प्रेरणा से इनका मन सामाजिक कार्यो की ओर उन्मुख हो गया। प्रयाग के आसपास के गाँवो मे जाकर बच्चो को पढाना और उनमे शिक्षा की रुचि का उन्मेष करना इनका नियमित कार्यक्रम बन गया, जो स्वतत्रता प्राप्ति के समय तक चलता रहा।

१९८७ अस्वस्थ होने के कारण साल भर के लिये अध्ययन बद हो गया। इस वर्ष का अधिकतर समय रामगढ, ताकुला, नैनीताल मे बीता। प्रयाग मे अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन का सयोजन किया।

१९८९ प्रयाग विश्वविद्यालय से सस्कृत मे एम० ए० किया।

प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का कार्यभार सँभाला और 'चाँद' का नि शुल्क सम्पादन भी करने लगी ।

१९९० प्रयाग मे कवीन्द्र रवीन्द्र से भेंट ।
मीरा जयन्ती का शुभारम्भ किया ।

१९९१ 'नीरजा' पर सक्सेरिया पुरस्कार मिला । बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की ।

१९९२ कलकत्ते मे आयोजित जापानी कवि योन नागूची के स्वागत-समारोह मे सम्मिलित हुईं और शान्ति निकेतन मे गुरुदेव से भेंट की ।

१९९४ रामगढ, नैनीताल मे 'मीरा मदिर' नामक कुटीर बनवाया ।

१९९६ बद्री-केदार की दूसरी बार पैदल यात्रा की ।

१९९९ 'विश्ववाणी' के बुद्ध-अक का सम्पादन किया ।

२००० 'स्मृति की रेखाएँ' पर 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुआ ।

२००१ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का 'मगला प्रसाद पुरस्कार' मिला ।
'साहित्यकार ससद' की स्थापना की ।

२००२ साहित्यकार ससद के लिये गगा के किनारे रसूलाबाद, प्रयाग मे एक भवन खरीदा ।

२००७ साहित्यकार ससद की ओर से अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन तथा साहित्य पर्व का सफल आयोजन किया । राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद द्वारा ससद मे 'वाणी मदिर' का शिलान्यास कराया । प्रसाद जयन्ती समारोह हुआ और १८ फरवरी से २२ फरवरी तक विभिन्न साहित्यिक कार्य-क्रमो के साथ साहित्य पर्व चलता रहा ।

२००९ स्वतन्त्रता के पश्चात् गठित उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् की सदस्या मनोनीत की गईं । श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री दिनकर, श्री गगाप्रसाद पाण्डेय को साथ लेकर दक्षिण भारत की साहित्यिक यात्रा मे कन्याकुमारी तक गईं । केन्द्रीय सरकार से कापीराइट नियम मे सशोधन की माँग की । साहित्यकार ससद् से निराला की कापीराइट बिकी काव्य-कृतियो से कविताएँ लेकर 'अपरा' नामक काव्य-सग्रह निकाला । लीडर प्रेस ने प्रसन्नता से और दूसरे प्रकाशको ने विवशता से कापीराइट के अधिकार को छोड दिया ।

२०११ दिल्ली मे स्थापित 'साहित्य एकादेमी' की सस्थापक सदस्या चुनी गईं ।

२०१२ साहित्यकार ससद के मुख-पत्र 'साहित्यकार' का प्रकाशन तथा श्री इलाचन्द्र जोशी के साथ सम्पादन शुरू किया ।
साहित्यकार ससद् के तत्वावधान मे उत्तरायण (ताकुला) नैनीताल म अन्तर्प्रदेशिक साहित्यकार शिविर का आयोजन किया ।

प्रयाग मे नाट्य-सस्था 'रगवाणी' की स्थापना की, जिसका उद्घाटन प्रसिद्ध मराठी नाटककार मामा वरेरकर ने किया ।

तत्कालीन शिक्षामत्री मौलाना आजाद की हिन्दी-साहित्य विषयक भ्रान्त धारणा के विरोध म राष्ट्रकवि गुप्त जी तथा अन्य साहित्यकारो के साथ पत्रो म एक तीखी विज्ञप्ति प्रकाशित की ।

२०१३ पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित की गई ।

२०१७ सर्व सम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति निर्वाचित हुईं ।

२०२० रगिनी सघ दिल्ली की ओर से राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन द्वारा अभिनन्दित । रात को इनके सम्मान म जो कवि-गोष्ठी आयोजित की गई थी उसमे प्रधानमत्री नेहरू ने इनका स्वागत किया और प्राय डेढ घण्टे तक काव्य-पाठ सुनते रहे। किसी हिन्दी कवि-गोष्ठी में उन्होने प्रथम बार इतना समय बिताया ।

२०२१ भारती परिषद्, प्रयाग की ओर से कविवर पत ने इनके निवास पर एक वृहत् अभिनदन ग्रथ भेंट किया ।

कृतियों तथा विशेष भाषणों का कालक्रम

सम्वत् १९७१ काव्य की प्रथम शिशु रचना।

१९७२ ब्रजभाषा के पदों और समस्यापूर्ति की रचनाएँ।

१९७५ खड़ी बोली की प्रथम पूर्ण रचना 'दिया'।

१९७७ सौ छन्दों में एक करुण कथा का खण्डकाव्य, अबला, विधवा तथा माँ भारती आदि रचनाएँ। खण्डकाव्य को छोड़कर अन्य रचनाएँ 'आर्य महिला' और 'महिला जगत' में प्रकाशित हुई।

१९७९ 'चाँद' के प्रथम अंक में प्रथम प्रौढ़ कविता प्रकाशित हुई। तब से अन्य पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त चाँद के प्रायः प्रति अंक में आपकी रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित होती रहीं।

धीरे-धीरे महादेवी जी की काव्य-प्रवृत्ति उनकी मूल धारा की ओर उन्मुख हो गई—'जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा कि इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षि-शावक को कई बार गिर-उठकर अपने पंखों के सँभाल लेने पर मिलता होगा।'

रचना-क्रम अबाध और तीव्र गति से चलता रहा और 'नीहार' का अधिकांश उनके मैट्रिक पास होने के पहले ही लिखा जा चुका था।

१९८० कालेज के बच्चों को नाटक खेलने के लिये आप ने एक नाटक की रचना की, जिसमें फूल, भ्रमर, तथा तितली और वायु को पात्र बनाया गया था।

१९८७ 'नीहार' प्रथम काव्य-कृति।

१९८९ 'रश्मि' द्वितीय काव्य-कृति।

१९९१ 'नीरजा' तृतीय काव्य-कृति।

१९९३ 'सान्ध्यगीत' चतुर्थ काव्य-कृति।

'सान्ध्यगीत' से महादेवी जी का चित्रकर्त्री रूप भी सामने आया, क्योंकि इसमें उनके द्वारा अंकित सन्ध्या, दीपक, वर्षा, अरुणा, निशीथिनी तथा मृदुमहान भावपूर्ण नयनाभिराम चित्रों का भी प्रकाशन हुआ।

१९९९ 'दीपशिखा' पंचम काव्य-कृति। इसमें प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि में चित्रांकन किया गया है। काव्य, संगीत और चित्र का यह सरस सम्मेलन हिन्दी-साहित्य की अक्षय तथा अनन्य निधि है।

२०००-२००१ 'बंग-दर्शन' बंगाल के अकाल पर लिखित विभिन्न कवियों की कविताओं का संग्रह।
इसी वर्ष प्रयाग में बंगभूमि तथा जीवन से संबंधित चित्रों की प्रदर्शनी का भी आयोजन किया।

२०१६ 'सप्तपर्णा' इसमें आर्षवाणी से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास तथा भवभूति के महत्वपूर्ण मार्मिक काव्यांशों का महादेवीजी ने काव्य-बद्ध अनुवाद प्रस्तुत किया है।

२०२० 'हिमालय' भारत की उत्तरी सीमा पर चीन के आक्रमण के समय राष्ट्रीय गौरव और साहस जगाने के लिए प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों की हिमालय पर लिखित कविताओं तथा अन्य राष्ट्रीय कविताओं का संकलन।

गद्य

१९९८ 'अतीत के चलचित्र'—रेखाचित्र।

१९९९ 'शृंखला की कड़ियाँ'—नारी विषयक निबन्ध।

२००० 'स्मृति की रेखाएँ'—रेखाचित्र।
'विवेचनात्मक गद्य'—आलोचनात्मक निबन्ध।

२०१३ 'पथ के साथी'—संस्मरण।
'क्षणदा'—ललित निबन्ध।

२०१९ 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध'—आलोचनात्मक निबन्ध।
इन गद्य कृतियों के अतिरिक्त दीपशिखा, सप्तपर्णा तथा हिमालय की विशदवृहत् भूमिकाएँ महादेवी जी के गद्य की गौरव-घोषणाओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

भाषण

महात्मा गांधी द्वारा इन्दौर साहित्य सम्मेलन में सेकसरिया पुरस्कार दिये जाने के बाद का भाषण।

२०११ लखनऊ की विधान सभा में कुम्भ दुर्घटना के दायित्व पर भाषण। साहित्य एकादमी के उद्घाटन समारोह में संस्था के असांस्कृतिक नाम तथा अंग्रेजी भाषा में उसकी कार्यवाही होने के विरोध में अत्यंत उदात्त और साहसिक भाषण।

२०१३ प्रयाग में आयोजित महाप्राण निराला की साठवीं वर्षगांठ के अवसर पर भाषण ।

२०१७ प्रतापगढ़ में उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण ।

२०१८ वाराणसी में प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का अध्यक्षीय भाषण ।

२०१९ म्योर सेन्ट्रल हाल, प्रयाग में आयोजित प्रेमचन्द स्मृति दिवस के अवसर पर भाषण ।

२०२० साहित्यकार संसद द्वारा आयोजित भारतीय लेखक सम्मेलन में भारत की सांस्कृतिक एकता पर भाषण ।

२०२१ . कलकत्ते में प्रसाद जयन्ती समारोह का उद्घाटन-भाषण ।

२०२२ कविवर पन्त जी के महाकाव्य 'लोकायतन' पर विचार-विमर्श के लिये आयोजित साहित्य-गोष्ठी में भाषण ।

२०२३ साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित सन्त-साहित्यकार सम्मेलन में साहित्य और अध्यात्म के समन्वय पर भाषण । एनीबेसेन्ट हाल प्रयाग में आयोजित कविवर पन्त जी की ६६वीं वर्षगांठ के समारोह में अध्यक्षीय भाषण। प्रयाग संगीत महाविद्यालय का दीक्षान्त भाषण ।